शत्रुंजय-वैभव

(धातु प्रतिमालेख तथा प्रतिष्ठाचार्यों के इतिहास सहित

मुनि कान्ति सागर

कुशल संस्थान

जयपुर

• प्रकाशक •
राजेन्द्रकुमार श्रीमाल
सचिव
कुशल सस्थान
३६६६, रास्ता मोतीसिंह भोमिया
३०२००३

• प्रथम सस्करण अक्टूबर, १६६०

• मुख पृष्ठ सुशील नागर

• मुद्रक अजन्ता प्रिण्टर्स,
घी वालो का रास्ता,
जौहरी बाजार, जयपुर

SHATRUNJAYA VAIBHAVA
MUNI KANTI SAGAR/JAIPUR

प्रकाशकीय

बचपन में अपनी मां से सुना करता था : **"पुंडरीक गिरि महिमा आगम मां परसिद्ध"** तथा "जग में तीरथ दो बड़ा, शत्रुंजय गिरनार। इस गिरि ऋषभ समोसर्या, उस गिरि नेम कुमार ॥" तभी शत्रुंजय तीर्थ के विषय में अधिकाधिक जानने की ललक उत्पन्न हो गई थी ? पढ़ने-समझने योग्य बनने के बाद इस तीर्थ के विषय में जब भी जहां भी कुछ मिला पढ़ता रहा। एक अष्टाक्षरीय वाक्य के दस लाख बाईस हजार चार सौ सत्ताईस अर्थ लिए विश्व-साहित्य के अनोखे ग्रन्थ "अष्टलक्षी" के कर्ता प्रकाण्ड विद्वान महोपाध्याय समयसुन्दर की रचनाओं का अवलोकन करते समय उनके "श्री शत्रुंजय गिरि रास" में यह दोहा पढ़ने को मिला :—

शत्रुंजय तीरथ सरखो नहीं दूजो तीरथ कोय ।
स्वर्ग, मृत्यु, पाताल में, तीरथ सगला जोय ॥४॥

उसी समय से शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा करने और उसके विषय मे अन्य श्रद्धालुओं को जानकारी उपलब्ध कराने की भावना निरन्तर बलवती होती गई। तीर्थ यात्रा की अभिलाषा तो कई बार फलवती हुई, किन्तु दूसरी इच्छा मन में बनी ही रही। कुछ वर्ष पूर्व भाई **श्री गुलाबचन्द गोलेछा** के द्वारा स्वनाम धन्य पुरातत्ववेत्ता व कला मर्मज्ञ स्व० मुनि कान्तिसागरजी द्वारा लिखित एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई। शत्रुंजय तीर्थ के विषय में जानकारी प्रसारित करने की अभिलाषा के पूर्ण होने की भूमिका तभी बनी। कुशल संस्थान की स्थापना के साथ ही लगा कि वह अभिलाषा पूर्ण होने का समय आ गया है और तब मुनिजी के इस विशिष्ट ग्रन्थ के प्रकाशन का कार्य संस्थान को सौंप दिया।

नाकोड़ा तीर्थ संस्थापक व प्रतिष्ठापक खरतरगच्छाचार्य श्री कीर्त्तिरत्नसूरि की परम्परा के आचार्य जिन कृपाचन्द्रसूरि के शिष्य उपाध्याय सुखसागरजी के लघु शिष्य थे मुनि कान्तिसागरजी। जामनगर के निवासी जैनेतर कुल में उत्पन्न इस प्रतिभावान किशोर ने सं० १९९४

मे दीक्षा ग्रहण की थी। मुनिजी प्रशस्त लेखनी के धनी होने के साथ ही प्रखर वक्ता भी थे। पुरातत्त्व और कला के अधिकारी इस विद्वान ने "खडहरो का वैभव" तथा "खोज की पगडण्डिया" नामक दो अद्वितीय ग्रन्थो की रचना की थी। ये ग्रन्थ सुरुचिपूर्ण साहित्य के चोटी के प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुए थे तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी। इन दोनो पुस्तको के प्रकाशन ने मुनिजी को अपने समय के मूर्धन्य पुरातत्त्ववेत्ता के रूप मे स्थापित किया था। इन पुस्तको के अलावा आपकी अन्य प्रकाशित कृतिया हैं—जैन धातु प्रतिमा लेख, नगर वर्णनात्मक हिन्दी पद्य सग्रह तथा सईकी। मुनिजी ने एक अन्य क्षेत्र मे अपनी मेधा का उपयोग किया था–और वह था आयुर्वेद का क्षेत्र। आपने अपने आयुर्वेद के प्रयोगो को भी लिपिबद्ध किया तथा उस प्रयत्न का एक भाग गुजराती मे "आयुर्वेदना अनुभूत प्रयोगो" नाम से प्रकाशित भी हुआ। अन्य सामग्री अभी तक अनुपलब्ध है।

मेवाड के तत्कालीन महाराणा के साग्रह अनुरोध पर मुनिजी ने "एकलिगजी का इतिहास" नामक विशाल शोध ग्रन्थ की रचना भी की जो अभी तक अप्रकाशित है। तत्कालीन नेपाल नरेश ने भी मुनिजी से पशुपति नाथ का इतिहास लिखने का अनुरोध किया था, किन्तु वह कार्य समयाभाव के कारण मुनिजी हाथ मे नही ले सके।

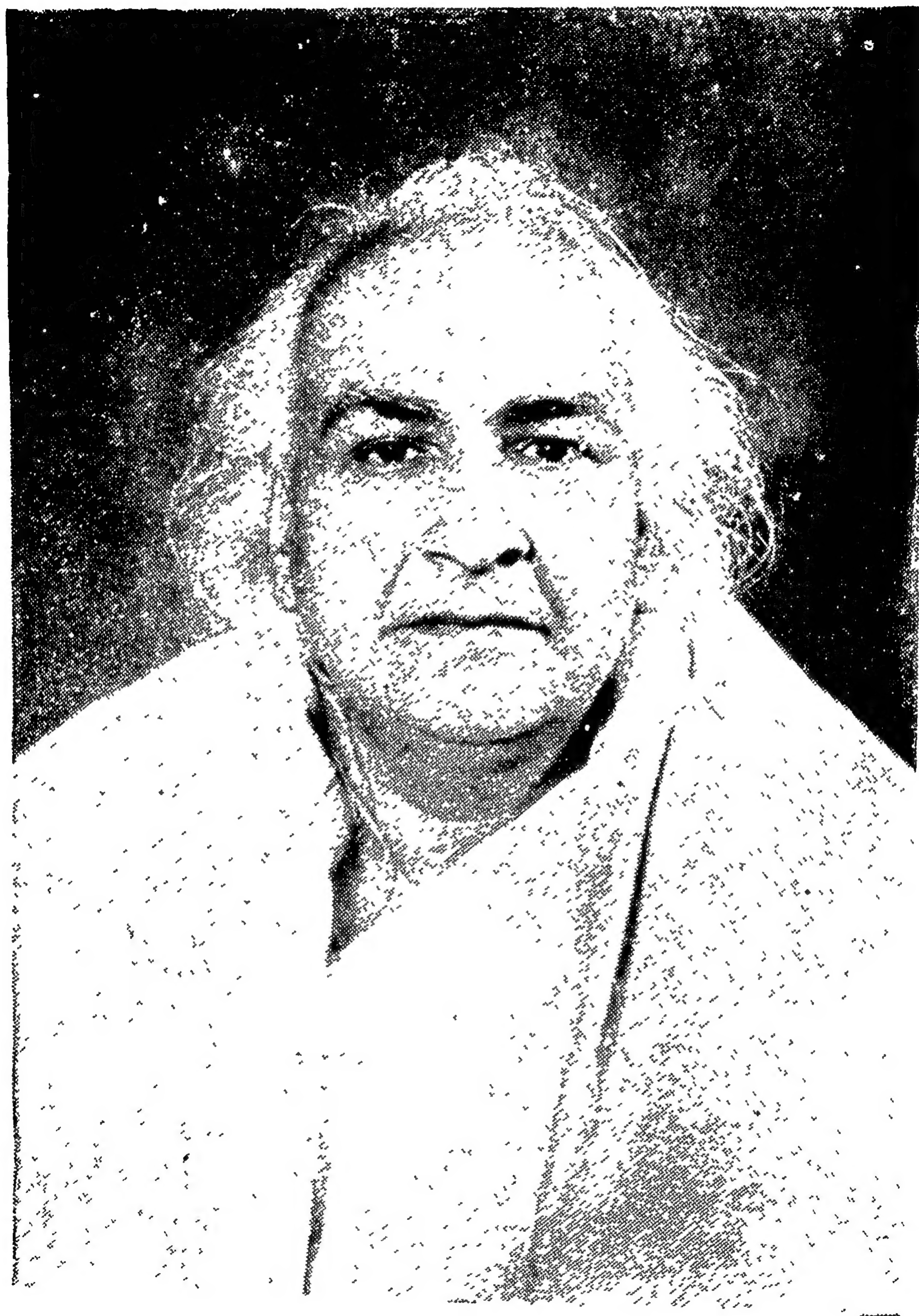
शत्रुजय तीर्थ पर मुनिजी महीनो नित्य घूम घूमकर प्रतिमा लेख सकलित करते रहे और उस विषय पर खोज मे जुटे रहे। प्रस्तुत पुस्तक उसी अथक परिश्रम का परिणाम है। इसे उन्होने प्रतिमा लेखो के सकलन तक ही सीमित नही रखा, अपितु प्रतिमा लेखो को सन्दर्भ रूप मे रख उनमे उल्लिखित प्रतिष्ठाचार्यो का परिचय सकलित किया है। साथ ही उन लेखो से जुडे विस्मृत स्थानो तथा व्यक्तियो का परिचय भी दिया है। सभी गच्छो के सक्षिप्त परिचय ने इस पुस्तक को पूर्णता प्रदान की है।

हमे आज इस महत्वपूर्ण सदर्भ ग्रन्थ को आपने पाठको के सम्मुख कुशल सस्थान के प्रकाशनो के चतुर्थ पुष्प के रूप मे प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। भूमिका के रूप मे 'शत्रुजय तीर्थ का सक्षिप्त

परिचय' के लिए हम इतिहास वेत्ता श्री रामवल्लभ सोमानी के आभारी हैं। पुस्तक के प्रकाशन प्रबन्ध तथा आवश्यक संपादन-संशोधन के लिए भाई श्री सुरेन्द्र बोथरा का तथा मुद्रण कार्य को कुशलता से पूर्ण करने के लिए श्री जितेन्द्र संघी का हार्दिक धन्यवाद। विशेष धन्यवाद के पात्र है भाई श्री गुलाबचन्द गोलेछा जिन्होंने पांडुलिपि को सुरक्षित रखा तथा प्रकाशन हेतु हमे प्रदान किया।

राजेन्द्रकुमार श्रीमाल
सचिव
कुशल संस्थान

62, गंगवाल पार्क
जयपुर–302004



स्व० मुनि श्री कांतिसागरजी महाराज

शत्रुंजय परिचय

—रामवल्लभ सोमानी

शत्रुजय तीर्थ सौराष्ट्र में है और दीर्घकाल से यह जैन धर्म का एक प्रमुख तीर्थ स्थल रहा है। इसका कई बार जीर्णोद्धार हुआ था। जैन स्रोतों के अनुसार इसके कई जीर्णोद्धार पौराणिक राजाओं द्वारा भी किये गये थे। इनमें भरत चक्रवर्ती, दण्डवीर्य, ईशान इन्द्र, सगर चक्रवर्ती, पांडव आदि उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक काल में इसका उद्धार (१) जावड शाह (२) शीलादित्य (३) जावड़ मन्त्री समराशाह (वि.सं. १३७१)एवं कर्माशाह (वि. सं. १५८७) ने कराया था। शत्रुजय तीर्थोद्धार कल्प एवं नाभिनन्दन **जिनोद्धार** प्रबंध नामक प्राचीन ग्रन्थों में भरत चक्रवर्ती, **सगर**, पांडवों एवं जावड शाह और वाग्भट द्वारा कराया गया उद्धार ही मुख्य माना है। इसी प्रकार से शत्रुजय तीर्थोद्धार प्रवन्ध में वि. स. १५८७ में कराया गया उद्धार सातवां माना है।

शत्रुंजय पर मुसलमानों के दो बार भीषण आक्रमण होने से अधिकांश सामग्री नष्ट हो गई। कई मन्दिर भी ध्वस्त कर दिये गये। गुजरात से प्राप्त ऐतिहासिक एवं साहित्यिक स्रोतों में इस तीर्थ का विशद वर्णन है। इनमें प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रबन्ध कोश, पुरातन प्रवन्ध संग्रह, विविध तोर्थ कल्प, कुमारपाल प्रबन्ध आदि उल्लेखनीय है। इनसे पता चलता है कि इस तीर्थ की गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि क्षेत्रों में बड़ी मान्यता थी। कई संघ यात्री बरावर यहां जाया करते थे। कुमार पाल के समय तक यह काष्ट का बना हुआ था। इसे उदयन मन्त्री के पुत्र वाग्भट ने जीर्णोद्धार कराके ठीक कराया। वस्तुपाल तेजपाल ने कई देव मन्दिर वनवाये। कुछ मन्दिर और भी बने। अल्लाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय ये सारे मन्दिर नष्ट कर दिये गए। उसने चित्तौड़, जालौर आदि स्थानों में भी इसी प्रकार से मन्दिरो को नष्ट किया था। अतः प्राचीन सामग्री बहुत ही कम है।

सबसे प्राचीन उपलब्ध प्रतिमा सीमन्धर स्वामी की है जिस पर वि स १०६४ का शिलालेख लगा हुआ है। इसे अम्बालाल प्रेमचन्द शाह ने प्रकाशित किया है। इस प्रतिमा पर काच लगा दिया है और इसे काले रग से पोत दिया है। अत सामान्य लोगो को इसकी तिथि की जानकारी नही होती है। इस पर लगे लेख मे सगम सिद्ध नामक एक जैन मुनि का उल्लेख है। वह विद्याधर आम्नाय के थे। इन्होने शत्रुजय पर स्थित पुडरिक आदिनाथ आदि की प्रतिमाओ को नमस्कार करके आमरण अनशन किया। इस समाधिमरण के बाद इस प्रतिमा का निर्माण राधेयक के पुत्र श्रेष्ठि आम्मेयक ने करवाया।[1]

दूसरा लेख नारायण नामक श्रेष्ठि की प्रतिमा पर है। यह लेख दो पक्तियो का है और इसकी तिथि वि स १,३१ दी हुई है। यह मूर्ति व्यक्ति विशेष की है।[2] नारायण हाथ जोडे बैठा है। इसके मूछे और दाढी है। ऊपर की ओर दो विद्याधर बैठे है। यह जजनाग का भाई एव कर्पदि का पिता था। इस मूर्ति को सिद्ध और वीर नामक दो व्यक्तियो ने बनाई थी।

वस्तुपाल तेजपाल के वि स १२८८ के दो शिलालेख है। हाल ही मे मिला एक शिलालेख इनके द्वारा निर्मित शत्रुजय तीर्थ[3] की पोल पर

---

१ श्रीमद्युगादिदेवस्य पुण्डरीकस्यचक्रमौ।
ध्यात्वा शत्रुजय शुद्धयन् सलेखा ध्यानसयमै।
श्री सग्राम सिद्धमुनिर्विद्याधर कुल नमस्तलमृगाक
× × ×
वर्षे सहस्त्रेषष्टया चतुरन्वित माधिके दिवमगच्छत्
× ×
अम्बेयक शुभ तस्य श्रेष्ठि राधेयकात्मज
पुण्डरीक पदा सगि चैत्य मेतश्चीकरत्।
महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण जयति ग्रन्थ पृ १६५

२ श्री जजनागकनिष्ठस्य कर्पदि जनकस्य निजपितुर्वास्य
श्री नारायण मूर्ति निवेशितासिद्ध वीराभ्या स ११३१
—उक्त

३ आगम प्रभाकर मुनि पुण्य विजय पुण्य श्लोक महामात्य वस्तुपाल ना अप्रसिद्ध शिलालेखो तथा प्रशस्ति लेखो—उक्त पृ ३०३

लगा है। दूसरा लेख बाघण पोल पर लगा होगा। यह लेख वहीं से प्राप्त हुआ है।[1] दोनों लेख अब तक अज्ञात थे। इन लेखों के मिल जाने से शत्रुंजय सम्बन्धी वस्तुपाल तेजपाल की प्रशस्तियों की पुष्टि हो जाती है। साहित्यिक सूत्रों से इनके द्वारा कराये गये निम्न कार्य बहुत प्रसिद्ध है[2]—

१. शत्रुंजय तीर्थ पर उज्जयंतावतार, स्तम्भनक तीर्थावतार, सत्यपुर तीर्थावतार, नन्दीश्वरतीर्थावतार, और शकुनि बिहारावतार नामक पांच जिनालय बनवाये। इन्द्र मण्डप कराया। कर्पदियक्ष के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। तेजपाल की पत्नी अनुपमादेवी के नाम पर अनुपमा सरोवर बनवाया। मूल नायक आदिश्वर भगवान के दोनों ओर वस्तुपाल और तेजपाल की स्वयं की मूर्तियां बनाकर लगाईं।

२. वस्तुपाल के माता-पिता और निकटस्थ भाइयों के नामो के उल्लेख किये गये।

३. वस्तुपाल और तेजपाल द्वारा संघ के प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित करती हुई प्रतिमायें।

४. वस्तुपाल, गुर्जरेश्वर वीरधवल, लुणिग (वस्तुपाल का बड़ा भाई), मालदेव (वस्तुपाल का छोटा भाई), तेजपाल, जैसिह (वस्तुपाल का पुत्र), लुणसिंह (तेजपाल का पुत्र) का गुणानुवाद पूर्वक यशोगाथा का वर्णन करना।

इन दोनों शिलालेखों से एक लेख को खोदने वाला खम्भात निवासी वाजड का पुत्र जैत्रसिंह है। वस्तुपाल तेजपाल के गिरनार के लेख भी इसी व्यक्ति ने खोदे थे इसमें वंश का वर्णन निम्नानुसार किया है। 'इह वालिग सुत सहजिग पुत्रातक् तनुज वाजड तनुजः। अलिखदिमां कायस्थ स्तम्भपुरीय ध्रुवो जयन्तसिंह'। दूसरे शिलालेख को खोदने वाले का नाम कुमारसिह सूत्रधार है। यह वाहड का पुत्र था। इसका उल्लेख भी

---

१. उक्त पृ. ३०६—३०८

२. उक्त पृ. ३०४

वस्तुपाल तेजपाल के गिरिनार के शिलालेख से ज्ञात होता है। इन लेखो मे तिथि वि स १२८८ पोष सुदि १५ शुक्रवार अकित है। गिरिनार के शिलालेख वि स १२८८ फाल्गुण सुदि १० के है।[1] अतएव प्रतीत होता है कि पहले सघ यात्रा शत्रुजय की की होगी एव इसके बाद दोनो भ्राता आदि गिरनार गये होंगे।

पहले लेख मे वस्तुपाल तेजपाल एव वीर धवल का यशोगान किया हुआ है। इनकी तुलना कच्छपावतार एव वराहावतार से की गई है। श्लोक स ११ मे लिखा है कि दोनो भाइयो ने प्रवास मार्ग मे आने वाले प्रत्येक ग्राम आदि मे कुवे, बाग, तालाव, मन्दिर आदि बनवाये। सदावृत दिया एव प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार भी कराया। दूसरे लेख मे वर्णन किया है कि उन्होंने अपने भाइयो आदि की मूर्तिया बनाई। प्रस्तुत पोल के दोनो ओर भी वस्तुपाल और तेजपाल ने अपनी मूर्तिया स्थापित की।

वि० स० १३७१ के कुछ लेख भी यहा से प्राप्त हुए है। जैसा कि आगे उल्लेख किया जावेगा वेसट गोत्रीय देसल ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार उक्त सवत् मे कराया था। ये लेख वि० स० १३७१ माह सुदि १४ सोमवार के ह। पहला लेख सच्चिकादेवी की मूर्ति का है। इसमे उक्त परिवार द्वारा सच्चिकादेवी की मूर्त्ति, जो उनकी कुल देवी थी, बनाने का उल्लेख किया है (निज कुल देवी श्री सच्चिका मूर्त्ति कारिता)। जैसा कि स्पष्ट है कि ओसिया मे सच्चिका देवी का मन्दिर है। यह हिन्दू देवी महिषासुर मर्दिनी का रूपान्तर है।[2] दूसरा लेख देहरी स० २०० मे है, इसमे चडिका की मूर्त्ति स्थापित करने का उल्लेख है। इस लेख के अन्त मे निजकुल देवी श्री चडिका मूर्त्ति कारिता[3] लिखा

---

1 मुनि जिन विजय–प्राचीन जैन लेख सग्रह भाग २, पृ ४७। इनमे तिथि इस प्रकार दी है (श्री विक्रम सवत १२८८ फाल्गुन शुदि १० बुधे)। लेख मे शत्रुजय एव उज्जयन्त प्रभृति महातीर्थो की यात्रा करने का उल्लेख भी किया है (शत्रुजयोज्जयतप्रभृति महातीर्थ यात्रोत्सव प्रभावा विर्भूत।

२ महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रथ मे श्री अम्बालाल प्रेमचन्द शाह का लेख पृ १६६।

३ वचन सार सूरि "शत्रुजय गिरनार दर्शनम्" लेख सं ३३ देहरी स २००

है। तीसरा लेख आशाधर की मूर्त्ति पर लगा है। यह भी इसी परिवार का व्यक्ति था। चौथा लेख राणक महिपाल की मूर्त्ति पर लगा है।[1] पांचवां लेख इसी परिवार के श्रावक श्राविकाओं की मूर्त्तियों पर है। यह विमल वसही की देहरी नं० ५५६ में लगा है।[2] लेख में "संघपति साधु देसलेन पुत्र शा० सहणपाल शा० सापत सा० समरसिंह शा० सोगण प्रभृति कुटुम्व युतेन भ्रातृ लूणसिंह भार्या लाखी सहित कारिता" लिखा है। इसी देहरी में एक और लेख इस परिवार का है। इसमें भी अपनी स्वयं की मूर्त्ति स्थापित्त करने का उल्लेख है। श्रेष्ठि समरसिंह और उसकी पत्नि गूगा की मूर्त्ति वि सं० १४१४ में स्थापित की थी। इसे स्थानीय भाषा में समराशाह की मूर्त्ति के नाम से जाना जाता है। समरा शाह दोनों हाथ जोडे हुये है। उसकी पत्नी एक हाथ में रुपयों की थैली और दूसरे में पूजा के लिये सामग्री लिये हुये है।[3]

मुख्य मन्दिर चौमुखाटुंक की एक धातु प्रतिमा का लेख श्री अम्बा लाल प्रेमचन्दशाह ने प्रकाशित्त कराया है। यह लेख महत्वपूर्ण है। इसमें सिद्ध हेमकुमार संवत् का प्रयोग है। वह इस प्रकार है "श्री सिद्ध हेमकुमार सं० ४ वैशाख ब० २ गुरौ भीम पल्ली सत्क (गच्छ) व्य० व० हरिश्चन्द्र भार्या गुणदेवि श्रेयोर्थं श्री शान्तिनाथ बिबं कारितं।"

इस लेख को मुनि पुण्य विजय जी ने जैन सत्यप्रकाश के ८ वें वर्ष के अंक सं० १ में प्रकाशित कराया था। यह लेख इसलिए महत्वपूर्ण है कि सिद्ध हेमकुमार संवत् का सबसे पहला ज्ञात लेख है। यह कुमार पाल के राज्य रोहण से माना जावे तो इसकी तिथि वि० सं० १२०३

---

१. उक्त लेख सं २०२ देहरी स. २०२ "संवत् १३७१ वर्षे माह सुदी १४ राणक महिपाल देव मूर्ति : संघपति देसलेन कारिता श्री युगादि देव चैत्वे"

२. श्री महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ पृ. १६७

३. शत्रुजय में १० वीं शताब्दी की एक सुन्दर धातु प्रतिमा भी होने का उल्लेख श्री शाह ने किया है जो इस समय उपलब्ध नहीं है—

—उक्त फोटो सं० ५

होगी। इस मम्बन्ध मे अभी कोई निश्चित मत व्यक्त नही किया जा सकता है। कुछ लेख और भी है। इनमे श्रावको की मूर्त्तिया वनाने का उल्लेख है। पहला लेख वि० म० १२२८ ज्येष्ठ सुदि १० शनिवार का है। इसमे पहु देव ने अपने पिता पाल की मूर्त्ति स्थापित की थी (स० १२२८ ज्येष्ठ सुदि १० शनो श्री देवनन्दकीय[1] गच्छे पहुदेवेन पितु पाल (स्य) श्रेयमे प्रतिमा कारिता)। दूसरा लेख एक खण्डित मूर्ति पर है। यह मूर्त्ति इस समय स्टोर मे है। इसमे प० पद्मचन्द्र के प० यशोवद्धन का मूर्त्ति स्थापित करने का उल्लेख है। यह लेख वि० स० १२७३ कार्त्तिक सुदि ६ गुरुवार का है (म० १२७३ वर्षे कार्त्तिक सुदि ६ गुरौ श्री धधुके श्री वायटीयगच्छे प० आसचन्द्र पदमयो शिष्य प० यशोवर्द्धनस्य मूर्त्ति कारापित भ्रातृपुत्र प० पद्मचन्द्रेण) तीसरा लेख वि० स० १३१३ फाल्गुण सुदि ७ का है। इसमे पादरा ग्राम के निवासी प्रभास की मूर्त्ति उसके पुत्र जगपाल द्वारा स्थापित करने का वर्णन है। (स० १३१३ वर्षे फागण सुदि ७ पाद्रग्रामे—सुत मह० प्रभासस्य मूर्त्ति सुत जगपालेन कारिता)। एक अन्य लेख देवकुलिका स० ७०१ मे रखी एक मूर्त्ति पर है। यह लेख वि० स० १३४२ माघ सुदि ८ का है। नागेन्द्र-गच्छ के गुणसेन सूरि की मूर्त्ति उनके शिष्य प० रामचन्द्र ने स्थापित की थी। इसकी प्रतिष्ठा जिन भद्रसूरि से कराई गई थी (स० १३४२ माघ सुदि ८ शुक्रे श्री नागेन्द्र गच्छे पूज्य श्री गुणसेन सूरीणा मूर्त्ति प० रामचद्रेण स्वगुरु श्रेयसे इय मूर्त्ति कारिता प्रतिष्ठाता श्री जिणभद्र सूरिभि)।

शत्रुजय का वर्णन

शत्रुजय जाने के लिए पालीताणा होकर के रास्ता है। पालीताणा जाने के लिये रेल्वे के मार्ग से जाना अधिक सुविधाजनक है।[2] रेल्वे स्टेशन पर जैन गुरुकुल है। सडक द्वारा ग्राम मे जाया जा सकता है। मार्ग मे

---

१ जैसलमेर भण्डार के ग्रन्थ "प्रमाणान्तर्भाव" की प्रशस्ति स ११९४ मे भी देवानन्द गच्छ का उल्लेख किया है। [श्री देवानन्दगच्छान्वयशिशिर करे] यह हारिया गच्छ की एक शाखा थी।

२ शत्रुजय का वर्णन कचन सागरसूरी एव प्रमोदसागर द्वारा लिखित शत्रुजय गिरिराज दर्शन के आधार से लिखा है। अत मैं इन लेखको का कृतज्ञ हू।

पुल के नजदीक दिगम्बर जैन मन्दिर भी बना हुआ है। शहर में कई धर्मशालाये है। यहां से विजय तलाटी होकर के मार्ग है। विजय तलाटी मे कंकु बाई की धर्मशाला है। इसके पीछे मल्लिनाथ भगवान का मन्दिर है। यहां से कल्याण विमल देरी होकर के जाना पड़ता है। थोड़ी दूर पर नन्दा भवन मन्दिर है। इसके आगे केसरिया जी का मन्दिर है। इसे विजय अमृत सूरीश्वर जी महाराज के उपदेश से बनाया गया था। यहां से नाल चालू होती है। यहां और आसपास कई धर्मशालायें बनी हुई है। थोड़ी दूर जाने पर माया तलेटी के पास सती बाब है। इसे वि० सं० १६५७ मे यात्रियो के लिए पानी की सुविधा हेतु सेठ शान्तिदास के भाई सूरदास के पुत्र लक्ष्मीदास ने बनाया था। जय तलाटी जाते समय दाहिने हाथ की ओर वर्धमान जैन आगम मन्दिर बना हुआ है। इसमें ५ मेरु एव चालीस समवसरण है। यह चौमुखा है और इसमे १८० प्रतिमाये है। यहां कई शिलाओं पर आगम एवं कर्म प्रकृति आदि शास्त्रों को शिलालेख के रूप मे खोदा गया है। यहां से सीढ़ियां चढ़कर जय तलाटी पर जाया जाता है। यह खुला हुआ स्थान है। दोनो ओर दो मण्डप है जिन्हे अहमदाबाद निवासी सेठ हेमाभाई बखतचन्द एवं धोलेरा वाले सेठ वीरचन्द भाईचंद ने बनवाये हैं। जय तलाटी के बीच में विशाल शिला रखी हुई है इसकी लोग पूजा करते है। यहां से रामपोल तक जाते हुए ३७४५ के लगभग सीढ़ियां बनी हुई है। यह रास्ता लगभग ३ किलोमीटर दूर है। चारों ओर कई मन्दिर बने हुए है। यहां से कुछ चढ़ते हुये इच्छा कुण्ड नामक स्थान आता है। इसे वि० सं० १६८१ में सूरत के सेठ इच्छाचन्द ने बनवाया था। कुछ आगे राजा कुमारपाल द्वारा बनवाया हुआ कुमार कुण्ड भी है।

यहां से हिंगलाज हडा शुरू होता है। यहां चढ़ाई जरा कठिन है। यहां हिंगलाज माता की मूर्ति है जो अम्बिका का स्वरूप है। यहा से कुछ आगे जाने पर वि० सं० १८७० में बना हुआ छाला कुण्ड नामक स्थान आता है। इससे ऊपर की ओर जाने पर नये रास्ते पर श्री पूज्य जी की देरी आती है। इसे तपागच्छ के देवेन्द्र सूरि नामक एक जैन आचार्य के प्रयास से बनाया गया था। यहां कई देवरियों में पगल्यां भी बने हुये है। यहां सात फण वाली पद्मावती की मूर्ति एवं पांच फण वाली पार्श्वनाथ

की प्रतिमायें है । यहा हनुमानजी एव फणीधर की मूर्तिया भी वनी हुई है । कुछ ऊचे जाने पर एक देहरी आती है इसमे चार मूर्तिया खडगासन मे है इनके नाम है—(१) द्राविड (२) वारिखिल्ल (३) अतिमुक्तक और (४) नारद । इससे रामपोल जाते समय मार्ग मे कई मूर्तिया आदि और भी वनी हुई हैं । इनके नाम है —(१) राम भरत (२) थावच्चा पुत्र (३) शुकपरिव्राजक (४) शैलकाचार्य (५) सुकोशल मुनि (६) नमि विनमि आदि । इनके सम्वन्ध मे यह प्रसिद्ध है कि इन्होने यहा तपस्याये की थी । यहा से हनुमान धारा आती है । यहा से रामपोल जाया जाता है ।

रामपोल से ऊपर जाते समय लगभग १००० देव मन्दिर वने है । इससे अन्दर जाते समय सामने विमल नाथ का मन्दिर आता है । इसे औरगावाद के सेठ मोहनलाल वल्लभदास ने वनवाया था । इसके पास मे सेठ देवचन्द्र कल्याणचन्द्र सूरत वालो द्वारा वनवाया हुआ मन्दिर है । इसमें तीन शिखर है । मूल नायक सुमतिनाथ है । यहा से आगे सगाल पोल आती है । यहा गेस्ट हाउस वना हुआ है । इसके आगे का द्वार वाघण पोल कहलाता है । इसमे हनुमानजी की देरी वनी हुई है । इसके वाद व्याघ्र पतोली द्वार आता है । यहा वस्तुपाल द्वारा वि० स० १२८८ को एक शिलालेख लगवाया गया है । यह लेख काली शिला पर उत्कीर्ण है । यहा प्रवेश करते ही मन्दिरो का विशाल दृश्य देखने को मिलता है । इस पोल पर प्रारम्भ मे वस्तुपाल तेजपाल द्वारा निर्मित मन्दिर थे ।[१] कहते है कि जहा केशवजी नायक का आधुनिक मन्दिर है । वहा पूर्व मे "रेवताचलावतार" एव श्री नेमिनाथ के मन्दिर थे । इसके दाहिनी ओर दमण वाले सेठ हीराचन्द रायकाण का शान्तिनाथ भगवान का मन्दिर वना हुआ है वहा पहले "स्तम्भन पुरावतार" एव श्री पार्श्वनाथ का मन्दिर

---

१ वस्तुपाल मन्त्री द्वारा वनवाये गये मन्दिर अल्लाउद्दीन खिलजी ने नष्ट कर दिये थे । ऐसा प्रतीत होता है कि मन्दिरो के २ शिलालेख हाल ही मे प्राप्त हुये हैं । इनका वर्णन ऊपर किया गया है । एक और लेख मुनि जिनविजय ने भी प्रकाशित किया है । इसी स्थान पर ये मन्दिर रहे होंगे । इसका अनुमान इस वात से किया जा सकता है कि ये शिलालेख यहा से प्राप्त हुये हैं ।

थे। कहते हैं कि ये मन्दिर दीर्घकाल तक वहां विद्यमान थे, वहां पास में कवड-पक्ष का मन्दिर है जो अब भी पूजान्तर्गत है।

बाघणपोल के पास शान्तिनाथ भगवान के मन्दिर से निकलकर थोडी सीढ़ियां उतर कर सं० १५८७ में कोठारी कर्माशाह द्वारा स्थापित चक्रेश्वरी देवी का मन्दिर आता है। इसके बाहर के भाग में पद्मावती, निर्वाणी, सरस्वती एवं लक्ष्मी की मूर्तियां लगी हुई है।

इसके पास में मूल वसही या चीरी वाला मन्दिर है। यह अत्यन्त सुन्दर है। इस गिरिराज पर इसकी तुलना वाला दूसरा कोई मन्दिर नही है। इस कारण से कई लोग इसे विमल वसती भी कहते है। कई लोग इसे खरतरवसही भी कहते है। इसकी स्थापना किसी कुशल कारीगर द्वारा की गई थी। उसने थोड़ी जगह में इसे अच्छा सुसज्जित किया है। मन्दिर के स्तम्भ, पद्मशिला युक्त सुन्दर रंग मण्डप, गूढ मण्डप, मूल प्रासाद आदि अत्यन्त सुन्दर ढंग से खुदे हुए हैं। उसके बाद इसमें देवकुलिकाये है। इसकी छतों एवं दीवारों पर कई दृश्य खुदे हुए है। छत पर नागपास एवं रासलीला के कई दृश्य बने हैं। इस मन्दिर में श्री नेमिनाथ के जीवन से सम्बन्धित अन्य कई दृश्य उत्कीर्ण है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मंदिर काफी प्राचीन है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि इसमें वि० सं० १३७१ के कुछ लेख है।[1]

इस मन्दिर से बाहर आने पर मोक्ष की बारी आती है। इसमें एक ऊंटनी बनी है। उसके पांवों के नीचे से निकलना अच्छा माना गया है। इससे कुछ दूर जाने पर कई देव मन्दिर आते है। इसमे वि० सं० १६८८ में बनाया हुआ अजितनाथ विमलनाथ का मन्दिर व वि०सं० १८१५ में भावनगर के श्रेष्टि कुवर जी लाघा जी द्वारा बनाया हुआ सहस्त्रफण पार्श्वनाथ मन्दिर भी है। इससे कुछ आगे जाने पर १४ वी शताब्दी का धर्मनाथ का मन्दिर है। इसमें भी सुन्दर शिल्प कला का काम हो रहा है।

---

१. यह मन्दिर काफी प्राचीन प्रतीत होता है। यह बड़ा सुन्दर एव कलापूर्ण बना हुआ है। यह वस्तुपाल तेजपाल द्वारा निर्मित नही भी हो तो उसके समकालीन किसी अन्य श्रेष्ठि द्वारा बनाया गया प्रतीत होता है।

इसके बाद वि० स० १६८३ मे हीराभाई का चन्द्रप्रभ का मन्दिर भी उल्लेखनीय है। इसमे सुन्दर नक्काशी वाला तोरण है। यह जामनगर के ओसवाल वर्धमान शाह और पद्मसिंह शाह ने वि० स० १६७८ मे बनाया था। इससे कुछ दूरी पर आदिश्वर भगवान का मन्दिर है। इसे कुमार विहार कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्दिर भी बाद का बना हुआ है। मन्दिर मे नक्काशी का सुन्दर काम हो रहा है।

यहा से कुछ दूर जाने पर सूर्यकुण्ड आता है। इस स्थान की महिमा उल्लेखनीय है। इसके पास भीमकुण्ड, ब्रह्म कुण्ड और ईश्वर कुण्ड आते हैं। इससे कुछ आगे जाने पर वि० स० १७९१ में बना अमभरा पार्श्वनाथ और वि० स० १९८८ मे बना चन्द्रप्रभ स्वामी का मन्दिर आदि आते हैं। इसके समीप पार्श्वनाथ का मन्दिर है। यह सामान्य सा दिखाई देता है किन्तु अन्दर को ओर देखने से इसकी शोभा विशिष्ट है। अन्दर सगमरमर पर सुन्दर कार्य हो रहा है। इसके आगे वि० स० १८६६ मे पाटण के सेठ डूंगरसो मीठाचन्द द्वारा बनवाया हुआ चन्द्रप्रभु का मन्दिर, सूरत के केसरी चन्द बोहरा का बनाया हुआ सम्भवनाथ मदिर एव पाटण के सेठ मीठाचन्द का बनाया अजितनाथ मन्दिर है। वि० स० १७८८ मे बना श्री महावीर का मन्दिर इसके पास है। इसमे समवसरण के दृश्य बने हुए है। इसका निर्माण सूरत वाले सोमचन्द वधाणचन्द ने कराया था। इसके बाद १९ वी और २० वी सदी के बने कई मन्दिर आते हैं।

वि० स० १६७५ मे जामनगर के रायसी शाह द्वारा बनाया हुआ श्रेयासनाथ का मन्दिर है। इसके समीप हो वि० स० १६८६ मे जोधपुर के श्रेष्ठि मनोत्तम मल्ल, जयतमल द्वारा बनाया हुआ चतुर्मुख मन्दिर है। इस मन्दिर मे सुन्दर नक्काशी का काम हो रहा है। इसके बाद हाथीपोल एव रतनपोल आती है।

रतनपोल के समीप पुण्डरीक स्वामी के नीचे जाकर स्नाश्रमण्डप आता है। यहा मे आदिश्वर के मुख्य मन्दिर की ओर जाया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है इसका उद्धार वि० स० १२१३ मे बाहड मन्त्री ने किया। इसके बाद वि० स० १३७१ एव १५८७ मे इसके

जीर्णोद्धार हुये ।[1] कर्माशाह द्वारा कराए गए जीर्णोद्धार का उल्लेख प्रतिमा पर खुदे लेख से भी होता हैं । यह मूलनायक प्रतिमा अब भी पूजान्तर्गत है। इस मूर्ति का परिकर वि० स० १६७० में अहमदाबाद के सेठ शान्तिदास वगैरा ने बनवाया था। सम्भव है कि पुराना परिसर ठीक नहीं था । ७२ देवकुलिकायें हैं। इसमें उल्लेखनीय तीन शिलालेख है। (१) श्रेष्ठि कर्माशाह का है जो वि० स० १५८७ का है। कर्माशाह मेवाड़ के चित्तौड़ का रहने वाला तपागच्छ का श्रावक था। दूसरा लेख इस पहले लेख के सामने है इसमे तेजपाल सोनी द्वारा कराये गये सुधारों का उल्लेख और तीसरा लेख अकबर बादशाह द्वारा जैन साधुओ, जैन मन्दिर एव श्रेष्ठियों आदि से लिए जाने वाले करों को माफ करने का उल्लेख है ।

सम्प्रत्ति देरासर के पास खरतर वसही नामक प्रसिद्ध जैन मन्दिर है। इसे चौमुखा जी का टूंक भी कहते है। यह मदिर बहुत ऊंचा और विशाल है और काफी दूर से दिखाई देता है । इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १६७५ में की थी। इसका निर्माण सवाजी सोमजी ने किया था। इस यात्रा का रोचक विवरण मिलता है। जैसलमेर से माल्हू एवं संखवाल परिवार के कुछ लोगों ने सघ निकाला एवं बाद में अहमदाबाद के संघ में सम्मिलित हो गये। इन्होंने यात्रा का एक सुन्दर पट्ट भी बनावाया जो वि० सं० १६७६ में बना। इस पट्ट में शत्रुजय तीर्थ का पूरा वर्णन है। यह जयपुर के श्वेताम्बर जैन मन्दिर में है और अगरचन्दजी, भंवरलालजी नाहटा ने इसे प्रकाशित भी कराया है। इस विशाल खरतर वसही में कई अन्य मन्दिर भी है। ये अधिकांश मन्दिर वि० स० १६७५ में ही प्रतिष्ठित हुए है। इसमें पुण्डरीक स्वामी का मन्दिर, सहस्त्रकूट मन्दिर शान्तिनाथ भगवान के दो मन्दिर, सीमन्धर स्वामी का मन्दिर, अजितनाथ के मन्दिर आदि है। इस मन्दिर के चारों ओर ७४ देवकुलिकाये हैं।

---

१. वि० स० १३७१ के जीर्णोद्धार का विस्तार से वर्णन "नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध ग्रन्ध में किया गया है। वर्णन बहुत ही लम्बा है वि० स० १५८७ के जीर्णोद्धार का उल्लेख "शत्रुंजय जीर्णोद्धार प्रबन्ध" नामक ग्रन्थ मे हो रहा है।

इस मन्दिर की वारी मे से वाहर आते समय पाण्डवों का देहरासर है। इसमे पाच पाण्डव कुन्ती और द्रोपदी की प्रतिमायें है । श्री टाकीं की मान्यता है कि वे मूर्तिया वि० स० १४२१ मे स्थापित की हुई हैं। इन पर लेख वि० स० १७८८ का है।

खरतर वसही के वाहर की ओर ढलान मे छीपावसही नामक मन्दिर है। इसे भावनगर टूक भी कहते हैं। कहते है इसे छीपाओ द्वारा १४ वीं शताब्दी मे वनाया था। इसे टोट विहार भी कहते हैं। इसके वाद साकर वसही द्वार आता है। इसके वाद नन्दीश्वर द्वीप टूक (वि० स० १८९३), हेमा वसही (वि० स० १८८२, १८८६ एव १८८८), मोरीं की टूक (वि० स० १८४३), सूरतवाला-देरासर आदि मन्दिर आते ह। ये अधिकाश आधुनिक मन्दिर हैं। इसके वाद आदिनाथ की विशाल १८ फीट की प्रतिमा वाला मन्दिर आता है। इसे अदभुत आदिनाथ मन्दिर कहते ह। इसकी प्रतिष्ठा वि० स० १६८६ मे सेठ धर्मदास ने कराई थी। इसे कई लोग भीम का मन्दिर भी कहते हैं। इसके वाद वि० स० १८९३ मे वनी वाला वसही या वाला टूक आती है। इस मन्दिर मे और भी कई मन्दिर हैं—(१) चौमुखा जी मन्दिर, (२) वासूपूज्य जी का मन्दिर (३) अजितनाथ का मन्दिर आदि है।

इसके वाद सेठ मोती शाह की टूक आती है। इस आदीश्वर भगवान के मन्दिर की रचना उल्लेखनीय है। इसकी प्रतिष्ठा स० १८९३ मे की गई थी। इस मन्दिर मे १६ अन्य मन्दिर भी है। एव १२३ देहरिया हैं। इन मन्दिरो मे रखी मूर्तियो की सख्या निम्न है[1]—

मन्दिर का नाम	प्रतिमायें	धातु प्रतिमायें
१ आदिनाथ	४३३६	५०
२ खरतरवसही	७०२	१०
३ छीपा वसही	४८	—
४ साकर वसही	१३५६	१

१ मूर्तियों की संख्या आचार्य कचन सागर एवं मुनि प्रमोद सागर द्वारा दिये गये वर्णन के अनुसार है।

५. नन्दीश्वर द्वीप	२८८	—
६. हेमा भाई की टूंक	२६५	—
७. मोदी टूंक	५२५	१
८. बाला भाई की टूंक	२७०	४५८
९. मोती शाह की टूंक	३०११	१४५

जीर्णोद्धार

जावड शाह द्वारा शत्रुंजय की प्रतिष्ठा कराने एवं कर्पादि यज्ञ की स्थापना करने की कथा बहुत प्रचलित है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में इसका उल्लेख है। "विक्रमादित्य नृपस्य कालादष्टोत्तरे वर्ष शते व्यतीते। शत्रुजये शैल शिला मयस्य कारापिता जावाडिना प्रतिष्ठा।" किन्तु यह उल्लेख समसामयिक नहीं है। विक्रम संवत की तिथियों की गणना करते समय रोचक वर्णन मिलता है कि इसकी तिथियां प्रारम्भ में ६ठी शताब्दी तक "कृत" संवत् के नाम से लिखी जाती थीं। बाद में मालव संवत एवं लगभग ९वीं शताब्दी के बाद इसे विक्रम नाम दिया गया है। इस कथा में जावड शाह द्वारा कर्पादि यक्ष से सम्पर्क होना आदि का भी वृतान्त है। यह वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से इतना प्राचीन मान्य नहीं हो सकता है। इसमें सुलतान के आने का उल्लेख है। सुल्तान शब्द मुसलमान शासकों के उत्तरी भारत में राज्य ग्रहण करने बाद का है। अतः इस कथानक पर पुर्नविचार अपेक्षित है।[1] इसी प्रकार से शीलादित्य नामक के कई राजा हुये है।

शत्रुंजय की बाहड मन्त्री द्वारा वि० सं० १२१३ में प्रतिष्ठा एवं जीर्णोद्धार करने का उल्लेख मिलता है। प्रबन्ध चिन्तामणि, नाभिनन्दन जिर्नोद्धार प्रबन्ध आदि में इसका विस्तार से उल्लेख है। इनमें लिखा है

---

1. वि० सं० १३८५ मे लिखित शत्रुंजय काव्य में सुल्तान का उल्लेख नहीं है। इसमें इसकी तिथि "अष्टान्तरे वर्षशते ऽतीते श्री विक्रमादिह। वहु द्रव्य व्यव-माद् विम्व जावडि: स न्यवीविशत्" लिखा है। इसने पुण्डरीक एवं कर्पादिकी मूर्तियां वहा स्थापित की थी। पुरातन प्रबन्ध संग्रह (पृ० १००) में भी इसका उल्लेख है।

कि उदयन मन्त्री सौराष्ट्र पर आक्रमण करने को जा रहा था। मार्ग मे शत्रुजय रुका और भगवान के दर्शन किये। उस समय सारा मन्दिर काष्ठ का वना हुआ था। उदयन के मन मे जलती हुई वत्ती को देखकर विचार ग्राया कि किसी समय यह मन्दिर ही जल जायगा। अत इसका जीर्णोद्धार कराके इमे पत्थर का वनवाना चाहिये। किन्तु सौराष्ट्र के गजा के साथ युद्ध करते हुए वह घायल हो गया। युद्ध मे उसकी विजय हुई। जब वह लौट रहा था तब मार्ग मे उसने ग्रपने पुत्र के सन्मुख अपनी इच्छा व्यक्त की। उसके पुत्र ने अपने पिता की वात स्वीकार की और मन्दिर को पूर्ण रूप से पत्थरो से वना देने का वादा किया। ग्रपने पिता की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र ने मन्दिर का पूरा जीर्णोद्धार कराके इमे पत्थरो का मन्दिर वनाया। इस कथानक मे कुछ प्रकारान्तर वर्णन भी आये हैं। किन्तु सार रूप से उपरोक्त कथन ठीक है।[1]

समराशाह द्वारा कराये गये जीर्णोद्धार का उल्लेख नाभिनन्दन जिर्नोद्धार प्रवन्ध ग्रन्थ मे विस्तार से किया गया है। इसके अनुसार यह परिवार मूल रूप मे ग्रोसिया से उठकर किराडू आया। देसल श्रेष्ठि के समय उसके तीन पुत्र थे वे तीनो ग्रलग-अलग जगह चले गये। एक देवगिरी, एक खम्भात और तीसरा पाटन गया। तीनो ने प्रयास करके शत्रुजय के जीर्णोद्धार की कोशिश की। इसके लिये गुजरात के प्रशासक मोजुद्दीन से मिल करके उससे फरमान लिया। इसके बाद शत्रुजय की मूर्ति के लिये शिला प्राप्त की एव इसकी प्रतिष्ठा कराई। सघ सहित वहा यात्रा करने व प्रतिष्ठा करने का विस्तार से उल्लेख है।[2]

इसके बाद वि० स० १५८७ मे शत्रुजय के जीर्णोद्धार करने के लिये चित्तौड के श्रेष्ठि कर्माशाह ने भरसक प्रयास किया। यहा राणा सागा के

---

१ उदयनसुतो वाग्भट श्चतुर्विंशति महाप्रासाद कारापक" पुरातन प्रबन्ध सग्रह पृ० ४३) प्रव`घ चि`तामणि मे उदयन मत्री द्वारा शकुनि विहार नामक म`दिर का जीर्णोद्धार कराने का उल्लेख किया है। श्री शत्रुजय शकुनिका विहारयो जीर्णोद्धार वाछया देवज्ञण पृष्टि लग्ण "मन्त्री प्राह")।

२ नाभिन`दन जिर्नोद्धार प्रवन्ध (कक्कसूरि द्वारा लिखित) एव भगवानदास हरखच`द द्वारा सम्पादित प्रस्ताव ४ एव ५।

राज्य में कुछ समय के लिये बहादुर शाह चित्तौड़ में महाराणा की शरण में रहा था। उस समय तोलाशाह एवं कर्माशाह से एक लाख रुपया उधार के रूप में लिया। दोनों ने उसे यही प्रार्थना की यदि वह गुजरात का सुल्तान हो जावे तो उन्हें शत्रुंजय के जीर्णोद्धार की स्वीकृति दे देना। तपागच्छ के कई साधु उस समय बराबर चित्तौड़ आते थे। वे तोलाशाह परिवार को शत्रुंजय के जीर्णोद्धार कराने के लिये प्रेरित करते थे। भाग्य से राजनैतिक घटनाओं में तेजी से बदलाव आया। बहादुर शाह गुजरात का सुल्तान हो गया। कर्माशाह बादशाह के पास पहुँचा व फरमान प्राप्त किया। इसके प्राप्ति के शीघ्र बाद शत्रुजय का जीर्णोद्धार कराया। इसके लिये चित्तौड़ और अहमदाबाद के भी कई कुशल शिल्पियों को लगाया।[1]

संघ यात्राओं की परम्परा

शत्रुजय पर सघ यात्राये राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, पंजाब आदि भागों से श्वेताम्बरो द्वारा करने के वृतान्त मिलते है। साहित्यिक सूत्रो से ये यात्राये दीर्घकाल से होती रही हैं। तीर्थ के खण्डन एवं जीर्णोद्धार होने के वृत्तान्तों से भी इसकी पुष्टि होती है। प्रारम्भ में शत्रुजय पर जाना कठिन कार्य था। बाद में धीरे-धीरे इसमें सीढ़ियां बनाई। इससे संघ यात्रायें भी बढ़ी। गुर्वावलियों में प्रारम्भ में खरतरगच्छ, नागेन्द्रगच्छ, उपकेशगच्छ आदि के वृत्तान्त काफी मिलते है। बाग्भट द्वारा कराया गया जीर्णोद्धार नागेन्द्रगच्छ के सान्निध्य में हुआ था। वि० सं० १३७१ में हुआ जीर्णोद्धार उपकेशगच्छ के आचार्यो की देखरेख में हुआ। वि० सं० १५८७ वाला जीर्णोद्धार तपागच्छ के आचार्यो द्वारा करवाया गया था। गुजरात के शासक जयसिंह कुमारपाल एव उनके मन्त्री वस्तुपाल तेजपाल के समय यहां कई मन्दिर बने थे। वस्तुपाल तेजपाल के तीन शिलालेख भी प्राप्त हो गये है। साहित्यिक सूत्रों से प्रारम्भ से ही खरतर-गच्छ के साधु और श्रावक बडी संख्या में शत्रुंजय जाया करते थे। जैसलमेर

---

1. चित्तौड़ से सूत्रधार टीला, सू० पोमा गांगा गोरा ठाला देवा नाकर नाइयां गोविन्द विणायक टीला बच्छा भाणा काल्हा देवदाहा टीका ठाकर आदि को लगाया। अहमदाबाद से सूत्र श्रीरूपा भामा ठेला मांट न टाला को लगाया। [एपिग्राफिआ इंडिका भाग २ पृ. ४२ पर।]

भण्डार मे सग्रहीत कर्म विपाक ग्रन्थ की वि० म० १२९५ की प्रशस्ति मे पता चलता है कि श्रेष्ठि राल्हा जो चित्तौड का निवासी था शत्रुजय आदि तीर्थो की यात्रायें की थी।[1] यह खरतरगच्छ का श्रावक था। गुजरात से प्राप्त कई सन्दर्भो मे शत्रुजय यात्राओ के उल्लेख मिलते हैं। महाराजा जयसिंह के समय उसके मन्त्री उदयन सौराष्ट्र पर आक्रमण करने गए तब उसने मार्ग मे रुककर शत्रुजय की यात्रा की एव इसका जीर्णोद्धार कराने की भी बात सोची। उसकी इस आक्रमण मे मृत्यु हो गई तब उसके पुत्र वाग्भट ने इसका जीर्णोद्धार कराया। यह घटना वि० स० १२१३ के आस-पास की है। वि० स० १३८५ मे लिखे शत्रुंजय तीर्थकल्प मे कई बार इस तीर्थ के उद्धार करने का उल्लेख है।

खरतरगच्छ पट्टावली मे भी जिनेश्वर सूरि के वि० स० ११८९ मे शत्रुजय आदि तीर्थो की यात्रा करने का उल्लेख है। इसमे श्रेष्ठि राल्हा एव अश्वराज आदि ने सहयोग दिया था। राल्हा चित्तौड का निवासी था। इसका उल्लेख ऊपर वि० स० ११९५ की ग्रन्थ प्रशस्ति के सन्दर्भ मे किया गया है। वि० स० १३२६ मे क्षेमन्धर श्रेष्ठि के वशधर भुवनपाल आदि ने शत्रुजय तीर्थ को यात्रा की। यह यात्रा जिनेश्वर सूरि की देखरेख मे हुई इसमे १७,००० रुपये केवल मालाओ के ग्रहण करने एव विविध पद देने के उपलक्ष मे प्राप्त किये। सा० मूलिग को इन्द्र पद दिया जिससे १४७४ द्रम्म लिये गये।[2] स० १३३३ मे जिन प्रबोधसूरि की देखरेख मे शत्रुजय पर यात्रा सघ गया। इसमे ३२०० द्रम्म देकर दिल्ली के निवासी सौवर्णिक धाघल परिवार भी सम्मिलित था। वि० स० १३६६ मे शत्रुजय मे खरतरगच्छ के सघ के जाने का उल्लेख किया है। इसमे वर्णित किया है "तत्र च श्री शत्रुजय महातीर्थ पर्वता वलोक्य महोत्सव श्रीसघेनकृत"।

---

१ चित्रकूट निवासी श्रे० राल्हा ने वि० स० ११८९ मे यह यात्रा की थी।

२ शत्रुजये श्री युगादिदेव चैत्ये योगिनीपुर वास्तव्य सा० पुन पालेन ३२०० द्रम्मद्रम इन्द्र परिवारेण द्र० सहस्त्र ३ मत्र्यादिपद जगृहे। श्रेष्ठि हरि पालेन द्र० ४२०० पाहला पद। उद्देशत कलशापापपदे सर्वाग्रेण द्र० सहस्त्र २५ सघेनाऽ क्षपा निर्ममिरे (युग प्रधान गुर्वावली पृ ५५)।

वि० सं० १३७६ के मंगसिर बदि ५ को तेजपाल ने शत्रुंजय में विधि चैत्य की स्थापना की। इस समय खरतरगच्छ के आचार्य जिन कुशल सूरि एवं कई उल्लेखनीय श्रावक वहां उपस्थित थे। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १३८० में की गई थी। इसी वर्ष के अन्त में आषाढ़ वदि ६ के दिन शत्रुंजय की यात्रा की गई। लेख में इसे "सकल तीर्थावली प्रधानं सर्वातिशय निधानं" कहकर सम्बोधित किया। इस अवसर पर रथपति सुश्रावक ने अपनी पत्नि और पुत्र के साथ स्वर्ण टंको से पूजा की। अन्य श्रावकों ने रुपयों के टंकों से पूजा की। इस अवसर पर वहां देवभद्र और यशोभद्र नामक दो साधुओं को दीक्षा भी दी। वि० सं० १३८० में शत्रुंजय पर दिल्ली से एक विशाल संघ खरतरगच्छ के जिन कुशल सूरि के सान्निध्य में निकला। यह राजस्थान, गुजरात होकर वहां पहुंचा था। इसमें ठक्कर फेरु धांधिया भी सम्मलित थे।

जैसलमेर के श्रेष्ठि रांका परिवार के लेखों से ज्ञात होता है कि इस परिवार ने वि० सं० १४३६ और १४४६ में शत्रुंजय की यात्रा की थी।[1] ये खरतरगच्छ के श्रावक थे। इन्होंने जैसलमेर में पार्श्वनाथ मन्दिर की स्थापना की थी एवं इसकी प्रतिष्ठा आचार्य जिनवर्धन सूरि से कराई थी। जैसलमेर के ही अन्य श्रावक श्वेता संखवाल का नाम उल्लेखनीय है। इसने वि० सं० १५११ से १५२४ तक प्रत्येक वर्ष शत्रुंजय की यात्रायें की।[2] प्रत्येक वर्ष शत्रुंजय पर यात्रार्थ जाने के उदाहरण इस प्रकार से बहुत कम मिलते हैं।

चित्तौड़ के श्रेष्ठि गुणराज ने जो तपागच्छ का श्रावक था वि० सं० १४५७, १४६२ एवं १४७७ में शत्रुंजय की यात्राये की। अन्तिम यात्रा में इनके साथ सोमसुन्दर सूरि एवं रणकपुर मन्दिर के निर्माता श्रेष्ठि धरणाशाह भी गये थे।[3] यह परिवार चित्तौड़ और अहमदाबाद में रहता

---

१. पूर्णचन्द्र नाहर जैन लेख संग्रह भाग ३ लेख सं० २११३।
२. उक्त, लेख सं० २५५४।
३. डी. आर. भंडारकर "जरनल, बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसायटी भाग २३ पृ. ४१। लेखक की कृति "महाराणा कुम्भा" में इसका मूल पाठ और विस्तृत अध्ययन दिया हुआ है।

था और वहा व्यापार करता थ । १४वी शताब्दी मे लिखे जम्बू द्वीप विज्ञप्ति की प्रशस्ति (शान्तिनाथ ज्ञान भण्डार खम्भात) मे श्रेष्ठि आशाधर द्वारा शत्रुजय पर एक २४ जिनालय वाला मन्दिर वनाने का उल्लेख है (मौन पुण्यमिव प्रौट चतुरिक्ष २४ जिनालय । योऽ चीकारत्तमा शत्रुजय भूधर म उन ।) इसी प्रकार खम्भात के एक ग्रन्थ भण्डार मे रक्षित 'अनेकात जयपताका वृत्ति ' मे वि० स० १३५१ की प्रशस्ति दी हुई है । इसमे लिखा है कि श्रेष्ठि क्षेमसिह एव चाहड ने वि० स० १३५१ में उक्त ग्रन्थ को क्रय करके खरतरगच्छ के जिनचन्द्र सूरि को भेंट किया । इसमे इन श्रेष्ठियो के लिये "शत्रुजयोज्जयन्तादि महा तीर्थसर्व सघ यात्रा कारापण उपार्जित पुण्य प्रासाद रोपित्त कलश ध्वजाभ्या" लिखा है । नागपुरीय वरहुटिया परिवार की कई ग्रन्थ प्रशस्तिया एव शिलालेख मिले ह । इनमे शत्रुजय की यात्रा करने के उल्लेख है । यह परिवार १३वी शताब्दी मे बडा उन्नत था ।[1]

अणहिलवाड पाटन की एक ग्रन्थ प्रशस्ति (स० १५३८) श्री अग-विद्या ग्रन्थ की है, इसमे वहा के श्रीमाल परिवार का वर्णन है । इसमे लिखा है कि देवीसिह नामक एक श्रेष्ठि था उसके श्रवण नामक पुत्र हुआ । वह शीलवान, निर्मल स्वभाव का था । इसके लिये "दीनेपु दान स्व जनेपु मान पात्रेपु वित्त सुकृतेपु चित्र" लिखा गया है । इसने शत्रुजय एव गिरनार की यात्रायें की थी ।[2] खरतरगच्छ के श्रावक कर्णसिह ने अपने पिता माल्हसिह की स्मृति मे वि स १४०५ मे भगवती सूत्र ग्रन्थ की प्रतिलिपि कराई । यह जिनपद्मसूरि का अनुगामी था । यह ग्रन्थ इस समय जैसलमेर भण्डार मे है । 'अल्प वहुत्व स्तवन' नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति मे जो खरतर-गच्छ के जिनसिहसूरि के समय की थी लिखा है कि शत्रुजय के समान प्रथम जिनेश्वर की प्रतिमा को प्रणाम करता है । यह भी जैसलमेर भण्डार

---

१ स्वाति स १२९६ वर्षे वैशाख सुदि ३ श्री शत्रुजय महातीर्थे महामात्य तेजपाल कारित नन्दी सरवर पश्चिम मण्डपे श्री आदिनाथ विंव देवकुलिक दण्ड कलसादि सहिता (नागपुरीय वरहुडिया परिवार का आबू का लेख) ।

२ "शत्रुजये गुरे गिरिनार शृगे रगेण यात्रा किल पश्चकर" अमृतलाल मगनलाल शाह प्रशस्ति सग्रह । पृ ३०–३१

में है । कल्पसूत्र सचित्र ग्रन्थ की वि. सं. १५२४ की प्रशस्ति भी उल्लेखनीय है । इसमें भंसाली जाति के पाटन के निवासी महिराज और नायक के लिये लिखा है कि इन्होंने जीरावला, आबू, सांचोर आदि की वि. सं. १४९९ में यात्रायें की । वि. सं. १४९९ में शत्रुंजय एवं उज्जयंत तीर्थों की यात्रायें की । वि. सं. १५१२ में इस परिवार ने धर्मशाला भी बनाई । ये खरतर-गच्छ के श्रावक थे । यह ग्रन्थ भी जैसलमेर ग्रन्थ भण्डार में है ।[1]

जैसलमेर के भंसाली थाहरु शाह प्रसिद्ध श्रावक थे । इन्होंने लोद्रवा जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया । यह कार्य सं. १६७५ से १६९३ तक चला । थाहरु शाह ने शत्रुजय की यात्रा वि. सं. १६८२ में की थी ।[2] दूसरा उल्लेखनीय संघ वि. सं. १६७५ सवाजी सोमजी नामक श्रेष्ठि अहमदाबाद निवासी ने निकाला । इसी मन्दिर में १४५२ गणधर के पगलियां थाहरु शाह ने प्रतिष्ठित किये थे । उस समय कई संघ आये । जैसलमेर से २ संघ निकाले । इसमें कसरसी, भंसाली, कोचर, संखवाल आदि श्रेष्ठि शामिल हुये थे । उस समय एक सुन्दर चित्रपट्ट भी शत्रुजय यात्रा का बनाया था जो जयपुर के भण्डार में था । यह मुगल शैली की सुन्दर कृति है ।[3]

इसके बाद भो गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि क्षेत्रों से यहां की यात्रायें बराबर होती रहती हैं ।

अन्य साक्ष्य

शत्रुंजय से वस्तुपाल तेजपाल के सम्बन्ध में २ शिलालेखों का उल्लेख ऊपर किया गया है। इसके अतिरिक्त एक खण्ड लेख मुनि

---

१. मुनि पुण्य विजय-केटलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेनुस्क्रिप्ट्स जैसलमेर कलेक्शन पृ० ३६० ।

२. एपिग्राफिआ इण्डिका भाग २ सं. २६ । नाहर-जैन लेख संग्रह भाग ३ के भूमिका भाग पृ० २७ । मुनिजिन विजय जैन लेख सग्रह भाग २, लेख संख्या २६ ।

३. यह चित्रपट्ट काफी लम्वा और विशाल है । चित्र भी सुन्दर वने हुये हैं । इस पे एक विस्तृत लेख भी अन्त मे दिया हुआ है । इसे नाहटा वन्धु ने प्रकाशित किया है । मैंने अपनी पुस्तक जैसलमेर मे इसे दिया है । अव यह पट्ट कहा है यह कहना कठिन है ।

जिनविजयजी ने भी प्रकाशित किया है। इसमे ५ पंक्तिया है। इसके अनुसार अणहिलवाड पाटन के निवासी प्राग्वाट जाति के ठाकुर चडप के पुत्र ठा सोम के पुत्र ठा आशाधर के पुत्र ठा लुणिग ठा मालदेव सघपति वस्तुपाल स तेजपाल ने शत्रुजय तीर्थ पर सचार पाजा बनाई। लेख का आधा भाग खण्डित है।[1]

सबसे महत्वपूर्ण लेख वि स १५८७ का कर्माशा का चित्तौड का है। इसमे प्रारम्भ मे मेवाड के शासको के महाराणा कुम्भा से लेकर रत्नसिंह तक के नाम दिये हुये है। श्लोक स ५ से ७ तक इनका वर्णन दिया हुआ है। इसके बाद श्रेष्ठि कर्मशा के पारिवार का वर्णन है। उसके लिये लिखा है कि ग्वालियर दुर्ग बप्प भाट्ट द्वारा प्रतिबोधित आमराज नामक एक राजा की पत्नि श्रेष्ठि वग व्यापारी वर्ग की थी। उसमे कोठारी गोत्र हुआ। इसी वश मे कर्मसिंह नामक श्रेष्ठि हुआ। शत्रुजय तीर्थोद्धार प्रवन्ध मे उसे कपडे का व्यापारी लिखा है। किन्तु शिलालेख मे "राज्य व्यापार धुरा धौरेय ॥" लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि उसका राज्य के कार्यो मे भी दखल था। उसने बहादुर शाह नामक गुजरात के सुल्तान से फरमान प्राप्त किया और शत्रुजय के जीर्णोद्धार का कार्य अपने हाथ मे लिया। उस समय मन्नादक नामक उसका मन्त्री था एव रवा एव नरसिंह दो गृह मन्त्री थे। उसने इनकी स्वीकृति लेकर शत्रुजय पर सातवा उद्धार किया। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि बहादुर शाह कुछ समय तक चित्तौड मे रहा था। वहा से लौटते समय कुछ सैनिक लेकर गुजरात आया था। कर्माशा से एक लाख रुपया नगद भी लिये थे। रुपया देते समय कर्माशा ने यह कहा था कि उसे रुपीया वापस नही चाहिये। अगर वह गुजरात का सुल्तान हो जावे तो उसे शत्रुजय के जीर्णोद्धार की स्वीकृति दे देना। इस कार्य मे तपागच्छ के दो साधुओ, जिनके नाम विवेक धीर गणि एव विवेक मन्दिर हैं, ने बडी सहायता की थी।[2] मन्दिर के जीर्णोद्धार का

---

१ मुनि जिन विजय 'जैन लेख सग्रह" भाग २ मे अनुवाद पृ ६८। यह लेख दोला वाडी नामक कुण्ड मे लगा है।

२ शत्रुजय तीर्थोद्धार प्रवन्ध मे इसका विस्तार से उल्लेख है। वि स १५८७ के शिलालेख भी दृष्टव्य हैं।

सारा कार्यभार उन्होंने ही देखा था। इस कार्य के लिये चित्तौड़ और अहमदावाद से कई मुगल शिल्पी लगाये थे। इस उद्धार के समय गुजरात से काफी लोग सम्मिलित हुये थे।

श्रेष्ठि कर्माशाह के तीन शिलालेख वहां लगे हुये हैं—(१) मुख्य मन्दिर के पूर्वी द्वार के स्तम्भ पर (२) भगवान आदिनाथ की प्रतिमा पर लेख (३) पुण्डरीक गणधर की प्रतिमा पर लेख। तीसरा लेख छोटा है। पहला लेख जो दीवार पर लगा है काफी विस्तृत है। इसके बाद वि. सं. १६२० बैशाख सुदि ५ के गांधार निवासी श्रेष्ठियों के लेख हैं। ये लेख अधिकांशत: देव कुलिकाओं पर लगे हुये हैं। उस समय तपागच्छ के आचार्य विजयदानसूरि और उनके शिष्य हीरविजयसूरि भी शत्रुंजय पर आये हुये थे। विजयदान सूरि की यह शत्रुजय की यात्रा अन्तिम थी। इसके बाद वि. सं. १६२२ में पाटन के पास बडली ग्राम में उनका देहान्त हो गया। वि. सं. १६२० के लेखों में रामजी श्रीमाल (शान्तिनाथ प्रासाद चौमुखा) एवं अहमदाबाद के दीसावाल वणाइग के नाम तपागच्छ की गुर्वावली में भी दिये गये हैं। वणाइग को कुवर जी नाम से भी जाना जाता था। धर्म सागर की गुर्वावली में इनका उल्लेख इस प्रकार है "तथा यदुपदेश परम्पणै गन्धारीय सा० रामजी अहमदाबाद सत्क सं. कु अरजी प्रभृतिभि: शत्रुञ्जय चतुर्मुखाष्टायदादि प्रासाद देव कुलिकाश्च कारिता" ऋषभदास ने "हीरसूरिरास" में भी इनका उल्लेख किया है।[1]

इस मन्दिर का सबसे बड़ा लेख ८७ पंक्तियों का वि. सं. १६५० का है। यह सोनी तेजपाल का लेख है। यह उक्त लेख सं. १ के सामने स्तम्भ पर है। इसमें उल्लेख किया गया है कि जगद गुरु हीर विजय तथा उनके पट्टधर विजयसेन के उपदेश से सौवार्णिक (सोनी) तेजपाल ने शत्रुजय के इस मन्दिर को पुन: ठीक कराया। प्रारम्भ में तपागच्छ के साधुओं का वर्णन है। इसमें बादशाह अकबर के बुलाने पर सूरिजी फतेहपुर सीकरी

---

१. रामजी गंधारी हुओ जेह शत्रुंजे चोमुख करतो जेह।
संघवी कुंवर जी जसवाद शत्रुजे कीधो प्रसाद ।।५।।
—हीर सूरि रास

वि स १६३६ मे गये। उनके उपदेश मे उसने वर्ष मे ६ माह तक जीव हत्या को रोकने के आदेश जारी किये। मेघ विजय नामक एक जैन २२ सम्प्रदाय के साधु को अपने सघ मे लिया। उसके उपदेश से श्रावको ने मन्दिर का निर्माण कराया। गुजरात एव मालवा से कई सघ यात्री शत्रुजय यात्रार्थ आये। हीरविजय के शिष्य विजयसेन को भी अकबर ने लाहोर बुलाया।

इसके बाद सोनी शिवराज के वश का वर्णन दिया है। इसने वि स १६४६ मे अपने जन्म स्थान खम्भात मे जैन मन्दिर बनाया। शत्रुजय का यह मन्दिर जीर्णसा लगने लग गया था अत उसने पुन जीर्णोद्धार करने की बात सोची। एव इसे पूर्ण किया। हेम विजय नामक एक विद्वान् जैन मुनि ने इस लेख की रचना की इनके द्वारा विरचित पार्श्वनाथ महाकाव्य, कथारत्नाकर, अन्योक्ति मुक्ता महोदधि, कीर्ति कल्लोलिनी आदि ग्रन्थ हैं। विजय प्रशस्ति नामक ग्रन्थ लिखना भी इनने प्रारम्भ किया था किन्तु उनकी मृत्यु हो जाने से इस कार्य को गुणविजय नामक जैन साधु ने पूर्ण किया। धर्म सागर की तपागच्छ गुर्वावली मे इसे वर्णित किया है। इसी प्रकार से हीरसूरि रास[1] नामक ग्रन्थ मे ऋषभदास ने (हीरसूरिरास पृ १६६–२००) उल्लेख किया है कि वि स १६४६ का पाटन मे चौमासा पूरा करके जब हीरविजय सूरि अहमदावाद आये तो उन्होने शत्रुजय यात्रार्थ जाने और मन्दिरजी की प्रतिष्ठा करने का निर्णय लिया। 'धोलका मे सोनी तेजपाल भी साथ हो गया। उसके साथ जाकर मुनि जी ने शत्रुजय का जीर्णोद्धार तथा प्रतिष्ठा की।

हीर विजय सूरि से सम्बन्धित एक और लेख वि स १६३२ माघ वदि २ सोमवार का है। लेख मे हीर विजय सूरि की मृत्यु भादवा सुदि ११ को काठियावाड के उन्नत दुर्ग मे हुई यह लिखा हे।

खरतरवमही की स्थापना वि स १६७५ मे रूपजी नामक श्रेष्ठि ने बडा सघ निकालकर प्रतिष्ठा सहित कराई। इस प्रतिष्ठा को उसके पिता

१, मुनि जिन विजय जैन लेख सग्रह भाग २ पृ २४–३० (अनुवाद) हरिसूरि रास पृ १९९–२०० यह जीर्णोद्धार ६० वर्षों बाद ही किया गया था।

और काका सोवाजी और सोमजी के नाम से अधिक जाना जाता है। यह परिवार अहमदाबाद का था और लघु शाखा का प्राग्वाट था। यह परिवार बड़ा प्रसिद्ध था। इसने संघपति का तिलक निकालकर बहुत बड़ा संघ निकाला। जैसलमेर के संघ वाले भी इसी में आकर मिल गये। इसने चतुर्मुख विहार नामक खरतरवसही का विशाल मन्दिर बनवाया।[1] उस समय ५०१ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की थी। खरतरगच्छ पट्टावली में "सम्वत् १६७५ वैशाख सुदि त्रयोदश्यां शुक्रे श्री राज नगर वास्तव्य प्राग्वाट ज्ञातीय सघपति सोमजी कारित शत्रुजयों परि चतुर्द्वार विहार-हारायमाण श्री ऋषभादि जिनै काधिक पचशत (५०१) प्रतियां प्रतिष्ठा विहित" लिखा है। क्षमा कल्याण की खरतरगच्छ पट्टावली में यह भी वर्णित है कि यह परिवार पहले बहुत गरीब था। एक बार जब जिनचन्द्र सूरि विहार करते हुये अहमदाबाद आये और उनके सदुपदेश से ये दोनों खरतरगच्छ के श्रावक हो गये। उनको कृपा से उन्होंने पुष्कल धन कमाया और महान धनवान हो गये।[2]

सम्वत् १६६४ में बीकानेर के श्रेष्ठि अमीपाल ने अष्टदल कमल पर पार्श्वनाथ बिम्ब बनाकर जिनचन्द्र सूरि से प्रतिष्ठित कराया।

सं. १६७५ का एक और लेख जैसलमेर के संखवाल गोत्रीय कोचर खेतसी का है। उसने भी एक देवकुलिका बनवाई। जिनराज सूरि ने इसकी प्रतिष्ठा की इस लेख में "शत्रुजयाष्टमोद्धार प्रतिष्ठाकारक श्री जिनराज सूरि" पाठ है। शत्रुंजय का अन्तिम ऐतिहासिक जीर्णोद्धार वि. सं. १५८७ मे कर्मा शाह द्वारा हुआ था। इसके बाद आज तक वह मूलनायक प्रतिमा मन्दिर में विराजमान है। इन लेखों में जिनसागर सूरि का भी नाम है। उस समय तक ये भी जिनराज सूरि के साथ थे। वि. सं. १६८६ में ये अलग हो गये और आचार्य शाखा के नाम से खरतरगच्छ की अलग शाखा निकाली।[3]

---

१. ऐपिग्राफिआ इण्डिका भाग २ पृष्ठ संख्या ६२। मुनि जिन विजय जैन लेख संग्रह भाग २ लेख संख्या १७–१९।

२. मुनि जिन विजय जैन लेख संग्रह भाग २ पृष्ठ ३७।

३. लेखक की कृति "जैन इन्स्क्रिप्शन्स आफ राजस्थान" पृष्ठ १९६।

का विस्तृत पट्ट है। इसमे सघ मे जाने वाले यात्रियो आदि का विस्तार से उल्लेख है। यह काफी लम्बा और महत्वपूर्ण है। दूसरा पट्ट सेठ शान्तिदास द्वारा बनाया गया था। सूरत के नन्दीश्वर द्वीप के मन्दिर मे लकडी के पट्ट पर वि म १७८० का बना हुआ सुन्दर पट्ट है। इनके अतिरिक्त मन्दिरो मे शत्रुञ्जय के कई दृश्य बनाये जाते रहे हैं। वि स १४६१ मे देलवाडा (मेवाड) मे एक शिलापट्ट पर इसे सहणपालनवलखा ने बनवाया था। जैसलमेर मे भी कई सुन्दर पट्ट १५वी और १६वी शताब्दी के बने हुये है। गुजरात मे भी कई मन्दिरो मे ऐसे पट्ट बने हुये है।

शत्रुञ्जय के लेखो के तो अनेक सकलन प्रकाश मे आ चुके हैं किन्तु उनसे सम्बन्धित जैन आचार्यो के सम्बन्ध मे जानकारी किसी एक पुस्तक मे उपलब्ध नही है। स्व० मुनि कान्तिसागरजी के द्वारा किया गया यह प्रयास इस कमी को पूरी करता है। अकारान्त क्रम से दिया जैनाचार्यो का यह सक्षिप्त इतिहास मुनिजी के इतिहास तथा पुरातत्व के गहन अध्ययन का परिचायक है। मुनिजी विद्वान होने के साथ ही प्रभावी वक्ता भी थे।

मैं उदयपुर तथा जयपुर मे मुनिजी के सम्पर्क मे कई वर्षो तक रहा हू। उनके पुरातत्व तथा इतिहास के ज्ञान का प्रतीक एक अन्य ग्रन्थ 'एकलिंगजी का इतिहास' भी है। ७०० पृष्ठो मे तैयार किया यह अप्रकाशित ग्रन्थ 'महाराणा आफ मेवाड चेरिटेबल फाउन्डेशन' के पास है। मुनिजी का यह भागीरथ प्रयत्न मेवाड के पूर्व महाराणा की प्रेरणा पर हुआ था। मैं भावना करता हू कि मुनिजी के तैयार किये अन्य अप्रकाशित ग्रन्थ भी इसी प्रकार प्रकाश मे आएगे।

☐

आत्म कथ्य

संशोधनप्रिय जैन समाज के विद्वानों ने अनेक धातु और पाषाण प्रतिमा लेखों के संग्रह प्रकाशित कर भारतीय इतिहास और संस्कृति की उल्लेखनीय सेवा की है। परन्तु ऐसे बहुत कम संग्रह हैं जिनमें प्रतिष्ठापक आचार्य या मुनिवार और तत्सम्बन्धी प्राप्त अन्य ऐतिहासिक साधनों के आधार पर विवरण प्रस्तुत किया हो। युग की मांग है कि केवल लेखों के ढेर एकत्र करना ही पर्याप्त नहीं है, जब तक तदंगीभूत आनुषंगिक विषयों का सप्रमाण परिचय न हो, तब तक इतिहास समीक्षकों को सन्तोष नहीं होता। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रस्तुत संग्रह में प्रयास किया गया है। इसमें बहुचर्चित आचार्यों पर सीमित विचार है और अल्पज्ञात आचार्यों पर यथा-सम्भव विस्तार से विवरण देने का यत्न किया है।

अनुसन्धित्सुओं को इस प्राथमिक प्रयत्न से लाभ होगा तो भावी-प्रकाश्यमान् संग्रहों में भी इसी परम्परा को आगे बढ़ाया जायगा।

मुनि कान्ति सागर

अ

(१) अजूणसूरि-उज्जोयणसूरि-उद्योतनसूरि, (लेखांक २१८, २५८)

एकार्थ द्योतक आचार्य नाम के तीन रूप जैन प्रतिमा-लेखों में दृष्टिगोचर होते हैं। आचार्यों को यह नाम विशेष प्रिय था, विख्यात कथाकार, कुवलयमाला के प्रणेता, दक्षिन्यचिह्नसूरिका भी यही अपरनाम था और वसतिमार्ग प्रवर्त्तक जिनेश्वरसूरि के प्रगुरु भी उद्योतनसूरि ही थे। कालान्तर में प्रद्योतन नाम भी प्रचलित हुआ।

पल्लीवालगच्छीय प्रकाशित[1] पट्टावली में एतद्गच्छीय सात आचार्यों का उल्लेख है, किन्तु किसी के वैयक्तिक जीवन-पट को आलोकित करने वाले प्रमाणभूत ऐतिहासिक साधन अप्राप्त हैं। पल्लीवालगच्छीय विवक्षित उद्योतनसूरि का, प्रतिमा लेखों के आधार पर, अस्तित्व काल सं० १५३८ से माना जाता था, परन्तु इस संग्रह में प्रकाशित सं० १५३६ के लेख से अब १५३६ से माना जाना चाहिये। सं० १५५८ के प्रकाशित नव्य लेख से स्पष्ट है कि यह नन्नसूरि के पट्टधर थे।

पल्लीवालगच्छ की एक अन्य पट्टावली में इस आचार्य का नाम ही नहीं है। इसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है, क्योंकि इसमें सूचित गच्छ केसत्तावनवें आचार्य का विमलसूरि-परिचय में मेदपाट। मेवाड़ स्थित उदयसागर सरोवर की पाल पर निर्मित चैत्य में जिनविम्ब स्थापित करने का निर्देश है[2]। यद्यपि स्थापना काल संकेतित नहीं है, परन्तु सं० १४०२-११ का मध्यवर्त्तीकाल अनुमित है। इन दिनों उदयसागर सरोवर का अस्तित्व ही

---

१. श्री अगरचन्द नाहटा : आत्मानन्द जन्मशताव्दी ग्रन्थ, पृष्ठ १८२-९६

२. विमलसूरि मेदपाट देसे उदयसागरपालिचेइयजिणविंवं वियं,
मुनि जिनविजय : विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह पृष्ठ ७६

नही था। इसी प्रकार स्व० मोहनलाल देशाई ने जैन गूर्जर कवियो भाग १ पृष्ठ ६३ पर ललिताग रास (रचना काल स० १५५३) का प्रणयन स्थान उदयपुर बताया है। सम्भव है वह मेवाड का उदयपुर न होकर मध्यभारत का उदयपुर रहा हो, जहा का उदयेश्वर-प्रासाद शैल्पिक दृष्टि से विख्यात रहा है। मेवाड का उदयपुर महाराणा उदयसिंह (प्रथम) ने स० १६१६ मे बसाया था, उदयपुर बसाते समय इस सरोवर का भी शिलान्यास किया था[1]। पल्लीवालगच्छीय पट्टावली की अन्य घटनाए भी ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर सदिग्ध सिद्ध होती हैं।

अजूणसूरि-उद्योतनसूरि के अन्य लेख विनयसागर १५३३-४०-५१-५९, राधनपुर १५५८, नाहर १५३६, मुनि दर्शनविजय (पट्टावली समुच्चय) १५२८, और श्री नाहटा बन्धुओ के १५३६-५६ सग्रहो मे पाये जाते हैं।

(२) अभयचन्द्रसूरि (लेखाक ५०)

श्वेताम्बर जैन-परम्परा मे सवत् १३७९-१४८६ के मध्य मे अभयचन्द्रसूरि नाम के अनेक महापुरुष हुए है। किसी सन्दर्भ मे गच्छ का नाम है तो किसी मे नही हैं। मुनि जयन्तविजय[2] और नाहटा[3] सग्रह मे स० १३७९-९२ और ९४ के लेख समुपलब्ध हैं। स० १३९४ के लेख मे गच्छ का निर्देश स्पष्ट न होने के बावजूद भी इस आचार्य को पौर्णमिक प्रमाणित किया जा सकता है, कारण कि उस लेख मे 'चतुर्थशाखा और 'उपदेशेन' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं। चतुर्थशाख का अस्तित्व पूर्णिमापक्ष मे रहा है और इस परम्परा के आचार्य प्रतिष्ठापक न होकर

---

१ स्व० गौरीशकर हीराचद ओझा राजपूताने का इतिहास, पृष्ठ ७३३, त्रिपुटी महाराज रचित जैन-परम्परा के इतिहास भाग ३ पृष्ठ ३५ पर स० १५२५ मे उदयपुर बसाये जाने का सकेत है, जो भ्रामक है, इसी प्रकार श्रीमभाग-परीय वृहत्तपागच्छीय पट्टावली मे पृष्ठ ४२ पर स० १५०० मे उदयपुर बसाये जाने का उल्लेख भी सही नही है, कारण कि उस समय तो मेवाड नरेश महाराणा कुम्भकर्ण स्वय जीवित थे, (राज्य काल स० १४९०-१५२५)

२ अर्बुद प्राचीन जैन लेख सदोह, लेखाक क्रमश ५४८-५६६

३ बीकानेर जैन लेख सग्रह लेखाक ३१५

उपदेशक हो रहे हैं। प्रथम लेख का अन्तिमांश अप्राप्त है और दूसरे लेखों में उपदेशेन शब्द से आचार्य का पौर्णमिक होना प्रमाणित है, असम्भव नहीं कि तीनों ही प्रतिमा-लेख वांछित अभयचन्द्रसूरि के उपदेश की परिणति हो। साधुपूर्णिमा अभयचन्द्रसूरि ने सं० १४१२ अणहिलपुर पत्तन में पं० महिया से शान्तिनाथ चरित्र प्रतिलिपित करवाया था।[1]

इस संग्रह में साधुपौर्णमिक अभयचन्द्रसूरि का स० १५५४ का नव्य लेख प्रकाशित है। प्रतिमा-लेख संग्रहों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इनके अन्य लेख मुनि विद्याविजय[2], मुनि जयन्तविजय[3] और नाहटा[4] के संकलनों में (स० १४२३–२० ५८–६६–८६ के लेख) प्राप्त हैं। यह दीर्घ-कालिक अन्तराल एक आचार्य के अस्तित्वकाल पर सन्देह उत्पन्न कर सकता है, परन्तु साथ ही इस तथ्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि सूचित कालावधि में इस नाम का और कोई आचार्य पूर्णिमापक्ष में न हुआ है। अतः संकेतित सभी लेख इस अभयचन्द्रसूरि के मान लेने में आपत्ति नहीं प्रतीत होती। इस कथन के समर्थन में अकाट्य निम्न तथ्य विचारणीय हैं :

सं० १४८६[5] के लेख से प्रमाणित है कि रामचन्द्रसूरि इनके पट्टधर थे और इसी आचार्य ने दर्भिका/डभोई में सं० १४९० में पद्यबध संस्कृत भाषा में बत्तीस कथात्मक विक्रमचरित्र का प्रणयन किया। प्रणेता ने स्वयं स्वीकार किया है कि क्षेमकर मुनि की सिंहासनद्वात्रिंशिका से मैंने भाव ग्रहण किये है। इससे ज्ञात होता है कि कवि को लोक-चरित्रों के प्रति गहरी आस्था थी, तभी तो इसने सं० १४९० में गिर्वाणगिरामें गद्यपद्यात्मक २२५० श्लोक परिमाण में पंचदण्डान्त छत्र-प्रबन्ध की रचना की। इसी आचार्य रामचन्द्रसूरि के अध्ययनार्थ ललितकीर्त्ति मुनि ने सं० १४५३ फाल्गुन सुदि

---

१. मुनि जिनविजय : जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १३८

२. प्राचीन लेख संग्रह, लेखाक ७७

३. अर्बुदाचल जैन लेख संदोह, लेखांक ५६६

४. बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखांक १६२८, ५५३, १९३८

५. अर्बुदाचल जैन लेख संदोह, लेखांक ३०३–४२

पूर्णिमा पत्तनस्थ राउतवाडे मे न्यायावतारप्रकरण का प्रतिलेखन किया[1]। इन्हे आचार्य पद से कब अलकृत किया ? अज्ञात है। अभयचन्द्रसूरि के लेख बुद्धिसागरसूरि—भाग १-१४७७-९३ तथा भाग २-१५०४ और नाहटा—म० १४९३ मे पाये जाते हैं।

आचार्य रामचन्द्रसूरि ने स्तम्भनीथ/खम्भात निवासी श्रीमालवशीय वरसिंह पुत्र धनराज के साथ जीरावला तीर्थ, गिरनार और अर्बुद की यात्रा स० १४८४ मे की थी। मुनिचन्द्र, शीलचन्द्र, नयविनय आदि मुनि साथ थे।

यथा

रसवसुपूर्व्वामिताब्दे चैत्र कृष्णे दशमिशनिवारे
श्रीरामचन्द्रसूरीद्रा प्रणमति आदिनेमिजिनो
श्रीमालवशमडनश्रीस्तम्भनकपुरनिवासकृतशोभ-
सघपतिवरसिंहसुतो धनराजा धर्मकर्मणि श्रेष्ठ
श्रीजोरपल्लिनाथ अर्बुदतीथ तथा नमस्कुरुते
सकुटुम्वसघसहित श्रीरामचन्द्रसुगुरुसयुक्त
मुनिचन्द्रगणिर्नामा शीलचन्द्रो महामुनि
नयसोवनयसारस्तौ नम (म) त्यादिनेमिजिनौ[2]

सवत् १४८६ की यात्रा मे भी सूचित मुनि सम्मिलित थे —

सवत् १४८६ वर्षे चैत्र सुदि १४ बुधे श्रीसाधुपूर्णिमापक्षउद्योतकारक भट्टा श्रीअभयचन्द्रसूरिपट्टु (ट्ट) द्ध (ध) र श्रीरामचन्द्रसूरि ( ) तत्पट्टालकरण० गणि प० मुनिचन्द्रगणि/शीलचन्द्रमुनि जयसारमुनि विनयरत्न आत्म पचम परिवारस।[3]

---

१ मुनि पुण्यविजय केटलोग ऑफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स पार्ट १ पेज २०१।

२, ३ अर्बुद प्राचीन जैन लेख सदोह, लेखाक ३०३-४२।

(३) अमरचन्द्रसूरि :-(लेखांक २०१)

जैन साहित्य और प्रतिमालेखों में एकाधिक अमरचन्द्रसूरि का नाम दृष्टिगोचर होता है। कतिपय समान नामधारी आचार्य स्वल्पकालिक अन्तर में हुए हैं, जिनका पार्थक्य एक समस्या बन जाती है। इस संग्रह में बृहद्गच्छीय अमरचन्द्रसूरि का सं० १५३० का प्रतिमालेख प्रकट किया जा रहा है। इसमें पूर्व पट्टाधीश का नाम नहीं है। मुनिमालदेव प्रणीत बृहद्-गच्छीय गुर्वावली में[1] भी अमरचन्द्रसूरि का नाम नहीं है। नाहटाबन्धुओं के[2] लेख संग्रह में सं० १४४९ का बृहद्गच्छीय अमरचन्द्रसूरि का एक लेख उपलब्ध है, परन्तु वह अभयदेवसूरि के पट्टधर थे, अतः यह अविवक्षित थे। ''अगच्छीय इस नाम के आचार्य का लेख सं० १३९३ का नाहर भाग २ में है, जो अलोच्याचार्य जयमगलसूरि के शिष्य थे :—

तस्यान्वये यस्य बभूव साक्षात् सरस्वतीति प्रथितः पृथिव्याम्
सूरीश्वरः श्रीजयमंगलाख्यस्तच्छिश्यवर्योअमरचन्द्रसूरिः[3]

नाहटाबन्धु[4] संग्रह में सं० १४६७, १५०१, १५०४-५ के लेख बृहद्गच्छीय अमरचन्द्रसूरि के हैं। असम्भव नही ये सभी लेख इन्हीं आचार्य के है, अतः इनके प्रतिमालेख स० १४६७-१५३० तक के मिलते हैं।

---

१. मुनि दर्शनविजय : पट्टावली समुच्चय भाग २ पृष्ठ १८७
२. बीकानेर जैन लेख संग्रह, लेखांक ५५
३. मुनि पुण्यविजय : केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, वोल्युम १ पेज २
आश्चर्य है विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह में प्रकाशित गुरुमालिका श्री अमरचन्द सूरि के सम्बन्ध में मौन है, जयमंगलसूरिका भी संकेत नही मिलता जबकि इनके लेख हैं।
४. बीकानेर जैनलेख संग्रह, लेखांक ७९४, ८४३, ८८८, ८९५।

आ

(४) आणदप्रभसूरि (लेखाक १५७)

आगमगच्छीय आणदप्रभसूरि के पट्टधर मुनिरत्न के शिष्य ने इनका उल्लेख इस प्रकार किया है —

तत्पदाबुजयुग्मपाशुविलसत्पीयूषपानान्विता
श्रीसघेन मम समुद्रवसनापीठं विरस ग्रह (?)
श्रीमन्तो वितरन्तु सौख्यमनिश सिद्धान्तपारगमा
आनन्दप्रभमूरय सुगुरय कुर्वन्तु वो मगलम्[1]

× × × ×

भवियण पणमइ जनित विहाण, सिरिसियलरयणसूरि गुरु पहाणा
तस्स पट्टि धुरधर सुगुरुराय, जस पणमइ भवियण धरीयभाव
मही मडलि विहिरइ धम्म दति, सिरि आणदप्रभसूरि विरजइ आत[2]

उद्धरणो से स्पष्ट है कि आणदप्रभसूरि आगमिक आचार्य शीलरत्न सूरि के पट्टधर थे। इन्हे कब आचार्य पद प्रदान किया ? अज्ञात है, परन्तु स० १५१३ से पूर्व पदासीन हो चुके थे। स० १५४२ तक इनके लेख मिलते हैं। प्रतिमालेखो से ज्ञात होता है कि इनके दो पट्टधर गुणरत्नसूरि[3] और मुनिरत्नसूरि[4] थे।

---

१ २ पट्टावली समुच्चय भाग १ पृष्ठ १८७।
३ बुद्धिसागरसूरि भाग २ लेखाक ८२४।
४ डा० भोगीलाल जयचन्द साडेसरा फॉर्ब्स गुजराती सभा त्रैमासिक वर्ष ४, अक ४, पृष्ठ ४५१ तथा पट्टावली समुच्चय भाग २।

आनन्दविमलसूरि के समय की साहित्यिक रचनाओं से ज्ञात होता है कि उस समय के समाज ने इनके द्वारा आचरित सिद्धान्तों का हृदय से समादर किया था। कवियों ने अपनी रचनाओं में भी इस तथ्य को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है—

इनके प्रशिष्य आनन्दविजय ने आनन्दविमलसूरि-स्वाध्याय में सूचित किया है—

जेणुद्धरिका किरिया, सुत्तत्थं लहिय गहिय परमत्थं
उज्झिअपमायपंथं, तं वंदे भूरिगुणसूरि
आसी किरियापल्लविओ, निलाणिमावन्नओं वि कलिदोसा
चारित्तकपप्रुक्खो जेणं वेरग्ग-रस-सित्तो

× × ×

सोहाविअं पवयणं, तहं जेणं मुणिवरिंदेण
विहिओ उग्गविहारो, पुहविअले सव्वभध्वताणं[1]

सम्यक्त्वसप्ततिकाकार के शब्दों में—

परम्परायामपि तस्य जातः साधुक्रियामार्गविकाशभास्वान्
आनन्दपूर्वो विमलाग्रसूरिर्जगज्जनानन्दकरः प्रतीतः[2]

इस प्रकार के और भी उल्लेख प्राप्त हैं। आनन्दविमलसूरि-स्वाध्याय[3] और कवि वासण प्रणीत रास[4] जैसी स्वतन्त्र कृतियां भी इनकी कीर्त्तिलता का विस्तार कर रही हैं।

---

१. जैन सत्यप्रकाश वर्ष ८ पृष्ठ ३५५
२. मुनि पुण्यविजय—केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स्-प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ १५७
३. मुनि जिनविजय—जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य-संचय, पृष्ठ १९३
४. विजयधर्मसूरि—ऐतिहासिक जैन रास संग्रह भाग ३ पृष्ठ ११६

आनन्दविमलसूरि के प्रशिष्य हार्नपि-सहजकुशल ने जिनप्रतिमादि-विचारहुण्डिका का प्रणयन कर उस समय की एतद्विपयक चर्चाओ का परिचय दिया है। यह रचना स० १५७५ की है और इसमे पाच वप पूर्व ही विजयमत का प्रादुर्भाव हुआ था। आचार्यश्री के शिष्य विजयविमल ने गच्छाचारपयन्ने पर तथा हर्षकुल की त्रिभगी पर वृत्तिया की। इसी विजयविमल के शिष्य आनन्दविजय ने न्यायसग्रहसूत्र पर लघुवृत्ति स० १६३४ मे रची[1]।

स० १५७६ कार्तिक सुदि ४ गुरुवार को आनन्दविमलसूरि-शिष्य विजयचन्द्र ने उपदेशकथारत्नकोश तथा एक अन्य विनेय श्रीकर्णगणि ने स० १६१२ आश्विन सुदि ११ तालघ्वज/तलाजा मे शान्तिनाथचरित्र प्रतिलिपित[2] किया।

अहमदावाद से प्रकाशित श्रीप्रशस्तिसग्रह (पृष्ठ २९) मे सिद्धान्त-चर्चा का प्रतिलेखन काल स० १५२५ दिया है और सूचित प्रति आनन्द-विमलसूरि के शिष्य, धनविमल-शिष्य शिवविमल पठनार्थ लिखी गई है। लेखन काल भ्रामक है, कारण कि स० १५२५ मे तो आचार्य का जन्म भी नही हुआ था, इसी प्रकार और भी भ्रामक प्रशस्तियें हैं। इनका स्वर्गवास स० १५९६ मे अहमदावाद मे हुआ था।

आनन्दविमलसूरि ने अनेक प्रतिष्ठाए करवाई थी, इनके स० १५९० के अतिरिक्त अन्य प्रतिमालेख बुद्धिसागरसूरि भाग १—स० १५९०-९५ भाग २—१५८१-९५, नाहर भाग—२-१५६५, नाहटा १५९१, जैन सत्यप्रकाश वप ११ पृष्ठ १०४-१५६५, जै स प्र व २ पृष्ठ ३३-१५६५ सग्रहो मे पाये जाते हैं।

---

१ मुनि पुण्यविजय—केटलोग ऑफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स-प्रशस्ति आदि सग्रह, पृष्ठ ३७४

२ जैन सत्यप्रकाश वर्ष १९ पृष्ठ २४०

ई

(६) ईश्वरसूरि (लेखांक १५४) षंडेरगच्छीय

षंडेरगच्छ में शान्तिसूरि, सालिसूरि, सुमतिसूरि और ईश्वरसूरि के नामों की पुनरावृत्ति होती रही है। कभी कभी तो समान नामधारी आचार्यो का पट्ट-परिवर्तन इतने स्वल्प काल में हुआ है कि यदि पूर्व-पट्टाधीश का नाम लेख या रचना में न हो तो एक दूसरे के साथ पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना कठिन हो जाता है। इस प्रश्न पर शान्तिसूरि के परिचय में (संख्या 130) विस्तार से विचार किया है। विवक्षित ईश्वरसूरि यशोभ्रद्र सूरिशिष्य शान्तिसूरि के पट्टधर थे, जैसा कि नाहर संग्रह भाग ३ के सं० १५११ लेख से सिद्ध है। आश्चर्य है कि सं० १५१९ माघ सुदि ४ रविवार के लेख में ईश्वरसूरि पट्टे शान्तिसूरि का उल्लेख है और इसी वर्ष के वैशाख वदि ११ शुक्रवार के लेख में शान्तिसूरि पट्टे ईश्वरसूरिका संकेत है। दोनों लेख क्रमशः बुद्धि० भाग २ लेखांक ५४० और विनय० लेखांक ६०० हैं।

वांछित ईश्वरसूरि के प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित सं० १५१७ के अतिरिक्त प्रतिष्ठालेख विनयसागर १५१३-१९, नाहर भाग २-१५१३-१३, बुद्धिसागरसूरि भाग १-१५१७, मुनि विशालविजय-१५१८ के सकलनों में पाये जाते हैं।

उ

(७) उदयचन्द्रसूरि (लेखाक १३३ ए) पूर्णिमा–भीमपल्लीय

पूर्णिमा पक्ष के भीमपल्लीय उदयचन्द्रसूरि विजयचन्द्रसूरि के पट्टधर थे[1]। लगभग समकालिक पौर्णमिक कवि उदयसमुद्र प्रणीत पूर्णिमागच्छ गुर्वावली मे इनका उल्लेख नही है। स्व० मोहनलाल देसाई द्वारा प्रस्तुत परिष्कृत पट्टावली मे इनके सम्बन्ध मे केवल इतना ही सूचित है कि इनके लेख स० १५५०–६१ तक मिलते हैं।

उदयचन्द्रसूरिका सर्वप्रथम लेख इस सकलन मे स० १५११ का है और अन्तिम लेख स० १५६५ के बुद्धि० भाग १ (लेखाक १०९९) तथा मुनि कान्तिसागर सग्रह मे (लेखाक २८०) प्राप्त हैं। दीर्घकालावधि से सहज ही मानस मे शका उत्पन्न होती है कि विजयचन्द्रसूरि के ही यह आचार्य पट्टधर थे या क्या? परन्तु अन्यान्य ऐतिहासिक साधनो से मनस्तुष्टि हो जाती है। विजयचन्द्रसूरि का अस्तित्व काल स० १५२८ तक तो प्रतिमालेखो के आधार पर असदिग्ध है (विनयसागर सग्रह मे इनका लेख दृष्टव्य है, लेखाक ७०६)। और उदयचन्द्र के पट्टधर मुनिचन्द्र सूरि के स० १५५८–९१ के लेख बुद्धिसा० सग्रह मे पाये गये हैं (भाग २ लेखाक ११२–६२)। इनके मध्यवर्ती काल मे इस नाम के अन्य कोई आचार्य इस परम्परा मे नही हुए, अत पूर्ण या पुण्यचन्द्रसूरि, विजयचन्द्रसूरि-उदयचन्द्रसूरि और मुनिचन्द्रसूरि का पट्टक्रम असदिग्ध है। प्रतिमा लेखो के अतिरिक्त इसी परम्परा के परवर्ती कवि ने भी इसका समर्थन किया है

---

१ बुद्धिसागरसूरि—भाग १ लेखाक १०९८

साधुपुनियापक्षि मंडणु ए उदयाचल जिम दिनकार
संवेगरंगि मलपता श्री उदयचन्दसुरिंद
तास पाटि सोहाकरु ए तारक मांहि जिम चद
श्रीमुनिचन्दसूरीश्वरु ए तासु पाटि प्रगट प्रभावि[1]

× × × ×

पुनिमपक्षि गरुआ गच्छनायक श्रीउदयचन्दसूरींद
तसु पाटि श्रीमुनिचन्दसूरीश्वर सोल कला जिम चन्द रे[2]

(८) उदयदेवसूरि (लेखांक ५३) षंडेरगच्छीय

षंडेरगच्छीय इस आचार्य का केवल यही एक मात्र प्रतिमालेख प्राप्त है। कहना चाहिए कि इसी लेख द्वारा ही आचार्य प्रकाश में आ रहे है। एतद्विषयक विशेष ज्ञातव्य अज्ञात के गर्भ में है।

(९) उदयनन्दिसूरि (लेखांक १४३) तपागच्छीय

सोमसुन्दरसूरि-परिवार के आचार्य जयचन्द्र के स्वहस्त दीक्षित और विद्या शिष्य आचार्य उदयनन्दिसूरि विख्यात रहे हैं। तात्कालिक सामूहिक प्रतिष्ठालेखों और पुषिकाओं में इनका नाम दृष्टिगोचर होता है। स्वतन्त्र प्रतिष्ठालेख भी प्राप्त है। उदयनन्दिसूरि-शिष्य संघकलश द्वारा सं० १५०५ तलवाडा में प्रणीत अष्टभाषामय सम्यक्त्व रास उपलब्ध है।

सं० १५१३ के अतिरिक्त प्रतिमालेख विद्याविजय १५१०, नाहर भाग २ १५०८, मुनिविशालविजय १५१२ (इस लेख में इनके शिष्य सुरसुन्दरसूरि का नाम है), बुद्धिसागरसूरि १५०९, नाहटा १५१६ और जैनसत्यप्रकाश वर्ष ३ पृष्ठ १५४-१५०८ में पाये जाते हैं।

---

१. २. स्व० मोहनलाल देशाई : जैन गूर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ २०४, भाग ३ पृष्ठ ६७६

(१०) उदयप्रभसूरि (लेखाक २६८) धर्मघोषगच्छीय

यह आचार्य धर्मघोषगच्छीय मलयचन्द्र सतानीय कमलप्रभसूरि के पट्टधर थे। इस सग्रह मे प्रकाशित स० १५७० के लेख के अतिरिक्त एक और प्रतिष्ठालेख मुनि कान्तिसागर-सग्रह मे स० १५७६ का उपलब्ध है, परन्तु इसमे धर्मघोषगच्छ का सकेत नही है। प्रवचनसारोद्धार टिप्पणक भी उदयप्रभसूरि प्रणीत प्राप्त है। सम्भावना तो यही है कि वह भी इन्ही की रचना हो।

(११) उदयप्रभसूरि (लेखाक २०६) ब्रह्माणगच्छीय

ब्रह्माणगच्छीय उदयप्रभसूरि के धातुप्रतिमालेख प्रभूत परिमाण मे उपलब्ध है, परन्तु किसी भी लेख मे इनके गुरु या पूर्वपट्टाधीश का नाम निर्दिष्ट नही है, न इनका वैयक्तिक परिचय ही प्राप्त है। नाहटा सग्रह के स० १५३० लेख से (लेखाक २४४१) केवल इतना ही ज्ञात हुआ है कि राजसुन्दरसूरि इनके पट्टधर थे और इन्हे स० १५२७ के अनन्तर आचार्य पद मिला, कारण कि विनयसागर सग्रहस्थ स० १५२७ लेखाक २९९ मे इनका उल्लेख राजकीर्त्ति नाम से हुआ है।

बाबू पूर्णचन्द्र नाहर सग्रह भाग २ मे स० १५१३ पोष वदि ७ के दो प्रतिमा लेख हैं, जो एक ही परिवार से सम्बद्ध हैं, उनमे उदयप्रभसूरिका इस प्रकार उल्लेख हुआ है —

ब्रह्माणे उदयप्रभसूरि तपा भट्टारक श्रीपूर्णचन्द्रसूरिपट्टे हेमहससूरिभि

× × × ×

ब्रह्माण तपागच्छे उदयप्रभसूरि भट्टारक श्रीपूर्णचन्द्र सूरिपट्टे श्रीहेमहससूरिभि

उद्धरणो से मानस मे प्रश्नरेखा उभरती है कि क्या उदयप्रभसूरि हेमहससूरि के पट्टधर थे ? जैन ऐतिहासिक साधन इस तथ्य को स्वीकार नही कर सकते। पूर्णचन्द्रसूरि और हेमहससूरि (इनका परिचय स० १६३ मे प्रदत्त है) नागपुरीय तपागच्छ से सम्बद्ध रहे हैं। ब्रह्माणगच्छीय प्राप्त

साहित्य एवम् प्रतिमालेखानुशीलन से स्पष्ट है कि संकेतित दोनों आचार्यों का इस गच्छ में कभी अस्तित्व नहीं रहा, और तपागच्छ की नागपुरीय शाखा की पट्टावली आदि से सिद्ध है कि उदयप्रभसूरि नाम का कोई आचार्य उसमें नहीं हुआ। प्रतिमा लेखों में गच्छ का संकेत आचार्य नाम से पूर्व ही मिलता है, उदयप्रभसूरि के पूर्व में ब्रह्माण और अन्य के पूर्व तपागच्छ का संकेत दोनों के पार्थक्य का परिचायक है। यहां भी शंका को अवकाश है। नाहर संग्रहस्थ लेख में (लेखांक १०८१) 'तपा' शब्द है और उसी लेख के विद्याविजयसग्रह के पुनः प्रकाशन मे (लेखाक २८४) 'तथा' शब्द है। वास्तविक पाठ निर्णय तो लेख के मूल रूप को देखकर ही किया जा सकता है। यदि 'तथा' शब्द योजित हो तो भी वह तथ्यबोधक है, अर्थात् गच्छ भिन्नत्व का संकेत देता है। परन्तु उद्धरण में ही ब्रह्माण तपागच्छ का सकेत है। वह 'तथा' के स्थान पर 'तपा' शब्द मनवाने को को विवश करता है। इसका आंशिक समर्थन अर्बुदाचल प्राचीन जैन लेख सदोह (लेखांक ६४३) से होता है, इसमें उदयप्रभसूरिको बृहद्गच्छीय सूचित किया है। इनके अन्य सभी लेखों में ब्रह्माणीय ही बताया गया है। फिर भी प्रश्नचिह्न बना है कि ब्रह्माणगच्छ के लेख में हेमहंससूरिका नाम क्यो है ? इसका समाधान यह हो सकता है कि प्रतिष्ठोत्सव पर हेमहससूरि भी समुपस्थित रहे होग और वरिष्ठ आचार्य होने के कारण इनका नाम लेख में उत्कीर्णित करवा दिया होगा। इस प्रकार की परिपाटी जैनाचार्यो मे थी।

उदयप्रभसूरि के अन्य लेख नाहटा १५०१–६–११–१८–२१–२८, विनयसागर १५०६–१३–१५–२७–४७, मुनि विशालविजय १५२०, विद्याविजय १५१३, मुनि जयन्तविजय के १५१९ सग्रहों में प्राप्त है।

(१२) उदयसागरसूरि : (लेखांक २१३–२१–४७–५२–५४) बृहद्-तपागच्छ

प्रस्तुत आचार्य बृहत्तपागच्छीय शासनप्रभावक ज्ञानसागरसूरि के पट्टधर थे। इसी गच्छ में इनसे कुछ ही दिन पूर्व रत्नसिंह लब्धप्रतिष्ठ आचार्य हो चुके थे। अतः उदयसागरसूरि किसी-किसी प्रतिमा लेख में अपने को रत्नसिंहसूरिसन्तानीय सूचित करते हैं, (मुनि विशालविजय :

लेखाक ३०१) । सूरिवर के वयक्तिक जीवनपट को अलोकित करने वाले ऐतिहासिक साधनो का अभाव है। पट्टावलियो मे केवल इतना ही सकेत प्राप्त है कि उदयसागरसूरि ने लब्धिसागर, शोलसागर, चारित्रसागर, धनसागर और धनरत्न को आचार्य पद से अलकृत किया था । तात्कालिक प्रतिलिपित प्रतियो से ज्ञात होता है कि इनका शिष्य-प्रशिष्यादि परिवार परमविद्योपासक था । पाचो ही आचार्य अपने-अपने क्षेत्र मे यशर्जित हुए।

समाज और राष्ट्र के प्रति अन्वेषक का महान् दायित्व है। विराचरित ज्ञानसाधना द्वारा सत्याभिव्यक्ति ही इसका एकमात्र उद्देश्य है। त्रुटिपूण या भ्रामक निष्कप भावी अनुसन्धित्सुओ को भ्रामित कर सकता है। ऐसा ही अनैतिहासिक भ्रम उदयसागरसूरि के सम्बन्ध मे फला है। इसका परिमाजन अपेक्षित है। सुप्रसिद्ध अन्वेषक त्रिपुटी महाराज ने अपने वहुचर्चित जैन परम्परा के इतिहास भाग ३ पृष्ठ २६ मे सूचित किया है कि भट्टारक उदयसागरसूरि आ० हीरविजयसूरि के समय मे विद्यमान थे। आश्चय तो इस बात का है कि इस लेखन के नीचे की पक्ति मे इन द्वारा आचाय पद प्राप्त लब्धिसागर का समय स० १५५७ सूचित किया है। प्रतिमालेखो से प्रमाणित है कि उदयसागरसूरि का आचार्यत्वकाल स० १५३२-७३ तक का रहा है जबकि हीरविजयसूरिका जन्म स० १५८३ मे हुआ था और हीरविजयसूरिका आचार्यत्व समय स० १६१०-५२ तक का सिद्ध है।

इस सग्रह मे आचार्यश्री के १५३२-३६-४९-५२-५४ पाच नव्य प्रतिमालेख प्रकाशित किए जा रहे हैं शेष लेख नाहटा १५४९, बुद्धिसागर-सूरि भाग १, १५३३-३५-३६-४२-४३-४६-४९-५४, भाग २, १५३३-३४-३७-४१-४२-४३-४८-५२-५३-५४-७३, निज दैनन्दिनी से स० १५४१, नाहर भाग १, स० १५३२-३६-४०-५१, मुनि विशालविजय १५३६, मुनि जयन्तविजय १५५६, जैन सत्यप्रकाश वर्ष २ पृष्ठ ४३० आदि सग्रहो मे पाये जाते हैं। सुमतिसाधुसूरि और अन्य आचार्यो के साथ भी इनने अनेक प्रतिष्ठाएँ करवाई परन्तु उन लेखो का समावेश ऊपर सूचित लेखो मे नही होता।

क

(१३) कक्कसूरि (लेखांक ८२-१२२-१२७-१८७) उपकेशगच्छीय (ककुदाचार्यसन्तानीय)

कक्कसूरि के चार नव्य प्रतिमालेख प्रकाशित किए जा रहे है। इन पर विचार व्यक्त करने के पूर्व कक्कसूरि नाममूलक समस्या पर विहगावलोकन वांछनीय है। उपकेशगच्छ में ककुदाचार्य, कक्कसूरि और देवगुप्तसूरि के नामों की पुनरावृत्ति शताब्दियों से होती आई है। ऐसा क्यों हुआ करता था? इस तथ्य का स्पष्टीकरण उपकेशगच्छीय गुर्वावली में इस प्रकार किया गया है :—

श्रीमदुपकेशगच्छे ककुदाचार्यप्रवरसन्ताने
श्रीकक्कसूरिसुगुरुश्चक्रेश्वर्याज्ञयाजातः
श्रीकक्कसूरिसुपट्टे गच्छभारधुरन्धरः
श्रीसिद्धसूरिः संजातो भुवनत्रयपावनः
पट्टालंकरणमणभृत्सूरिदेवगुप्तस्य
गच्छाधिष्ठायिका देव्या दत्तं नामत्रयं तदा

यह नहीं कहा जा सकता है कि इसमें कितना तथ्य है परन्तु इतना सत्य है कि कभी कभी तो इसमें इतना काल सामीप्य रहता है कि घटना और लेख विशेष का सम्बन्ध किस कनकसूरि से स्थापित किया जाय, समस्या बन जाती है। विवक्षितकालिक कनकसूरि के लेखों को तीन भागों में विभक्त करना समुचित होगा। प्रथम कक्षा में कक्कसूरि के लेख आते हैं जो ककुदाचार्य-सन्तानीय हैं, दूसरे आचार्य सिद्धाचार्यसन्तानीय हैं, और तीसरे हैं सिंहदत्तार्यसन्तानीय (बुद्धिसागरसूरि–सं० १५११ लेखांक १२३९, मुनि कान्तिसागर सं० १५०७ लेखांक १०७), परन्तु इनकी संख्या नगण्य

है। किसी-किसी प्रतिमालेख मे तो ऐसी सावधानी वरती गई है कि पूर्व-पारम्परिक आचार्य नाम के साथ वतमान सूरि का नाम भी सूचित किया रहता है।

अव प्रश्न यह उपस्थित होता है कि केवल उपकेशगच्छीय कक्कसूरि सकेतित लेखो का सम्बन्ध ककुदाचार्य सन्तानीय से स्थापित किया जाय या सिद्धाचार्य परम्परा से ? कारण कि स० १४९८–१५–२५ के मध्यकालावधि मे उभय परम्परा के समान नामधारी कक्कसूरि का अस्तित्व प्रमाणित है। सामान्यजन की तो वात ही क्या कही जाय, इन नाम साम्यवाले आचार्यो के पृथक्करण मे स्व० मोहनलालभाई देसाई (जैन गूर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२८२) और अगरचन्द्र नाहटा जैसे अनुसधाता भी भ्रमित हुए हैं (वीकानेर जन लेख सग्रह)। सिद्धसूरि के पट्टधर कक्कसूरि के लेखो का सकेत करन समय देसाई ने सिद्धाचायसन्तानीय कक्कसूरि के लेखो का भी उसीमे अन्तर्भाव कर दिया, जबकि वह स्वय मूल लेखो मे अपने का ककुदाचार्यसन्तानीय वताते हैं।

मेरी विनम्र सम्मति मे पूर्वाचार्य या अपने वश के प्रमुख आचार्य का नाम जिम प्रतिमालेख मे न हो उसकी किसी भी परम्परा से सगति वैठाने मे कुछ भी औचित्य नही है। यह तथ्य है कि दोनो की आचार्य परम्परा भिन्न थी, अन्यथा पृथक सन्तानीय लिखने का कोई कारण न था।

ककुदाचाय सन्तानीय उल्लेखसूचक कक्कसूरि के प्रतिमालेखो की परिष्कृत सूची इस प्रकार है —

नाहर[1] भाग १—१४०९–१'–२४–२६, भाग २—१५०३–५–६

---

१ नाहरसग्रह मख्या १३८९–१४–४३ और १४७९ मे इतना पाठ विशेष है श्रीउपकेशगच्छे श्रीककुदाचायसन्ताने प्रतिष्ठित भट्टारक श्रीसिद्धसूरि तत्पट्टालकारहार भट्टारक श्रीकक्कसूरिभि ।

९-१२-१७-२०-२१-२४, भाग ३—१४९८[1]-१५१४, बुद्धिसागरसूरि भाग १—१५०४-१३-१७[2] भाग २—१४९९-१५०९-१८-२०, मुनि कान्तिसागर—१५१३-१९, विनयसागर—१५०१-६-७-८-९-११-१३-१५ १ -२०-२४, नाहटा—१५००-१-३-४-५-१०-१७-१८-२३-२४-२६ [सं० १५२० के लेख में (लेखांक २३८६) इतना ही उल्लेख है—श्रीकक्कसूरीणामाज्ञया तेषां पट्स्था], विद्याविजय—१५०४-९-१४-१७-२०, मुनि विशाल विजय—१५२२, जैनसत्यप्रकाश वर्ष २ पृष्ठ ५०८-१५०५।

निम्नसूची में प्रदत्त बहुत से प्रतिमालेख सिद्धाचार्य और ककुदाचार्य सन्तानीय कक्कसूरि के हो सकते हैं, परन्तु निणय असम्भव है :—

नाहरभाग १—१५१२-१९, भाग २—१५०५-७-८ भाग ३-१५०७, बुद्धिसागर भाग १, १५०१-४-१२-१९, भाग २, १५०५-२०-२५-२५, मुनि कान्तिसागर ६५१२, विनयसागर—१५०२-३-५-११-१२-१३-१८-१९-२५, नाहटा—१५०५-९, मुनि विद्याविजय १४०७-९।

(१४) कक्कसूरि (लेखांक २६३) द्विवंदनीक :

द्विवंदनीक गच्छ की स्वतन्त्र पट्टावली अनुपलब्ध है। यह उपकेश गच्छ की सार्थक शाखा है। भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर—दोनों को वन्दना करने वालों का समुदाय ही द्विवंदनीक संज्ञा से अभिहित हुआ है। यदि इस परम्परा को दोनों तीर्थकरों का सांस्कृतिक स्मारक कहें तो अत्युक्ति न होगी।

गुरुमालिक के अभाव में स्व०मोहनलालभाई देसाई ने प्रतिमा लेखों के आधार पर इस गच्छ के आचार्यो का पट्टक्रम तैयार किया है।[3] उससे

१. इस लेख में 'सन्ताने' शब्द के पूर्व का भाग खण्डित है, कालक्रम को देखते हुए ककुदाचार्य कल्प्य है।

२. यहां कुकुदाचार्य के स्थान पर कुंदकुंदाचार्यसन्ताने पाठ प्रकाशित है जो लेख लेने वाले के प्रभाव का परिणाम ज्ञात होता है, क्योंकि कुंदकुंदाचार्य तो दिगम्बर जैन परम्परा से सम्बन्ध आचार्य है। उपकेशगच्छ में इस नाम का कोई आचार्य अद्यावधि ज्ञात नही।

३. जैन गूर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२८६।

विदित होता है कि चौदहवी शताब्दी मे इसका प्रादुर्भाव हुआ होगा। प्रस्तुत सग्रह मे इस गच्छ के ककसूरि का स० १५६६ का प्रतिमालेख प्रकाशित है। यह सिद्धाचार्यसन्तानीय सिद्धसूरि के पट्टधर थे, इनके अन्य लेख मुनि जयन्तविजय १५६६, बुद्धिसागर भाग २, १५६०-६१-८९, भाग १—१५०८ और नाहर मे १५२४।

(१५) कल्याणसागरसूरि (लेखाक ३०५) अचलगच्छीय

इनका जन्म वढियार के लोलाणा/लीलपाटक मे श्रे० नानिग की धर्मपत्नी नामिल देवी की रत्नकुक्षि से म० १६३३ मे हुआ था। जन्म नाम कोटनकुमार था। सस्कारशील बालक का धर्म के प्रति स्वाभाविक आकर्षण था। ९ वर्ष की वय मे सयम का कठोर साधना मार्ग स्वीकार किया। अब कोडनकुमार शुभसागर बन गये। म० १५४८ मे इनकी बडी दीक्षा पालीताणा मे हुई और कल्याणसागर नाम से विख्यात हुए। शिवसिंघ-कल्याणसिंधु-कल्याणसमुद्र आदि अनेक नाम अन्यत्र व्यवहृत हैं।

अचलगच्छीय तात्कालिक सास्कृतिक प्रवृत्तियो से विदित होता है कि उन दिनो सयम की समाराधना के साथ ज्ञान प्राप्ति के लिए मुनि समाज समुत्सुक था। कल्याणसागर ने आगमादि साहित्य का गम्भीर अध्ययन करने के बाद स० १६४४ मे अहमदाबाद मे आचार्य पद ग्रहण किया। स० १६७१ मे गच्छेश पद से अलकृत हुए। इनके समय मे जैन समाज मे पारस्परिक तनाव पराकाष्ठा पर था, परन्तु कल्याणसागरसूरि भेदमूलक प्रवृत्तियो से सदैव दूर रहकर स्वगच्छ सम्पोषण मे ही अनुरक्त रहते थे। गुजरात, कच्छ, राजस्थान तक इनका विहार क्षेत्र व्यापक था।

मूलत अलसाणा (कच्छ) निवासी शाह वर्धमान और रायशी[1]

---

१ हाल ही मे भाई श्री पार्श्व को इनका रास उपलब्ध हुआ है, जो जैन इतिहास की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, साथ ही तात्कालिक राजनयिक तथ्य सूचनाओ का भी इसमे सन्निवेश है। सिद्धाचल और सौराष्ट्र मे इन द्वारा निर्मापित प्रासाद आदि धार्मिक सुकृत्यो का सुन्दर वर्णन तात्कालिक कवि ने प्रस्तुत किया है। शीघ्र ही इसका अन्य ऐतिहासिक रासो के साथ समीक्षात्मक प्रकाशन होगा।

राजपरिवार की कन्या के साथ दहेज में जामनगर आये, वहीं बस गये। जामसाहब को इन पर पूर्ण कृपा थी। वाणिज्य कौशल से शीघ्र ही वर्धमान शाह ने प्रभूत सम्पत्ति एकत्र कर ली। इनका परिवार कल्याणसागरसूरि के प्रति आस्थावान् था। शाह द्वारा परमपावन-गिरिराज-शत्रुजय पर निर्मित शान्तिनाथ प्रासाद और जामनगर के भव्य जिनभवन की प्रतिष्ठा आचार्यश्री के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। जामनगर का यह शिल्प-भास्कर्ययुक्त जिनभवन न केवल लोकोत्तर साधनों का ही पुनीत धाम है, अपितु. तात्कालिक सौराष्ट्र में सुरक्षित वास्तु नैपुण्य का अन्यतम प्रतीक भी है। कलाकार की दीर्घकालव्यापी साधना के माध्यम से वहां के पाषाणों पर जो सुकुमार भाव अंकित किये है वे आज भी आन्तरिक सौंदर्य की दीप्ति संजोये हुए हैं।

शांतिनाथ चरित्र, सुरप्रियचरित्र, चित्रबद्धजिनस्तोत्र, अगड़दन्तरास, पार्श्वनाथ-सहस्त्रनाम, मिश्रलिंगकोश आदि स्तुतिमूलक इनकी अनेक रचनाएं उपलब्ध है। यदि इनके शिष्य-प्रशिष्यादि द्वारा रचित साहित्य का परिचय दिया जाय तो एक स्वतंत्र ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है, तदर्थ भाई श्री पार्श्व प्रायोजित अंचलगच्छ दिग्दर्शन दृष्टव्य है।

इनके यहां प्रकाशित सं० १७०२ के अतिरिक्त अन्य लेख अंचल-गच्छी लेख-सग्रह में प्रकाशित है और नाहटा—१७१० में।

ग

(१६) गुणधीरसूरि (लेखाक २०३) पूर्णिमापक्षीय

यह आचार्य पूर्णिमापक्षीय गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर थे। इनके पट्टधर सौभाग्यरत्नसूरि थे जिनका प्रतिमालेख लेख क २५६ मे प्रदत्त है गुणधीरसूरि के सम्बन्ध मे विशेष ज्ञातव्य अप्राप्त है। इनके स० १५३८ के अतिरिक्त लेख नाहर भाग ३-१५१६-१८-३२, बुद्धिसागरसूरि भाग १-१५१६-१८-१६-३८, भाग २-१५३१, मुनिकातिसागर-१५०७ मुनि जयन्तविजय अर्बु० प्र० १५११-२१, मुनि विशालविजय-१५१८[1], मुनि यतीन्द्रविजय, १५१६-३६, मुनि विद्याविजय-१५१८, नाहटा-१५१८ विनयसागर १५३४ सग्रहो मे पाये जाते हैं।

(१७) गुणनिधानसूरि लेखाक (२८४) अचलगच्छीय

पाटण के सघवी नगराज की धर्मपत्नी लीलादेवी की कोख से इनका जन्म १५४८ मे हुआ था। सिद्धान्तसागरसूरि के वरदहस्त से स० १५५२ पाटण मे दीक्षा हुई, गुणनिधान नाम धारण किया। इनके दीक्षाकाल पर मतभिन्नत्व है। स० १५६५ जाबू[2] मे आचार्य पद प्रदान किया और १५८४

---

१ राधनपुर प्रतिमालेखसदोह (लेखाक २१९) मे प्रदत्त लेख मे गुणवीरसूरि पौर्णमिक का उल्लेख है परन्तु होना चाहिये गुणधीरसूरि ही, कारण कि गुणवीरसूरि नामक किसी आचाय का सकेत कही मिलता।

२ पाटण मे इनका विशिष्ठ सम्बन्ध रहा है, भाई श्री पाश्व द्वारा निम्न प्राप्त सदर्भ से स्पष्ट है —

जबू नयरम्मि पणसठ्ठि सवच्छरे भावसायर गुरु भावी गच्छेस रे

में गच्छेश पद[1] ।

गुणनिधानसूरि परमतपस्वी और अनुशासनप्रिय महापुरुष थे । उस समय अंचलगच्छ अनेक शाखाओं में विभक्त होने के बावजूद भी इनकी आज्ञा शिरोधार्य करता था । अपने समुदाय को जिनाज्ञानुकूल आचरण के लिये आचार्य सदैव प्रेरणा देते रहते थे, क्योंकि उन दिनों श्रमण परिवार सर्वथा शैथिल्य से अलिप्त नही था ।

गजसागरसूरि , पुण्यचन्द्र हेमकान्ति, सेवक, दयाशील, (इनने स्फुट गेय पदों की रचना कर अपने आचार्यो का यश विस्तृत किया, रचनाओं का एक पूरा गुटका मेरे संग्रह में सुरक्षित है,) संयममूर्त्ति, विद्यावल्लभ, रंगतिलक, विनयराज आदि तात्कालिक अंचलगच्छीय मुनिवरों ने साहित्य निर्माण और प्रतिलेखन कार्य में उल्लेखनीय योग प्रदान किया है ।

गुणनिधानसूरि शिष्य रचित रत्नसचय प्रकरण अत्यन्त महत्व की रचना है । इनके समय में ग्रन्थस्थ चित्रकला को प्रोत्साहन मिला, स्वर्णाक्षरी प्रतियों का लेखन हुआ । आचार्य के व्यक्तित्व पर लावण्यचन्द्र के शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं:—

ध्यानी सदवत विशुद्धपुः प्रशान्तः सूरीश्वरो गुणनिधान इति प्रतीतः

इसी प्रकार स० १६८६ में देवसागर प्रणीत व्युत्पत्ति रत्नाकर की प्रशस्ति में भी गुणों पर प्रकाश डाला गया है:

तदन्ववनिविश्रुताः श्रुतसरस्वदन्त स्पृशः
प्रशांत मनसः सदा सदवधानधन्यद्र्धयः
सुशिष्टजनसुविताः प्रकटदैवताधिष्टाता
बभूबुरतिविदवो गुणनिधानसूरीदेवः

इनका नव्य प्राप्त सं० १५९५ का लेख प्रकाश में आ रहा है, शेष लेख भाई पाश्र्व संग्रह में है ।

---

१. नयर तंवावइ प्रागवंशब्भूओ शाह विज्जाहरो जोव यादव जूओ गच्छनायक पंय दावये भावउ जाण चउरसीइ कड़ जुग्गो आ गउ
—अंचलगच्छ दिग्दर्शन, पृष्ठ ३४७

(१८) गुणरत्नसूरि —(लेखाक५४) तपागच्छीय

प्रस्तुत आचार्य श्री के लेख मे न गच्छ सकेतित है और न ही पूर्वपट्टधीश का सूचन है तात्कालिक जन ऐतिहासिक साधन-सूत्रो से इस नाम के तीन आचार्यों का पता चलता है। प्रथम तो आचार्य देवसुन्दरसूरि के पाच प्रधान शिष्यो मे तृतीय गुणरत्नसूरि, द्वितीय नागेन्द्रगच्छीय, जिन पर आचार्य परिचय सख्या १९ मे विचार किया जा रहा है, और तृतीय आगमगच्छीय मुनिसिंहसूरि के पूर्व-पट्टाधीश[1]।

कालिक दृष्टया इन तीनो का अस्तित्व एक ही शताब्दी मे होने के बावजद भी सापेक्षत द्वितीय और तृतीय प्रथम मे परवर्ती हैं। अत निसकोच कहा जा सकता है कि इस सग्रह मे प्रकाशित स० १४६० के प्रतिमालेख का सबध गुणरत्नसूरि मे ही है जो आचार्य देवसुन्दरसूरि के विनेय थे।

परमआश्चर्य का विषय है कि देवसुदरसूरि और सोमसुदरसूरि के स्वर्णिम युग की सभी ऐतिहासिक घटनाए व्यवस्थित रूपेण प्रतिलिखित प्राप्त होती है, परन्तु गुणरत्नसूरि के वैयक्तिक पूर्व-जीवन के सबध मे सभी साधन-सूत्र मौन है। यहा तक कि इन्हे आचार्य पद पर कब प्रतिष्ठित किया, प्रश्नचिह्न ही है। स० १४४१ की पल्लीवाल श्रेष्ठि साल्हा-लेखित प्रशस्ति मे सकेत है कि लखमसिंहकारित महोत्सव पर सूरि पद समर्पित किया।[2] इसकी सच्चाई सदिग्ध हैं कारण कि स0 १४३६ की लेखन प्रशस्ति मे इन्हे आचार्य सूचित किया है।[3] अत इससे पूर्व आचार्य बन चुके थे। क्रियारत्नसमुच्चय से ज्ञात होता है कि स १४६६ तक विद्यमान रहे।

विख्यात विज्ञ विनयविजयोपाध्याय ने गुणरत्नसूरि का श्रद्धासह स्मरण किया है,—

---

१ मन पूर्गं आनदि नीर पूरी पणमु ते सिरि गुणरयणसूरि—आगमगच्छ-पट्टावली,

२–३ मुनि जिनविजय —जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह, पृष्ठ ४३ और ४०

हैमव्याकरणाम्भोधिं ये वगाह्य महाधियः
अभिज्ञानमिवाकार्षुः क्रियारत्नसमुच्चयम्[1]
× × × ×
ये वैयाकरणवर्यास्ते श्रीगुणरत्नसूरयः
ग्रन्ये पि शाब्दिकपृष्ठा विजेजीरन् महर्षयः[2]

गुणरत्नसूरि के दीप्तिमय श्रमणजीवन का परिचय मुनि सुंदरसूरि रचित गुर्वावलि और वीर वंशावलि में दिया गया है। कहा है कि आचार्यश्री क्रोध और विकथा से सदैव दूर रहा करते थे। सारस्वतोपासक होने के साथ संयम की समाराधना मे ही तन्मय रहते थे। अकलुषहृदयी अनेक शास्त्रों के आन्तरिक रहस्यों को आत्मसात् किए हुए थे। कल्पान्तर्वाच्य, सप्ततिकावचूरि, कर्म्मग्रन्थावचूरि (१४५९), चतुष्पयन्नावचूरि, क्षेत्रसमास ग्रौर नवतत्त्वावचूरी, क्रियारत्नसमुच्चय एवम् षड्दर्शनसमुच्चय पर तत्वार्थदर्शिनी वृत्ति ग्रादि इनकी दीर्घकालव्यापी शारदोपासना की परिणति हैं। त्रिपुटी महाराज ने जैन परम्परा के इतिहास भाग—३ (पृष्ठ ४३६) में सूचित किया है कि अंचलमत्त निराकरण प्रकरण भी इनकी कृति है, परन्तु इस कथन की पुष्टि में कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है। मेरा अनुमान है त्रिपुटी जी का ध्यान सम्भवतः अचलमतदलन प्रकरण पर ही केन्द्रित रहा हो जो हर्षभूपण की रचना है और जिसे सं० १४८० में कपड़वंज और लास में पूर्ण किया था। गुणरत्नसूरि जैसे विकथा से दूर रहने वाले व्यक्ति ऐसे उग्र खण्डनात्मक ग्रन्थों की रचना करें, यह कम समझ में आता है। इनके अन्य प्रतिमा लेख अप्राप्त है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इनके समय में सामूहिक प्रतिष्ठाए ही हुआ करती थीं ग्रौर वरिष्ठ आचार्यो की विद्यमानता मे इनका स्वतन्त्र लेखांकन सम्भव भी कैसे हो सकता था।

(१९) गुणवर्द्धनसूरि (लेखांक २६९) नागेन्द्रगच्छीय

यह आचार्य गुणरत्नसूरि के पट्टधर थे। इनका केवल यही एक मात्र सं० १५७२ का लेख उपलब्ध है। जैसा कि सं० १५९७ की सिद्धचक्र

१–२ लोकप्रकाश और हेमलघुप्रक्रिया की स्वोपज्ञवृहट्टीका,

रास की लेखन पुष्पिका से सिद्ध है,[1] गुणरत्नसूरि स्वय कवित्व प्रतिभा से मण्डित थे। ऋषभरास और भरत-बाहुबली प्रबन्ध इनकी पद्यमय रचना है।[2] यह गुणदेवसूरि के पट्टधर थे।[3]

गुणवर्द्धनसूरि के गुरुबन्धु और गुणरत्नसूरि के शिष्य सोमचन्द्र रचित कामदेवरास का अनुमित प्रणयनकाल देसाई ने स० १५२० के लगभग माना है।[4] अपने अनुमान के समर्थन मे स० १५१७ का देवगुणसूरि का लेख सकेतित किया है[5] तथा गुणसागरसूरिपट्टधर गुणसमुद्रसूरि के कतिपय लेख हैं[6]। यदि देसाई महोदय गहराई से विचार करते तो स० १५२० का अनुमान न लगाते, कारण कि गुणदेवसूरि के लेख स० १५१७-३५ तक के मिले हैं, अनन्तर गुणरत्नसूरि का काल आता है और इनका अस्तित्वकाल सुनिश्चित न होते हुए भी स० १५७१ तक तो मानना ही पडेगा जैसा कि नाहर सग्रहस्थ भाग ३, लेखाक २५५१ से स्पष्ट है। अत १५२० का अनुमान निराधार है। सुदर्शन रास भी सोमचन्द्र की रचना है या क्या ? अन्वेषणीय है।

(२०) गुणसागरसूरि—(लेखाक ३१८) नागेन्द्रगच्छीय

प्रतिमा का परिकर खण्डित होने से लेख का आशिक पाठ ही उपलब्ध हो सका। यही सौभाग्य की बात है कि गच्छ और आचार्य—नाम सुरक्षित रह गये। इस प्रतिमा के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं नागेन्द्रगच्छीय उदयप्रभसूरि के पट्टधर गुणसागरसूरि। इनके अन्य प्रतिष्ठालेख बुद्धिसागरसूरि भाग-२ १४८३, विद्याविजय-१४८८ (इस लेख मे उदयप्रभसूरि उल्लेख है) के सग्रहो मे पाये गये हैं। अत अस्तित्व काल

---

१ जैन गूर्जर कविओ भाग-३ पृष्ठ ४८८ और भाग पृष्ठ २९-३०

२ प्रतिष्ठालेख स० १५१७-३५ तक नाहर, नाहटा, विद्याविजय, विनयसागर और बुद्धिसागरसूरि के सग्रहो मे उपलब्ध है।

३ नागेंद्रगछि गुरय सुरतरु सूरिगुणदेव जाणीइ
तालपट्टि श्री गुणरयणसूरिवर सयल सघ वखाणीइ

४ जैन गूजर कविओ भाग ३ पृष्ठ ४८५

५ जैन गूजर कविओ भाग ३ पृष्ठ ४८७

की कल्पना सहज ही हो जाती है। गुणसागरसूरि के गुणसमुद्रसूरि–जिनके कई लेख प्राप्त हैं—पट्टधर थे। शेष परिचय अज्ञात है।

(२१) गुणसुन्दरसूरि—(लेखांक १५६ ए, १५९ बी) मलधारगच्छीय

सूचित प्रतिमा लेखों से स्पष्ट है कि इनके प्रतिष्ठापक आचार्य गुणसुंदरसूरि मलधार परम्परा के मतिसागरसूरि[1] पट्टधर विद्यासगरसूरि[2] के पट्टदीपक थे। यद्यपि सं० १४९९ में भी मलधार गुणसुंदरसूरिका[3] उल्लेख प्राप्त होता है[4] पर वह आचार्य इनसे भिन्न हैं, कारण कि यह काल तो इनके प्रपट्ट-पूर्वाचार्य मतिसागरसूरि का है।

जैसा कि तात्कालिक प्रतिमा लेखों से स्पष्ट है, गुणसुंदरसूरि के पट्टधर आचार्य गुणनिधानसूरि थे जिनका सं० १५३३ का लेख विनयसागर संग्रह में (लेखांक ६५३) पाया जाता है। दूसरे आचार्य थे हंसराज-वत्सराज कथा के प्रणेता (प्रणयन काल १५१०) सर्वसुंदरसूरि। मोहनलाल दुलीचन्द देसाई ने इसका रचना स्थान देवपत्तन बताया है (जैन साहित्यनो इतिहास, पृष्ठ ५१४), परन्तु कथाकार स्वयं मण्डपदुर्ग-माण्डवगढ़ में रचे जाने का उल्लेख करते हैं।[5]

मलधारी गुणसुंदरसूरि के अन्य प्रतिष्ठालेख मुनि कान्तिसागर १५०९, बुद्धिसागरसूरि भाग १–१५०५–२२–२५, भाग २–१५०४–८–

---

१. इनके प्रतिष्ठा लेख सं० १४५४ अर्बुदाचल प्राचीन जैन लेख संदोह (लेखांक ६५९) विनयसागर सं० १४५७ (लेखांक १८१) में प्राप्त है।

२. पुरा भवच्छ्रीमलधारीगच्छे विद्याब्धिसूरिर्विदितः पृथिव्याम्
कीर्त्तिर्यदीया धवलीकरोति भूमंडल क्षिप्रविचित्रमेतत्
पट्टे तदीये गुणसुंदराख्यः सूरीश्वरो मन्मथमानहर्त्ता
मुनि पुण्यविजय–हस्तप्रतिसंग्रह पृष्ठ ३४४

३. इनके प्रतिष्ठालेख नाहर १४७६–८५, यतीन्द्रविजय १४८३, विनयसागर १४८३–८६–८७ संग्रहों में प्राप्त होते है।

४. विनयसागर—प्रतिष्ठा–लेख–संग्रह, लेखांक ३३०

५. मुनि पुण्यविजय—केट० सं० प्रा० मे०, पृष्ठ ३४४

९–११–१८–२१, मुनि विद्याविजय १५२०, मुनि विशालविजय १५०८–१५–२०, विनयसागर १४९९–१५०५–९–११–१२–१३–१५–१६–१८–२२–२३–२५–२७–२८। बुद्धिसागरसूरि-सग्रह भाग २ लेखाक ९९१ भी गुणसुदरसूरि का ही प्रतीत होता है।

(२२) गुणसुदरसूरि—(लेखाक १६७) पूर्णिमापक्षीय

पूर्णिमापक्षीय आचार्य गुणसुदरसूरि के प्राप्त समस्त प्रतिमालेखो मे पूर्वपट्टधर का नाम नही मिलता। न इनका परिचय ही प्राप्त है। स्व० मोहनभाई देसाई[1] ने आचार्य के लेखो की ओर सकेत किया है पर वह अपूर्ण है, कारण है कि बुद्धिसागरसूरि के सग्रह भाग दो के लेखो के सवत दिये हैं, वहा के दूसरे लेख उपेक्षित रह गये हैं। इस सग्रह मे इनका नव्य लेख स० १५२१ का दिया है, शेष लेख इस प्रकार हैं—बुद्धिसागरसूरि भाग २–१५०६–७–२०–१३, विद्याविजय—१५०४–६–१२–२३–२४।

(२३) गुणसेनसूरि (लेखाक १४) नागह्रदगच्छीय

आचार्यश्री के सम्बन्ध मे अधिकृत रूप से कुछ भी कह सकने की सामग्री उपलब्ध नही है। जिस नागह्रदगच्छ का लेख मे सकेत है, उसका प्रादुर्भाव कब और किस महापुरुष द्वारा हुआ, अज्ञात है। जहा तक नागह्रद के बसने का सबध है नि सकोच कहा जा सकता है कि नागदित्य गोहिल ने इसे बसाया था। जैन परम्परा का इस नगर से बहुत प्राचीन लगाव रहा है, एतन्नगरविषयक अनेक किवदतिया प्रचलित हैं। इन पर गच्छ-परिचय मे विशेष विचार किया जायगा।

(२४) गुणाकरसूरि (लेखाक ६२) चन्द्रगच्छीय

प्रतिष्ठा लेख से ही सिद्ध है कि यह आचार्य पद्मप्रभसूरि के पट्टधर थे। इनका स० १३३२ का एक और लेख नाहटा सग्रह मे प्राप्त है, (लेखाक १७९)। आचार्य बुद्धिसागरसूरि सग्रह मे स० १३४४–५३ के

---

१ जैन गूजर कविओ भाग ४ पृष्ठ २ ३७

दो लेख ९९६–१०७३) गुणाकरसूरि के उपलब्ध हैं, परन्तु उनमें गच्छ और गुरु का नाम न होने से इनसे संबंध स्थापित करने में संकोच होता है।

(२५) गुणाकरसूरि (लेखांक ४१) नागेन्द्रगच्छीय

नाहटा संग्रहस्थ लेखांक ४१६ से विदित है कि प्रस्तुत आचार्य नागेन्द्रसूरि के पट्टधर थे। गुणाकरसूरि के पट्टधर रत्नसूरि हुए (नाहटा, लेखांक ४६९)। विवक्षित आचार्य के अन्य प्रतिभालेख नाहटा—१४०८, विनयसागर १४४१, यतीन्द्रविजय १४४१, नाहर भाग २ १४१०, आचार्य बुद्धिसागरसूरि १४३३, (इसो संग्रह में नागेन्द्रगच्छीय गुणाकरसूरिका १४....खण्डित लेख है, लेखांक ६५३), मुनि कान्तिसागर १४२१, नाहर भाग ३–१४१०।

च

(२६) चन्द्रप्रभसूरि (लेखाक ४)

इस लेख मे केवल आचार्य का नाम और सवत् ही उपलब्ध है। तेरहवी शती मे इस नाम के अनेक आचार्यो का उल्लेख मिलता है, उनमे वाछित च-द्रप्रभाचार्य कौन हो सकते है, प्रमाणाभाव मे निश्चित क्या कहा जा सकता है? नहार सग्रह के लेखाक ५५६ से तो यह भी विदित होता है कि एक चन्द्रप्रभाचार्य के नाम से स्वतत्र गच्छ भी था, पर वह इनमे पूववर्त्ती हैं।

(२७) चन्द्रप्रभसूरि (लेखाक १५०) आगमगच्छीय

सौराष्ट्र के सहायला/सायल नगर से सवद्ध इस स० १५१६ लेख के आचाय आगमगच्छ के हैं, परन्तु आगमगच्छ को पट्टावली या आचार्यानामावली मे इनका नाम दृष्टिगोचर नही होता, न अन्य प्रतिष्ठा-लेख ही प्राप्त है

(२६) चन्द्रविजय—(३०६-११) तपागच्छीय

यह प्रतिष्ठापक न होकर केवल लि पक मात्र है। इनने स० १८६३ मे प्रतिष्ठित धतुप्रतिमाओ पर लेख सुवाच्य लिपि मे लिखे हैं।

ज

(२९) जयकीर्त्तिसूरि (लेखांक ६१-६७-७२-७५) अंचलगच्छीय

विधिपक्षगच्छीय आचार्य प्रभावक महापुरुष थे। इनका जन्म राजस्थान प्रदेशान्तर्गत तिमिरपुर/तिवरी में संघवी भूपाल की धर्मपत्नी भ्रमरादेवी की रत्नकुक्षि से सं० १४३३ में हुआ था। तिमिरपुर के इस स्वर्णिम सूर्य की प्राभातिक किरणों से कालान्तर में जैन शासन आलोकित हुआ। जन्म नाम इनका देवकुमार था। अंचलगच्छीय साहित्य गगन के दिनमणि मेरुतुंगसूरि के पास सं० १४४४ में देवकुमार ने संयम मार्ग स्वीकार किया। आवश्यक अध्ययनान्तर सं० १४६७ में आचार्य पद प्राप्त किया। सं० १४७३ में आचार्य मेरुतुंगसूरि के काल कवलित होने पर इन्हें उसी वर्ष पाटण में गच्छेश पदालंकृत किया।

जयकीर्त्तिसूरि के वैयक्तिक जीवन और तात्कालिक श्रमण परम्परा पर दृष्टि केन्द्रित करने पर ज्ञात होता है कि उन दिनों साम्प्रदायिक संघर्ष वहुत अधिक थे। अकारण ही एक समुदाय के विद्वान् दूसरे सम्प्रदाय पर अर्थहीन आक्षेप कर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने को उद्यत थे। परन्तु कुछ ऐसे समभावी सद्पुरुष भी थे जो अपने को इनसे अलिप्त रखे हुए थे। महीतिलकसूरि, कीर्त्तिसागरसूरि, भुवनतुंगसूरि, शीलरत्नसूरि, जयसागर सूरि, ऋषिवर्द्धनसूरि, रत्नसिंहसूरि, माणिक्यसुन्दरसूरि, माणिक्यशेखरसूरि, महीनन्दन, धर्मनन्दन, जयशेखर, जयवल्लभ, महत्तरा, मेरुलक्ष्मी और क्षमारत्न आदि सूरिवर कालिक सक्षम साहित्यकार थे जिनने अपने-अपने क्षेत्रों मे उच्चकोटि की रचनाएं प्रस्तुत कर जैन साहित्य को परिपुष्ट किया। इनमें से कुछेक तो अखिल भारतीय स्तर के ऐसे विज्ञ थे जिनकी रचनाएं विद्वद्भोग्य ही नही, अपितु, विशेष देन के कारण स्वतन्त्र स्थान रखती हैं। उदाहरणार्थ माणिक्यसुन्दरसूरि को लिया जा सकता है। इनके

द्वारा प्रणीत पृथ्वीचन्द्र चरित्र पुरातन गुजराती भापा और विशेप कर गद्य साहित्य का शृगार है। तात्कालिक भापा प्रवाह और विविध रूपो को आत्मसात् करने की अनेकविध सामग्री इसमे सश्लिष्ट है। प्रसगवश आचार्य ऋपिवर्द्धसूरि की उपेक्षा नही की जा सकती। यो तो इनकी देश्य-भापामय कृतियो से समाज परिचित है परन्तु यहा एक महत्वपूर्ण कृति की ओर ध्यानाकृष्ट करना चाहूँगा जो न केवल उनकी सृजनात्मक प्रतिभा और पाण्डित्य पर ही मार्मिक प्रकाश डालती है, अपितु, जैन समस्यापूर्त्ति साहित्य मे भी अभिनव है। महाकवि पुष्पदन्त प्रणीत महिम्नस्तोत्र भारतीय स्तुति साहित्य का कण्ठहार है। ऋपिवधनसूरि ने इसकी पूर्त्ति-स्वरूप ऋपभमहिम्न का न केवल निर्माण ही किया, अपितु, उस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी निर्मित की। नि सन्देह रचना प्रासादिकगुणयुक्त और मनोहारिणी है। इसकी एक मात्र प्रति लडन की एशियाटिक सोसायटी लायब्रेरी मे है और स० १९९४ मे इसकी फोटोस्टेट कॉपी परमपूज्य गुरु महाराज उपाध्याय सुखसागरजी म० एव मूक साहित्योपासक मुनि मगलसागरजी म० ने धूलिया मे मुनिविचक्षणविजयजी के सग्रह मे देखी थी। प्रकाशनार्थ इसकी प्रतिलिपि भी तैयार करवा ली गई थी। पर एक साहित्यिक विद्वान् को अवलोकनार्थ देने के बाद आज तक वापस नही लौटी।

इनके शिष्य जिनप्रभगणिका उल्लेख स० १५५४ मे पत्तन मे प्रतिलिपित उत्तराध्ययन बालावबोध की लेखन पुष्पिका मे मिलता है। प्रति मेरे सग्रह मे है। आचार्यवर्य परम तपस्वी और स्वाध्यायशील व्यक्ति थे। मगलमय महातीर्थ शत्रु जय मे वर्षो तक आयबिल की तपश्चर्या कर जीवन को साधनामय बनाया था। इसी तपोमय भावभूमि पर सहिष्णुता पनपती है। सफल शास्ता के लिये स्वय साधनाशील होना नितान्त वाछनीय है। सघपमूलक युगप्रभाव से अलिप्त रह कर आचार्यश्री ने साहित्य के क्षेत्र मे कितना मूल्यवान दान दिया, इसे समझने के लिये अधिक साधन तो उपलब्ध नही है, पर आचार्य द्वारा प्रणीत उत्तराध्ययनसूत्र-दीपिका वृत्ति से विवेचना शक्ति का आभास मिल जाता है —

सन्नयाधतमसापहारिणी सत्यप्रकाश परमोपकारिणी,
उत्तराध्ययनदीपिकाचिर प्रथ्यता मुनिजनैर्निरतर।

गच्छाधिपः श्रीजयकीर्त्तिसूरीश्वरो विधिपक्षगण प्रहृष्टः,
सद्भाव सारः परमार्थहेतुमक्तृप्तवान् पुस्तकरत्नमेतत् ॥[1]

इनके धर्मानुशासन में अनेकविध साहित्य का प्रणयन ही नही हुआ, अपितु शीर्ण-जीर्ण साहित्य का प्रभूत प्रतिलेखन भी सम्पन्न हुआ। कवि कन्ह और भावसागरसूरि रचित गुर्वावलियों में इनके यशोगान आज भी गूँजित हैं।

इनके नव्य प्रतिमालेख—१४७५–८६–९१–९३ इस संग्रह में प्रकाशित हैं ओर अन्य लेख अंचलगच्छीय लेख संग्रह में प्रदत्त है, तथा नाहटा–१४७६–१४८९–१४९५–९८, मुनि कान्तिसागर १४९६ आदि में पाये जाते है। सं० १५०० में इनका तिरोभाव हुआ।

(३०) जयकेसरीसूरि (लेखांक १०२–६–१३–३२–३३–२०४–१२–२४)
अंचलगच्छीय

सौराष्ट्र की सुरम्य भूमि थान में श्रीमाली देवसिंह की सहपथ-गामिनी लाखणदे की रत्नकोख से सं० १४७१ में इनका आविर्भाव हुआ। जन्म नाम धनराज, सं० १४७५ में अल्पवय में संयम स्वीकार, सं० १४९४ में चांपानेर में आचार्य पद और १५०१ में गच्छेश पद की प्राप्ति।

अंचलगच्छ के मुनि लावण्यचन्द्र रचित गुर्वावली से विदित होता है कि यह सूरि राजमान्य महापुरुष थे :—

यस्याहम्मद गुर्जरावनि सुरत्राणो भजच्छिष्यतां,
हृत्वातद्विषमज्वरं गुरुशिलां तत्तापतो चूर्णयत् ।
हर्षात्साहिगिराप्त शासनगणैनत्यः क्रियासत्प्रभुः,
सा भच्छीजयकेसरीति गणभृद्वादींद्र चूड़ामणिः ॥

---

१. पिटर्सन रिपोर्ट सन् १८८६–९२ पृष्ठ ७६

लावण्यचन्द्र के विचारो को तात्कालिक प्रशस्तियो से भी बल मिलता है। लिखने की आवश्यकता नही कि जयकेसरीसूरि का समय अचलगच्छ के लिये स्वर्णिम युग था। प्रतिष्ठादि अनेक धार्मिक कार्यो के साथ विशेष उल्लेखनीय है उस काल की बहुमुखी साहित्य साधना–कीर्त्तिवल्लभ गणि, महीसागरोपाध्याय, महीमेरु और धर्मशेखर जयकेसरीसूरि कालिक ऐसे विद्वान् थे जिनकी प्रतिभा और पाण्डित्य से आज भी हम प्रभावित होते हैं। यह सच है कि अधिकतर साहित्य स्वमतपोषक ही रचा गया है, फिर भी उनका सार्वभौमिक महत्व कम नही है।

भारतीय चित्रकला और विशेषकर ग्रन्थस्थ चित्रकला के विकास में श्रमण-सस्कृति का उल्लेखनीय योग रहा है। धार्मिक आख्यानो की शताधिक कृतियाँ चित्रित करवा कर कला के प्रति जो आदर भाव व्यक्त किया है वह आज भी अनुकरणीय है। आचार्य जयकेसरीसूरि ने भी उपदेश देकर चित्र सहित कल्पसूत्र और कालिक कथाओ की प्रतिया तैयार करवाई थी। इनकी एक प्रति स० १५१० को कलकत्ता के नित्य-विनय-मणि-ज्ञानागार और इसी वर्ष को दूसरी प्रति पटना के जालान सग्रहालय मे विद्यमान है।[1]

इनके नव्य प्रतिष्ठा लेख स० १५०५–५–७–११–११–३०–३१–३६ सर्वप्रथम प्रकाश मे आ रहे हैं। अतिरिक्त लेख अचलगच्छीय लेख–सग्रह मे सग्रहीत है, अवशिष्ट १५०२–४–८, मुनि कान्तिसागर—१५१३–१३–१६–२३–२८–२८–३०–३४, जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ११, पृष्ठ १०३–१५२८ निज दैनन्दिनी से स० १५०३।

(३१) जयचन्द्रसूरि (लेखाक ९७–१००–१०४–१०–४१–४३) तपागच्छीय

यह स्वनामधन्य आचार्य सोमसुन्दरसूरि के अन्तेवासी थे, जयानन्द-जयन्द्र और जयोदय के नाम से जयचन्द्रसूरि की विशेष ख्याति रही है।

---

१ मूल प्रशस्तियें जैन पर्युषणावें, स० २००४ पृष्ठ ४३९–४० तथा जैनसत्य-प्रकाश वर्ष २० पृष्ठ १६१, दृष्टव्य है।

उपाध्याय धर्मसागर ने जयसुन्दर नाम संकेतित किया है[1], वह उपयुक्त नही है, कारण कि इनके समकालिक आचार्य और पारिवारिक मुनिचन्द्रसूरि ने भी जयचन्द्र के नाम से ही उल्लेख किया है ।[2]

भट्टारक देवसुन्दरसूरि ने इन्हें उपाध्याय पद प्रदान किया था और मुनिमुन्दरसूरि ने सोमसुन्दरसूरी की विद्यमानता में सं० १४७८ में आचार्य पद दिया । त्रिपुटी महाराज ने आचार्य पद समर्पण-काल सं० १४७९ माना है (जैन परम्परा का इतिहास, भाग ३ पृष्ठ ४५३) परन्तु इसके विपरीत विद्याविजय-संग्रहस्थ सं० १४७८ के पौष शुक्ला ५ के पूर्व (लेखांक १७८) आचार्य पदासीन हो चुकने का स्पष्ट संकेत है ।

जयचन्द्रसूरि के वैयक्तिक जीवन पर व्यवस्थित प्रकाश डालने वाली साधना-सामग्री सीमित है । केवल इतना ही ज्ञात हो सका है कि सोमसुन्दरसूरि परिवार के श्रमणों के पाठक थे, काव्यप्रकाश और सन्मति तर्क जैसे लाक्षणिक और क्लिष्ट दार्शनिक ग्रन्थों का सरलता से अध्ययन कराते थे, ग्रन्थोद्धार और साहित्य साधना में ही जीवन के बहुमूल्य क्षण व्यतीत होते थे । पाटण के श्रावक पर्वत ने एक लक्ष परिमाण ग्रन्थ इनके उपदेश से लिखवाये थे जिनमें से मलयगिरि महाराज कृत पिण्डनिर्युक्ति की प्रति आज भी वीरमगांव के ज्ञानभण्डार में सुरक्षित है । कृष्णसरस्वती इनका सर्वथा सार्थक विरुद था ।

साहित्य जीवन और स्वस्थ समाज का निर्माण करता है तो उसका स्रोत भी जीवन ही है । संवेदनशील हृदय की अभिव्यक्ति ही साहित्य है । इसीलिए साहित्यस्रष्टा केवल शब्द शिल्पी नही, जीवन शिल्पी होता है । जयचन्द्रसूरि उत्प्रेरक जीवन के सक्षम कलाकार और शब्दों के सफल प्रयोक्ता थे । स्वयं सारस्वतोपासनामें अनुरक्त रहते थे और शिष्यों को एतद्दिशा में प्रेरित करते थे । प्रत्याख्यान-विवरण, सम्यक्त्वकौमुदी और प्रतिक्रमणविधि इनकी कृतियां है ।

---

१. तपगच्छ—पट्टावली

२. श्रीजयचन्द्रगणेन्द्रा निस्तंदा-संघाच्छकार्येपु—आचारप्रदीप ।

विद्वत् शिष्य-परिवार

जयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहर्ष मे इनकी ज्ञान साधना का सफल परिपाक हुआ था। मेवाड के चित्रकूट/चित्तौड मे जिनहर्ष गणि ने वस्तुपालचरित काव्य, स० १४९७ मे रयणसेहरकहा[1] वि० स० १५०२ वीरमपुर/वीरमगाव में विंशतिस्थानक[2] विचारामृतसग्रह, मुरारिकृत अनर्घराघव पर वृत्ति का प्रणयन कर रत्नशेखरसूरि रचित श्राद्धविध-कौमुदीका परिष्कार किया। शुभवर्द्धनगणि ने जिनहर्ष का स्मरण वर्द्धमान-देशना की अन्त्य प्रशस्ति मे इस प्रकार किया है —

> तस्मिन् निपुणा श्रीजिनहर्षनामसत्यपडिता खण्डितवादिगर्वा ।
> श्रीविंशतिस्थानचरित्र-वस्तुपाल प्रबन्धादिकृतावखर्वा ॥

षडावश्यक बाला० (प्रणयन काल स० १५०१) मे हेमहस गणि अपने को जयचन्द्रसूरिका शिष्य सकेतित करते हैं तो आरम्भसिद्धिवृत्ति मे

---

१ सिरि चित्तकूटनयरे जिणभवणसएहिं भव्वओ भरिए,
गिरिजयचदमुणीसरसीसेण सुअस्स भत्तीय
पागयबन्धेण कहा लिहिआ जिणहरिससाहुणा एसा

पिटसन रिपोट, सन् १८८३–१८९२, पेज १११,

२ विंशतिस्थानकाचारविचारामृतसग्रह
गच्छेशश्रीजयचन्द्रसूरिशिष्येण निर्मित
वीरमाख्यपुरे रम्ये युग्म व्योमेन्द्र-पचभि (१५०२)
प्रमिते वत्सरे हर्षाज्जिनहर्षेण साधुना

इतना स्पष्ट उल्लेख होने के बावजूद भी त्रिपुटी महाराज ने इस कृति को जयचन्द्रसूरि की रचना माना है।

—जैन परम्परानो इतिहास भाग ३, पृष्ठ ५३०

रत्नशेखरसूरि–विनेय चारित्ररत्नके[1] अन्तेवासी । यहां अभिप्रेत भी नहीं हैं कि वह किसके शिष्य थे । यहां तो केवल यही विवक्षित है कि उनने न केवल अपने वैदुष्य से तात्कालिक समाज को ही प्रभावित किया था, अपितु दूरगामी पाण्डित्य सुरभि से विद्वज्जनों को आप्लावित भी किया था। यथा :—

हैमव्याकरणार्णवं निजधिया नावावगाह्याभितो
मंजूषा समपूरि भूरिधृणिभिर्ये न्यायरत्नेरिह
ज्योतिस्तत्वविवार्त्तिक कृतः श्रोहेमहंसाह्वयाः
जीयासुः सुमनो मनोरमगिरः ते वाचकाधाश्वराः[2]

---

१. सोमसुन्दरसूरि-समुदाय के मुनियों मे यह स्थविर थे। इतिहास प्रसिद्ध चित्रकूट–प्रशस्ति के यही प्रणेता थे। इसका रचना काल स० १४९५ है। इस मूल्यवान् प्रशस्ति का सम्पादन भाण्डारकर ने डेक्कनकॉलेज के हस्त-लिखित संग्रह की प्रति के आधार पर किया था (रॉयल एशियाटिक सोसायटी भाग २३ पृष्ठ ४४–५२) परन्तु उत्कीर्णित शिलाखण्ड का पता उन्हे नही लग सका था। अभी-अभी डा० रामवल्लभ सोमाणी को अन्य लेख की खोज करते समय चित्तौड़ में इस प्रशस्तिका खण्डितांश अनायास ही प्राप्त हो गया। चार अंगुल मोटी काले पत्थर की शिला पर प्रशस्ति खुदी है जिसकी चौड़ाई २८ अंगुल है। कुल १३ पक्तिया ही उपलब्ध हो सकी है। इसमे प्रशस्ति के ८९–१०४ तक का श्लोक भाग है, (वरदा भाग ११, अंक ३, पृष्ठ ७–९)।

सं० १४९७ मे इनने दानप्रदीप की रचना की, सर्वविजय ने आनन्दसुन्दर रचना में इन्हे स्मरण किया है :—

श्रीमत्तपागणगच्छपयोधिरत्नचारित्ररत्नो जनिवाचकेन्द्र

२. विनयविजय :—हेमलघुप्रक्रिया स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति–प्रशर्स्ति,

इस पर आनन्दविमलसूरिशिष्य विजयविमल विनेय आनन्दविजय ने सं० १६३५ मे लघुवृत्ति निर्मित की।

गणि हेमहंस बहुमुखी प्रतिभा के धनी, विद्वद् और लोकभोग्य साहित्य के सफल प्रणेता थे। सं० १५०१ में षडावश्यक बाला०, सं० १५१२ मेगलूमें रत्नशेखर कथा और इसी वर्ष में तीर्थराज गणि के लिए श्रीपतिप्रबंधका प्रतिलेखन, सं०१५१८ में आचार्य रत्नशेखरसूरि की विद्यमानता में आशापल्ली में उदयप्रभसूरि प्रणीत आरम्भसिद्धि नामक ज्योतिषशास्त्र पर सुधीश्रृंगार टीका और सं० १५१५ अहमदावाद में न्यायार्थमंजूषा आदि उनकी सारस्वत साधना की उज्ज्वल सिद्धि हैं। जयचन्द्रसूरि के प्रशिष्य और चरित्ररत्न के शिष्य जिनमाणिक्य उस युग के प्रखरप्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे। इनकी रचना शतार्थी भारतीय साहित्य का गौरव है। इनके प्रशिष्य सुंदरतिलकगणि द्वारा प्रतिलिपित धर्मदासगणिकृत उपदेशमाला की प्रति इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में सुरक्षित है[1]।

प्रवासगीतिका और जयचन्द्रसूरि

अनुसन्धान के क्षेत्र में प्रवेशार्थी के लिए तात्कालिक समस्त ऐतिहासिक घटनाओं का परिज्ञान नितान्त आवश्यक है। अन्यथा वह भ्रमित हो सकता है। ऐसा ही भ्रम आलोच्य आचार्यश्री के सम्बन्ध में फैला है जिसका परिमार्जन अनिवार्य है। पूर्व सूचित किया जा चुका है कि इनका एक नाम जयानन्द भी रहा है। इसी आधार पर त्रिपुटी महाराज ने सं० १४२७ में प्रतिलिपित प्रवासीगीतिका को इस जयचन्द्रसूरि की रचना मान लिया है जो स्पष्टतः भूल[3] है। त्रिपुटाजी के ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए मैं क्या कहूँ? कम से कम वे इतना तो सोच पाते कि किसी अज्ञात जयानन्दमुनि प्रणीत प्रवासगीतिका का प्रतिलेखन समय १४२७ है और इस वर्ष में जयचन्द्रसूरिका अस्तित्व भी था या नहीं? सच बात तो यह है कि आलोच्य जयचन्द्रसूरि के गुरु सोमसुंदरसूरि का जन्म ही सं०१४३० में हुआ था जिसे त्रिपुटीजी ने भी स्वीकार[4] किया है। ऐसी स्थिति में प्रवासगीतिका को प्रस्तुत तपागच्छीय जयचन्द्र-

१ पुष्पिका इस प्रकार है—इति श्री उपदेशमालाप्रकरण महोपाध्यायश्रीश्रीश्री-जिनमाणिक्यगणि शिष्य पं० सुमतिसागरगणितत्शिष्य सुंदरतिलकगणिना लिखिता॥ श्री रयणा पठनाय॥ छ॥, पत्र २४,

२ जैन सत्यप्रकाश वर्ष ४ पृष्ठ -५९—६३

३ जैन परम्परानो इतिहास भाग ३ पृष्ठ ८५३

४ जैन परम्परानो इतिहास भाग ३ पृष्ठ ४४४

सूरिकी रचना बताना सर्वथा अनुचित है। शोध के क्षेत्र में प्रत्येक वस्तु पर अपनत्वकी मुद्रा लगाने की प्रवृत्ति प्रशस्य नहीं है। संभव है प्रवासमीतिका सोमतिलकसूरि शिष्य जयानन्द की रचना हो, इनका स्वर्गवास १४४१ में हुआ था।

आचार्य जयचन्द्रसूरि का नाम तात्कालिक सामूहिक प्रतिष्ठोल्लेखों में मिलता है। इस संग्रह में इनके नव्य प्रतिष्ठा लेख–१५०३–३–५–६–१३–१३–प्रकाशित है। अतिरिक्त लेख इन सकलनों में संग्रहीत है – विनयसागर १५०२–३–५, मुनि विशाल विजय १५०३–५, मुनि जयन्तविजय १४८३–१५०३–१५०५–५, मुनि विद्याविजय १५०३–४–५, नाहर भाग १–१५०३–४, बुद्धिसागरसूरि भाग १–१५०३–४, भाग २–१४९६–१५०२–२–४–५–६, नाहटा–१५००–२–३–५–१३, मुनि यतीन्द्रविजय १४८३, जैनसत्यप्रकाश वर्ष १२–पृष्ठ १३०–१५०५।

उपर्युक्त लेखों मे प्रमाणित है कि आचार्य महोदय के लेख सं० १४८६–१५१३ तक के मिलते है। परन्तु महदाश्चर्य है कि त्रिपुटी महाराज ने सं० १५५५ में इनसे प्रतिष्ठा करवाने का लेख उद्धृत किया है, (जैन पर० इति० भाग पृष्ठ ४५४)

(३२) जयचन्द्रसूरि (लेखांक ९५) धर्मघोषगच्छीय

यह आचार्य किसके पट्टधर थे ? नहीं कहा जा सकता। धर्मघोषगच्छीय किसी भी लेख या प्रशस्तियों में इनका नाम नही मिलता।

(३३) जयचन्द्रसूरि (लेखांक १३१–३८–४५) पूर्णिमापक्षीय,

भीमपल्लीय पूर्णिमापक्ष के जयचन्द्रसूरि को विद्यारत्न ने सं० १५७७ में स्वरचित कूर्म्मापुत्र-चरित्र की प्रशस्ति में इन शब्दों में स्मरण किया है—

तपस्यान्वये सद्गुणरत्नराशिः श्रीभीमवल्लीयकुलावतंसः
सदास्फुरच्छुभ्रयशः प्रसारो जीयाच्चिरं श्रीजयचन्द्रसूरि : ६

पूर्णिमापक्ष की भीमपल्लीशाखा के आचार्यो में जयचन्द्रसूरिका महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह पासचन्दसूरि के पट्टधर थे। इनके पट्टधर जयरत्नसूरि हुए, (देखो : विद्याविजयसंग्रह, लेखांक ४९४) परन्तु मेरे

सग्रहस्थ स० १५३० के लेख मे एक और पट्टधर भावचन्द्रसूरिका नाम आता है और इसका समर्थन कूर्म्मापुत्रचरित्र प्रशस्ति से भी होता है—

तत गणाज्ज्वलकीर्त्तिभाज श्रीभावचन्द्रा गुरवो वभूव

इस भावचन्द्रसूरि ने स० १५३५ मे सस्कृत गद्य मे शान्तिनाथचरित्र की रचना की। इनका प्रतिष्ठा लेख इसी सग्रह मे (लेखाक २२९) सगृहीत है। स्व० मोहन लाल देसाई ने इनके किसी लेख का उल्लेख नही किया है। इस लेख मे भीमपल्लीयाचार्य जयचन्द्रसूरि के स० १५११-१ -१५ के प्रतिष्ठालेख सग्रहीत हैं। अन्य निम्न लेखसग्रहो मे द्रष्टव्य हैं—बुद्धिसागरसूरि भाग-१-१४४२-१५२०-६-७-८-९ ९-१६-२०-२३, भाग २-१५०३-४-१६-१८-२४-२६, विद्याविजय १५०३-११-'२३, डॉ० भोगीलालभाई साडेसरा-१८९४ मुनि जयन्तविजय (अर्बु० प्र०) १४९६-१५०१-२-११, मुनि विशालविजय १५१२, विनयसागर १५१३, नाहटा-१ ९६-१५०१-२-११, नाहर भाग ३-१४९२-१५०३-९-१८, जनसत्यप्रकाश वर्ष ११ पृष्ठ १०३, १५२८, आत्मानन्दप्रकाश वर्ष ८ पृष्ठ १८३, १८९४ मुनि कान्तिसागर-१५२७।

(३४) जयशेखरसूरि (लेखाक २२८) पूर्णिमापक्षीय ?

सूचित आचार्य का प्रतिमा लेख दृष्टिगोचर होते ही अनुसन्धित्सु के मानस मे दो विचार-रेखाए खिचती है—और वह इसलिए कि इस आचार्य का सबध अचलगच्छ से स्थापित किया जाय या पौर्णमिक परम्परा से ? प्रथम विचार तो ऐतिहासिक साधन के सम्मुख निस्तेज हो जाता है। कारण कि अचलीय जयशेखरसूरि का समय सहयोग नही करता। धम्मिलचरित्र की प्रशस्ति के आधार पर इनकी विद्यमानता स० १४६२ तक ही मानी जाती है। सम्भव है बाद मे भी जीवित रहे हो, फिर भी इनका समय स० १५४१ तक तो नही खीचा जा सकता। आचार्य का जन्म १४०० के आसपास हुआ था।

दूसरा विचार कल्पना को बल देता है, यतीन्द्रविजय (लेखाक २८) और बुद्धिसागरसूरि भाग २ (लेखाक ३७९) सग्रहो मे पूर्णिमापक्षीय जयशेखरसूरि के स० १५१३ और १५१५ के दो लेख उपलब्ध हैं उनसे

समस्या समाधान का रूप ले सकती है। अत्र असंदिग्धरूप से कहा जा सकता है कि प्रस्तुत आचार्य जयशेखरसूरि पूर्णिमापक्षीय ही है। लेख का जो भाग खण्डित है, सम्भव है उसमें पक्षसूचक सकेत रहा हो। विनय सागर सग्रह में सं० १५३३ का इन्ही पौर्णमिक जयशेखरसूरि का लेख (लेखांक ७६५) प्रकाशित है, सकेतित सभी लेखों में इन्हें उपदेशक ही बताया है।

(३५) जिनचन्द्रसूरि (लेखांक १२९) तरतरगच्छीय

पुरातन जैन साहित्योद्धारक और अनेक ग्रन्थ-भण्डार संस्थापक आचार्य जिनप्रभसूरि के पट्टधर जिनचंद्रसूरि खरतरगच्छीय पट्टावल्यानुसार सत्तावनवे आचार्य है। जेसलमेरवासी चम्पगोत्रीय साह बच्छराज की धर्मपत्नी वाल्हादेवी की रत्नकुक्षि से सं० १४८७ मे इनका अविर्भाव हुआ। जन्म नाम था करणा। बाल्यकाल से ही सुविहित मुनियों के त्यागपूर्ण व्याख्यानों का इनके मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा था। उच्च संस्कार ही भावी प्रशस्त जीवन का निर्माण करते हैं। सं० १४९२ में इनने सुकुमार वय में संयम-साधना के कठोर मार्ग का अवलम्बन लिया और कनकध्वज नाम से अभिहित हुए। आगमानुमोदित शुद्ध संयमी-संस्कृति को जीवन में साकार कर रहे स्थविरों की सेवा में रह, पारम्परिक शास्त्र-ज्ञान प्राप्त किया। परमसहिष्णु जिनप्रभसूरि जैसे दीर्घदृष्टिसम्पन्न आचार्य का सतत सान्निध्य ही इनके जीवन की महती सिद्धि थी।

सं० १५१४ वैशाख कृष्ण २ को कुंभलमेरु वास्तव्य साह समरसिह कारित नंदिमहोत्सव के पावन प्रसंग पर कीर्त्तिरत्नाचार्य ने (नाकोड़ा तीर्थ प्रस्थापक) पद स्थापना की। आश्चर्य इस बात का है कि यह लेख सं० १५१० का है. आचार्यत्व पद का सकेत कर रहा है, ऐतिहासिक साधनों के प्रकाश में यह संवत् असंदिग्ध नहीं है। संदेह निवारणार्थ पुनः निरीक्षण भी कर लिया गया है। अर्बुदाचलोपरि सं० १५१५ आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा शुक्रवार को विराट् प्रतिष्ठोत्सव, विज्ञप्तित्रिवेणी के प्रणेता उपाध्याय जयसागर के सांसारिक पक्ष के बंधु संघपति मंडलिक आदि ने आचार्य जिनचन्द्रसूरि के आधिपत्य में आयोजित किया था। उस अवसर पर इनने फणेश्वर-पार्श्वनाथ, चिन्तामणि-पार्श्वनाथ, नवफण-पार्श्वनाथ

और अम्बिका आदि अनेक बिम्बो की प्रतिष्ठा की। वे सभी खरतर-वसति मे स्थापित किए[1]। स १५१७ मे माणेकबाई ने पत्तनमे स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र प्रतिलिपित करवा कर इन्हे सश्रद्धा समर्पित किया जो आज भावनगर जैन श्रीसघ के भण्डार मे विद्यमान है। स० १५२१ मे विख्यात जैन गद्य-साहित्यकार मेरुसुदर द्वारा निर्मित स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र की लेखन प्रशस्ति मे सूचित करते हैं कि मालवदेश की धारा नगरी निवासी सघपति पर्वत और आवा ने जिनचन्द्रसूरिके सदुपदेश से कल्पसूत्र लिख-वाया जो आज भावहर्षीय शाखा (बालोतारा) के ज्ञानभण्डार मे सुरक्षित है। प्रशस्ति के पत्र अब नाहटा सग्रहालय (बीकानेर) मे हैं[2]। पाटण के भाण्डशालिक—भणसाली श्रीधर ने आचार्य के आदेश से[3] एक लक्ष श्लोकपरिमाण ग्रन्थ प्रतिलिपित करवाये जिनमे स्वर्णाक्षरी सचित्र कल्पसूत्र भी सम्मिलित थे। इनका छत्तीस पद्यात्मक प्रशस्ति वाचनाचार्य साधुसोम ने तैयार की। ये जसलमेर के तपागच्छीय ज्ञानागार मे आज भी सुरक्षित है।

आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने धर्मरत्न आदि को सूरि पद समर्पित किया था। इनका देहोत्सर्ग काल सदिग्ध है। पट्टावलियो मे सूचित किया है कि स० १५३० जन्मभूमि जैसलमेर मे काल-कवलित हुए। परन्तु प्रतिष्ठालेखो से तो स० १५३८ तक जीवित रहना पाया जाता है। स० १५१०-१५३८ तक के लेख प्राप्त हैं। नाहटा सग्रह मे तो इनका एक लेख स०१५६० (लेखाक २७५०) का दिया है। वह प्रमाद का ही परिणाम प्रतीत होता है, तब तक तो अस्तित्व सचमुच असभव ही है।

नाहटा—१५१५–१६–१९–२१–२४–२८ – ३० – ३६, यतीन्द्रविजय १५१७–३५, मुनि विशालविजय १६१६–२०–२३–३२, बुद्धिसागरसूरि

---

१ मुनि जयन्तविजय—अर्बुद प्राचीन-जैन-लेख-सदोह-लेखाक ४४१ से ४५७

२ जैनसत्यप्रकाश, वर्ष २० पृष्ठ १४५

३ आदेशत श्रीजिनचन्द्रसूरिराजेश्वरगमित्संघराख्य
सिद्धान्तलक्ष प्रतिलेख्यहैमलीलेखच्चित्रितकल्पपुस्तक

—जैन सत्यप्रकाश वर्ष २० पृष्ठ १४५

भाग २, १५१९–२८–२९–३३–३६, मुनि कान्तिसागर १५१६–१९–३१, मुनि विद्याविजय १५१९–२१–३६, नाहर भाग १ : १५१५–१७–१८–३६, भाग २, १५३२, भाग ३, १५१५–१६–१८–३६, मुनि जयन्तविजयजी (अर्बु० प्रा० जै० ले०) १५१५–३६ (इस संवत् के इनके अनेक लेख उपलब्ध है), जैसलमेर ज्ञानभण्डारसूची में भी स० १५१८ के लेख सकलित है, जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७ पृष्ठ ४६९, १५२४।

(३६) जिनचन्द्रसूरि (लेखांक २३३) आगमगच्छीय

आचार्य का केवल एक ही प्रतिष्ठालेख प्रकाशित हो रहा है। स्व० मोहनलालभाईने सूचित[1] किया है कि झधड़िये के जैन मन्दिर की एक प्रतिमा पर इनका लेख उत्कीर्णित है। अन्य वृत्त अज्ञात है।

(३७) जिनचन्द्रसूरि (लेखांक ३२२) खरतरगच्छीय

यह लेख संवत् रहित है। जिनराजसूरि के पट्टधर जिनचन्द्र-सूरि पार्श्वनाथबिम्ब के प्रतिष्ठापक आचार्य है। खरतर पट्टावली में दो जिनराजसूरि का उल्लेख मिलता है। प्रथम वह जिनका देहोत्सर्ग सं० १४६१ देवकुलपाटक में हुआ था और दूसरे जिनसिंहसूरि के पट्टधर जो विख्यात कवि और नैषधादि के सफल वृत्तिकार थे। दोनों ही जिनराजसूरि के जिनचन्द्रसूरि नामक पट्टधर आचार्य ज्ञात नहीं।

(३८) जिनदेवसूरि (लेखांक १८७) चैत्रगच्छीय (गुणदेवसूरिसन्तानीय)

सं० १५२६ के खण्डित लेख से ज्ञात होता है कि जिनदेवसूरि इस प्रतिमा के प्रतिष्ठापक नहीं थे। तात्कालिक इतद्वगच्छीय प्रतिमालेखोंसे स्पष्ट है कि विनष्ट नाम आचार्य रत्नदेवमूरिका होना चाहिए, इस कथन के समर्थन में निम्न तथ्य है :

---

१. जैन गूर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२३१,

१ स० १५११ के प्रतिमालेखमे गुणदेवसूरिसन्तानीय जिनदेवसूरि के पट्टधर रत्नदेवसूरि का सकेत है[1]।

२ स० १५१२ के लेख मे जिनदेवसूरि पट्टधर रत्नदेवसूरिका उल्लेख है[2]।

३ स० १५१३ वाले लेख मे गुणदेवसूरिसन्तानीय रत्नदेवसूरि दृष्टिगोचर होते है[3]।

आलोच्य लेखके समान उपर्युक्त तीनो लेखो का सम्बन्ध चैत्र-गच्छीय आचाय मे है। रत्नदेवसूरिका विशेष परिचय ज्ञात न होते हुए भी इतना तो प्राप्त लेखो के आधार पर नि सकोच कहा जा सकता है कि स० १५११ के लगभग आचायत्व के गौरव से मण्डित हो चुके थ, और स० १५११–२६ तक के प्रतिमालेखो का सबध जिनदेवसूरि-पट्टधर रत्नदेवसूरि से है। इनके पट्टधर अमरदेवसूरि का स० १५३३ का प्रतिमालेख प्राप्त है[4]। अत अव निश्चिततया कहा जा सकता है कि इस लेख के विनष्टाश मे रत्नदेवसूरिका ही नाम था। एक ही शताब्दी मे एक ही गच्छ मे समान नामधारी अधिक आचार्य हो जाने के कारण कभी-कभी उनकी रचनाए एवम् लेखो के पार्थक्य मे कठिनाई का सामना करना पडता है। पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दी के लेखो मे चैत्रगच्छीय दो जिनदेवसूरि का पता चलता है। एक तो वह जिनके प्रतिमालेख बुद्धिसागरसूरि[5] और विनयसागर-सग्रहो[6] मे क्रमश स० १४८४–८७ और १४८४ पाये गये हैं परन्तु यह अपने को गुणदेवसूरिसन्तानीय प्रकट नही करते। अनुमानत प्रस्तुत आचार्य चैत्रगच्छीय पुण्यदेवसूरि के पट्टधर हो, जैसा कि विनयसागर–लेखाक २४९ से ज्ञात होता है।

---

१ मुनिविशालविजय–सग्रह लेखाक १७६
२ विनयसागर–सग्रह–लेखाक ४८२
३ बुद्धिसागरसूरि-सग्रह भाग २ लेखाक ३२,
४ विनयसागर—सग्रह लेखाक ७५६
५ बुद्धिसागरसूरि—सग्रह भाग १ लेखाक ५३४, भाग २ लेखाक १०१५
६ विनयसागर-सग्रह लेखाक २४९

आलोच्य गुणदेवसूरिसन्तानीय जिनदेवसूरि का सम्बन्ध स० १५०६-७ और ८ से अनुमित है। कारण यह है कि यह अपने को गुणदेवसूरि-सन्तानीय और सं० १५०६ के लेख में चतुर्दशीयपक्षे चैत्रगच्छे सूचित करते हैं[1]। कहीं-कहीं इस आचार्य को गुणदेवसन्तानीय मानकर भी जिनेश्वरसूरि के शिष्य होने की कल्पना साकार हुई है।

प्रस्तुत जिनदेवसूरि के लेख स० १५०६–११ तक के प्राप्त है, अनन्तर रत्नदेवसूरि का काल आ जाता है (द्रष्टव्य मुनिविशालविजय लेखाँक १७६)। पूर्ववर्त्ती जिनदेवसूरिके लेख तो प्राप्त हैं परन्तु उनका विवेचन अनपेक्ष्य है। एक बात और भी विचारणीय है कि लेखमें गुणदेवसूरिसन्तानीय कहा है। पर कौनसे गुणदेवसूरि ? गर्भित है। कारण कि मूर्तिलिपियों में कई गुणदेवसूरिका अस्तित्व पाया गया है, एक तो बुद्धिसागरसूरि–संग्रह में (लेख सं० १४७७ लेखाक २६७) है। काल-सामीप्यके कारण इन्हें पूर्वज की संज्ञा से अभिहित नही किया जा सकता। नाहटा—सग्रह में सं० १४३५ (लेखांक ५१४) वाले गुणदेवसूरि का सात मिलता है पर वह चैत्रगच्छीय नहीं है, अतः लेख सकेतित आचार्य अन्वेषणीय है।

(३९) जिनदेवसूरि—(लेखांक ४२) भावडारगच्छीय

प्रतिमोत्कीर्णित लिपिसे केवल यहीं ज्ञात हुआ कि इसके प्रतिष्ठापक जिनदेवसूरि भावडारगच्छानुयायी थे। किसके पट्टदीपक थे, नही कहा जा सकता। इस गच्छ के वहुत ही कम ऐसे लेख उपलब्ध है जिनमे पूर्ववर्त्ती आचार्य या परम्पराका निर्देश हो। स्वल्प क्षणों के लिए मान लिया जाय कि एकाध लेख अपवाद स्वरूप मिल भो जाय, तथापि आचार्य परम्परा की सगति बैठाना सरल नहीं। कारण कि इस भावडारगच्छमें भावदेवसूरि–विजयसिंहसूरि–जिनदेवसूरि और वीरसूरि पट्टानुक्रमतः पुनः-पुनः होते आये है, ऐसी स्थिति में रचना संवत् होन किसी कृतिका सम्बन्ध समान नामधारी किस महापुरुष से स्थापित किया जाय, प्रश्न

---

1. बुद्धिसागरसूरि—संग्रह भाग २ लेखाक ७५४, मुनिकान्तिसागर—संग्रह लेखाक १०६, विद्याविजय—सग्रह—लेखांक २३५

चिह्न बन जाता है। दूसरी बात यह भी है कि इस गच्छके लेख क्रमश प्राप्त भी नही होते। बीच मे ऐसा भी समय पड जाता है कि किसी आचार्य का अस्तित्व ही अज्ञात रहा है, अत आनुमानिक क्रम भी अकल्प है।

जिनदेवसूरि नाम के इस परम्परा मे अनेक आचार्य हुए हैं, परन्तु सभी के अस्तित्व को अलोकित करने वाले साधन अप्राप्त हैं। स० १३९३ के लेख जिनदेवसूरि के नामसे मिलते है, अनन्तर स० १४०९–१४२९ तकके सम्प्राप्त हैं। क्या दोनो को एक ही आचार्य मान लिया जाय? सम्भव तो कम हो है। ऊपर सूचित लेख विवक्षित जिनदेवसूरिसे सम्बद्ध रहे हैं। प्राप्त लेखो के आधार पर इन्हे इस गच्छ के तीसरे जिनदेवसूरि माना जा सकता है। इनका इसी दिन का एक और प्रतिष्ठालेख मुनि जिनविजय-सग्रह भाग २ मे पाया गया है। उसमे सूचित है कि इस आचार्य ने विजयसिंहसूरि के पट्टालकार वीरसूरि की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की जो आज पाटण के जैनमन्दिर मे सुरक्षित है, (लेखाक ५२१)। अन्य लेख नाहटा १४२२–२७, मुनि जयन्तविजय—१४०९, विद्याविजय १४२२ के सग्रहो मे उपलब्ध है।

मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने अपने प्रशस्तिसग्रह मे दो विशिष्ट पद्य-द्वय उद्धृत किये हैं—

आद्यनामक्रमेणैव प्रसर्पितगुरुक्रमे
पुन श्रीजिनदेवाख्या बभूवुर्वरसूरय ॥

तेषा विनयविनयो वहुभावदेवसूरि प्रसन्नजिनदेवगुरुप्रमोदात्
श्रीपत्तनाख्यनगरे रवि-विश्ववर्षे (१४१३) पार्श्वप्रभोश्चरितरत्नमिद ततान १२[1]

पद्यो पर प्रथम दृष्टिपात करने पर फलित होता है कि जिनदेवसूरि शिष्य भावदेवसूरि ने स० १४१२ पाटण मे पार्श्वनाथचरित्र का प्रणयन

१ केटलाग ऑफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, भाग २ पृष्ठ २८०

किया। कालकी दृष्टिसे तो विवक्षित जिनदेवसूरि के ही शिष्य प्र होंगे, पर तथ्य इसके विपरीत है। यह भावदेवसूरि सं० १४०९- मध्यकालिक हुए जिनदेवसूरि के शिष्य न होकर वीरसूरि के पट्ट आचार्य के प्रशिष्य थे, जो द्वितीय जिनदेवसूरि नाम से विख्यात है। इसे पन्द्रहवी शती तक खींच लाने में तनिक भी औचित्य नहीं अपनी कृति पार्श्वनाथचरित्र में जो परिचय अन्तःसाक्ष्य से प्राप्त हो है, उसे सदेह की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नही है। मुनि पुण्यवि जी और प्रशस्तिसंग्रह के सम्पादक श्री अम्बालालभाई ने रविविश्वव शब्दों का सं० १४२२ निकाला है वह सत्य नही है। श्रीकालिकाच कथासग्रह के उपोद्घात (पृष्ठ १२) में पण्डितजी ने पार्श्वनाथचरित्र प्रणयन काल सं० १३१२ स्वीकार किया है। वही सही है। रविविश्व मे १४१० संवत् की कल्पना का क्या आधार है? शब्दार्थ बहुत स्प है कि रविसे बारह और विश्वसे तेरहकी सख्या लेनी चाहिए। स० १३ में गणि सोमधर्म द्वारा रचित उपदेशसप्ततिका में विश्व तेरह ही ग्र किया है और वह उपर्युक्त ही है[1]। अन्यत्र भी विश्व शब्द से तेरह सख्या ही ली गई है[2]। शब्दांक-सूचक सख्या निकालने के लिये श के अर्थो पर तो ध्यान दिया ही जाना चाहिये, परन्तु साथ ही व्य के कालक्रम की भी उपेक्षा न होनी चाहिये। अन्यथा भूलों की परम्प को अवकाश मिलने का भय है[3]। भावदेवसूरि के काल-क्रम पर ध्या

---

१. दन्तविश्वमितेवर्षे श्रीजिनप्रभसूरयः
अभूवन् भूभृता मान्याः प्राप्तपद्मावतीवराः,

२. वैक्रमे स्त्रीकला-विश्वदेवसंख्ये नु वत्सरे—कल्पलता, प्रस्तावना पृष्ठ ३

३. ऐसी ही एक भूल प्रशस्तिसंग्रहकारसे हो गई है। यदि जैन गूर्जर कवि भाग ३ पृष्ट १२९०-१ का निरीक्षण कर लिया होता तो स्खलना न होत बात यह है कि अंचलगच्छीय लावण्यचन्द्रने वीरवंशानुक्रम-अचलग पट्टावली का सृजन सं० १७६३ मे किया था, परन्तु मुनिश्रीने भ्रम वर्षे राम-रसाब्धि-चन्दिर (२९४–२५८) का अर्थ बैठाया है। अब्धि श चारका वाचक हो सकता है। परन्तु ऐतिहासिक कालक्रमानुसार तो स सात ही उपयुक्त है। कारण कि सत्रहवी शती के आचार्यो का परि

कृष्ट किया होता तो सम्भवत इस उल्लेखनीय स्खलना से अपने-आपको सुरक्षित रखा जा सकता था। इन पंक्तियोका लेखक निश्चित रूप से मानता है कि भावडारगच्छीय आचार्य भावदेवसूरि, जिनदेवसूरि द्वितीय के प्रशिष्य थे और चरित्र प्रणयन काल स० १३१२ ही है। आलोच्य जिनदेवसूरि से इनका कोई सम्बन्ध नही हैं। इस तथ्य की सर्वाधिक पुष्टि सकेतित चरित्र की स० १३३९ की प्रतिलिपित प्रतिसे भलिभाति हो जाती है पार्श्वनाथचरित्र-प्रशस्ति के जो विशिष्ट पद्य उद्धृत किये हैं, वे नव्य नही है। प्रत्युत प्रतीत तो यह होता है कि मुनिश्रीकी प्रतिलिपित प्रतिमे कही भावदेवसूरिके पूर्व आचार्य यश के नाम वाला पद्य ही लिखने मे न रह गया हो। सम्भव यही है, तभी उन्हे जिनदेवसूरि के शिष्य मानने की कल्पना को प्रश्रय मिला।

मुनिश्री पुण्यविजयजी सकलित प्रशस्तिसग्रह[1] मे भावदेवसूरिशिष्य जिनदेवसूरि प्रणीत क्रियाकलाप का उल्लेख है, कर्त्ता ने रचना काल सूचित नही किया है। प्रतिलिपित स० १५२० है, इस काल मे वीरसूरिशिष्य[2] जिनदेवसूरि का अस्तित्व प्रतिमालेखो से प्रमाणित है। (यतीन्द्रविजय-सग्रह लेखांक १९१) इस युग मे भावदेवसूरि भी विद्यमान थे। स० १५१८-४१ तक के लेख नाहटा, बुद्धिसागरसूरि, नाहर, मुनि विशाल-विजय आदि सग्रहो मे मिलते हैं। इनके बाद पुन जिनदेवसूरि आ जाते हैं।

---

१ श्रीभावडारगच्छीयश्रीजिनदेवसूरय
प्रोक्ते क्रियाकलापे न चुराद्या धातवो भवन्
श्रीभावदेवसुगुरोरभिधाप्रसिद्धगच्छैकभूषणमणिर्मुनि माननीय
सूरीश्वर शमिवश्वरश्चतुर क्रियाणा कलापक व्यरचयज्जिनदेवसूरि
—प्रशस्तिसग्रह, पृष्ठ ३८८

२ इनके लेख स० १४३९-१५१२ तकके प्राप्त हैं,

(४०) जिनप्रभसूरि—(लेखांक ५८)

यह प्रतिमालेख खण्डित ही उपलब्ध हुआ है, केवल तेजपाल और जिनप्रभसूरि नाम ही पढे गये हैं। संकेतित आचार्य के किसी शिष्य के उपदेश से प्रतिष्ठा हुई थी। विचारणीय बात यह है कि इस काल में किसी भी गच्छमें जिनप्रभसूरिका अस्तित्व ज्ञात नहीं है। चौदहवीं शती में इस नामके दो आचार्य अवश्य हुए है। प्रथम आगमगच्छीय जिनप्रभ-सूरि, जो अपने को शत्रुंजय-सेवक सूचित करते थे। वहां निवास कर प्राकृत और अपभ्रंश भाषामें उन्होंने कथा और स्तुति-स्तोत्रात्मक साहित्यका प्रणयन किया। ज्ञानप्रकाशकुलक, मदनरेखासन्धि, चतुर्विधभावनाकुलक, जीवानुशास्तिसन्धि, नेमिनाथरास, भव्यचरित्र, युगादिजिनचरितकुलक, भवियकुटुंबचरित, श्राद्धविधिप्रतिक्रमण, सर्वचैत्यपरिपाटी प्रभृति रचनाए इन देवभद्रसूरिशिष्य आगमिक जिनप्रभसूरि की है।

दूसरे आचार्य खरतरगच्छकी लघुशाखा प्रवर्त्तक जिनसिंहसूरि के शिष्य थे। जन्म और दीक्षाकाल अज्ञात है। कहा जाता है, राजस्थान प्रदेशान्तर्गत झूंझनूं में इनका जन्म हुआ था। जाति से थे श्रीमाल और इसी जाति-संघके मान्याचार्य भी थे, सं० १३४१ मे आचार्य पद पर अधिष्ठित हुए। सं० १३४९ में नागेन्द्रगच्छाचार्य उदयप्रभसूरिके पट्टधर मल्लिषेणसूरि प्रणीत स्याद्वादमंजरी वृत्ति के निर्माण में इनने सहयोग प्रदान किया था[1]। इसी प्रकार हर्षपुरीयगच्छ के मलंधारी राजेश्वर-सूरि ने भी स्वकृत श्रीधरकी न्यायकन्दली पर सक्षिप्त विवरणमें अध्यापक के रूप में कृतज्ञतापूर्वक इनका स्मरण किया है[2]। रुद्रपल्लीगच्छीय संघ-

---

१. श्रीजिनप्रभसूरीणां साहाय्योदभिन्नसौरभा
श्रुतावृत्तंतु सता वृत्तिःस्याद्वादमांजरी

— स्याद्वदमजरी-प्रशस्ति, पद्य ८,

२. श्रीमज्जिनप्रभविभोरधिगत्य न्यायकिन्दली कचित्
तस्यां विवृतिलवमहं करवै स्व-परोपकाराय

—पिटर्सन वृत्तान्त ३, पृष्ठ २७३

तिलकसूरिके भी यही विद्यागुरु थे[1] ।

पाण्डित्यपूर्ण और प्रज्ञाशील चौदहवी शती के आचार्यो मे जिनप्रभसूरि का स्थान प्रथम था । उनकी नैष्ठिक सारस्वतोपासना के परिणाम स्वरूप उपलब्ध ग्राम्य जैन-वाङमय के अमर रत्न हैं—कातन्त्रविभ्रमटीका (योगिनीपुर, स० १३५२), श्रेणिकचरित्रद्वयायकाव्य (१३५६), विधिमार्गप्रपा (स० १३६३ कोशलानयर), कल्पसूत्र पर सदेहविपोपधि वृत्ति (स० १३६४ अयोध्या), अजितशान्ति पर बोधदीपिका वृत्ति (स० १३६५ दाशरथिपुर), उपसर्गहरस्तोत्र-अर्थकल्पलतावृत्ति (साकेतपुर, स० १३६४), भयहरस्तोत्र – अभिप्रायचन्द्रिकावृत्ति (स० १३६८), पादलिप्तसूरि कृत वीरस्तोत्र वृत्ति (स० १३८०), राजादि—रुचादिगण वृत्ति, (स० १३८०), विविधतीर्थकल्प (स० १३९० पूर्ण), विदग्धमुखमण्डनवृत्ति, साधुप्रतिक्रमणवृत्ति, हैमव्याकरणानेकार्थकोप, तपोटमतकुट्टन, परमसुखद्वात्रिंशिका, सूरिविद्याकल्प, पद्मावतीचतुष्पदिका, अनुयोगचतुष्टयव्याख्या, रहस्यकल्पद्रुम, देवपूजाविधि, षडावश्यकटीका, प्रत्याख्यान तथा वन्दनस्थानविवरण, विपमकाव्यवृत्ति, प्रव्रज्याविधान वृत्ति ।

तात्कालिक दिल्ली का सम्राट मुहम्मद तुगलक था तो खप्ती किन्तु सूरिजी के गुणो पर ऐसा मुग्ध हुआ कि जीवनभर उनका शिष्य बना रहा । शत्रुंजयादि तीर्थरक्षार्थ इसने प्रमाणपत्र भी जारी कर दिये थे । समरसिंह द्वारा कृतोद्धार मे जिनप्रभसूरिका हाथ मुख्य था, वैदुष्य और सयम-समन्वित जीवन के कारण इनका प्रभाव सर्वत्र व्याप्त था । यहा तक कि अन्य गच्छीय आचार्य भी इनका सम्मान करते थे पद्मावती

---

१ दिल्या साहिमहम्मद शककुलक्ष्मापालचूडामणि
येन ज्ञानकलाकलापमुदित निर्माय षड्दर्शनी
प्राकाश्य गमिता निजेन यशसा साक स सर्वागमा
ग्रन्थज्ञो जयतात् जिनप्रभगुरुर्विद्यागुरुण ,
पिटर्सन के चतुर्थ वृत्तात मे इस पद्यके मर्म को न समझनेसे इसी जिनप्रभसूरि रुद्रपल्लीयगच्छके बताने का अयास भ्रामक प्रयास किया है और बुद्धिसागरसूरि जैसे विज्ञो ने गच्छमतप्रबध मे भी अन्धानुकरण किया है ।

इन्हें प्रत्यक्ष थो। परवर्त्ती शुभशील आदि अनेक पर-समुदायिक विद्वानों ने इनकी मुक्तकण्ठ से प्रसंशा की है। इनके अनेक प्रासंगिक चमत्कार आदि विशद् चरित्र के लिए पं० श्री लालचन्दभाई गांधी लिखित श्री जिनप्रभसूरि अने सुल्तान महम्मद, विधिप्रपा आदि दृष्टव्य हैं।

जहां तक प्रतिमालेखका प्रसंग है, नहीं कहा जा सकता कि इनके किस शिष्य द्वारा उपदिष्ट है? काल का अन्तराल भी शिष्यत्व में शंका का कारण बना हुआ है, सम्भव है किसी पारम्परिक मुनि ने उपदेश देकर प्रतिमा का निर्माण करवाया हो।

(४१) जिनभद्रसूरि—(लेखांक ६३-१०३-१२९) खरतरगच्छीय

विशाल व्यक्तित्व और प्रेरक कृतित्व के धनी जिनभद्रसूरि, साहित्य संरक्षक संवर्द्धक एवं पुनरुद्धारक आचार्यो में महत्व का स्थान रखते हैं। समानधर्मी आचार्य सोमसुदरसूरि का यहाँ विस्मरण नहीं किया जा सकता। दोनों ही आचार्यो का विद्वत्समुदाय अप्रमत्तभावेन सयम की समाराधना में अनुरक्त रहते हुए भी अरक्षित-उपेक्षित जीर्ण-शीर्ण ताल-पत्रोपरिलिपित साहित्य की सुरक्षा और उद्धारार्थ प्राण-पण से प्रयत्नशील था। दोनों का औपदेशिक क्षेत्र व्वापक था। तात्कालिक समाज इनके आदेश शिरोधार्य करने में गौरव की अनुभूति करता था। सोमसुदरसूरि गूर्जर-प्रदेश में एतत्कार्य सम्पादन में समुनिवृन्द व्यस्त थे। राजस्थान में जिनभद्रसूरि ने श्रवक-समुदाय को ज्ञान का महत्व समझा कर तदर्थ उत्प्रेरित किया। अनुवर्त्ति जयसागरादि विद्वद्वृंद को प्रतिलेखन और संशोधन कार्य प्रवृत्त में किया।

उस युग में यद्यपि तालपत्र पर लेखन का सर्वथा अभाव नही था, कारण कि स० १४९३ की प्रतिलिपित प्रति जेसलमेर के ज्ञान भण्डार में विद्यमान है, परन्तु कागज का पर्याप्त विकास हो चुका था। मुख्यतः वही लेखन का माध्यम भी था। जिनभद्रसूरि के साहित्योद्धार के परिणाम स्वरूप जालौर, जैसलमेर, देवगिरि/दौलताबाद, ,अहिपुर/नागौर और अणहिल्लपुर/पत्तन में विशाल ज्ञानागार संस्थापित विये जा।

सके[1]। तदुपरान्त माण्डवगढ[2], आशापल्ली/कर्णावती[3] और स्तम्भ/खभात[4]

---

१ श्रीमज्जेसलमेरदुग नगरे जावानपुर्या तथा
श्रीमद्देवगिरौ तथा अहिपुर श्रीपत्तने पत्तने
भण्डागारमवीरभरद् वरतररत्नानावर्धं पुस्तकं
स श्रीमज्जिनभद्र सूरिसुगुरुर्भाग्याद् मतो मुद् भुवि ॥ २१ ॥
—समयसुंदरगणिकृत अष्टलक्षी-प्रशस्ति,

२ यहा सूरिजी के परम अनुयायी मण्डन और धनराज रहते थे। वे विद्वान् और सक्षम ग्रन्थकार थे। इनका स्वतन्त्र ज्ञानभण्डार था। काव्यमण्डन, चपूमण्डन, कादवरीमण्डन, शृगारमण्डन, अलकारमण्डन, उपसर्गमण्डन, सारस्वतमण्डन और चन्द्रविजय प्रबध सभी मण्डन की तथा धनदत्रिशती, धनराज की सारस्वत साधना की परिणति हैं। इस परिवार ने सिद्धान्तादि ग्रन्थो का लेखन करवाकर अपने चित्कोश में सुरक्षित किये थे। मण्डन-चरित—काव्यमनोहर मे महेश्वर कवि ने जिनभद्रसूरि का इस प्रकार स्मरण किया है—

जयत्यत श्रीजिनभद्रसूरि श्रीमालवशोद्भवदत्तमान
गम्भीरचारुश्रुतराजमानस्तीर्थाटनैं सन्ततपूतमूर्त्ति

तथैव नीतिधनदशतकमे—

चिन्तामणि सप्रति भक्तिभाजा तपस्यया त्रासितदेवनाथ
दयोदय प्रीणितमर्त्यलोक सिद्धो गरीयाजिनभद्रसूरि

३ आशापल्ली चित्कोश का उल्लेख जयसागर द्वारा लिपित करवाई हुई स० १४९५ व्यवहारचूर्णि की पुष्पिका मे आता है।

४ यहा के चित्कोश के सस्थापन और विकास मे स्थानीय परीक्ष गूजरसुत धरणा और तत्पुत्र साइया का विशेष योग था। इनने जिनभद्रसूरि के सदुपदेश से दजनो ग्रन्थो का प्रतिलेखन करवाया जिनमे से कतिपय आज भी जैसलमेर के वृहद्ज्ञानागार मे सुरक्षित हैं। प्राप्त पुष्पिकाओ से प्रतीत होता है स० १४८३ से १४९३ तक अविरत गति से लेखन काय चलता रहा। इनमे अधिकतर प्रतिया ऐसी भी है जिनमे आचाय का नाम नही है, पर वे परिया द्वारा प्रतिलिपित होने मे पहचानी जा सकती हैं। आचारागसूत्रवृत्ति (स० १४८५), इस प्रति का सशोधन सोम-कुजर ने जयसागरोपाध्याय के सम्मुख पढ कर स० १४९२ मे किया था। ओघ-निर्युक्ति (स० १४८७), लघुकल्पभाष्य (स० १४८८), ज्योतिष्करडक टीका (स० वही), अगविद्या (स० वही), जीवाभिगमवृत्ति आदि (स० १४८९), सूर्यप्रज्ञप्ति, (स० १४८९), सवत् १४९० मे न्यायसूत्रवृत्ति, न्यायावतार-सूत्रवृत्ति और न्यायप्रवेशिका आदि, स० १४९० मे छदोनुशासनवृत्ति, ओघनिर्युक्तिभाष्य (स० १४९१), उत्तराध्ययनसूत्रटीका (स० १४९१), और स० १४९३ मे सर्वसिद्धान्तविषमपदपर्याय आदि आदि।

में भी चित्कोश स्थापित किये जाने के उल्लेख प्राप्त है[1]। इनके सन्तानीय या अन्य गुणग्राही मुनियों ने जहां भी स्मरण किया है वहां इनकी ज्ञानोपासना को ही महत्व प्रदान करते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की है[2]। आचार्य ने कहां किस ज्ञान भण्डार की स्थापना कब की ? इसका अनुमान तो पुष्पिकोल्लेख से ही किया जा सकता है।

विश्व विश्रुत जैसलमेर के तालपत्रीय ज्ञान भण्डार संभवजिन-प्रसाद की स्थापना सं० १४९७ प्रतिष्ठा के पावन प्रसंग पर किये जाने का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। किसी अज्ञात कारणवश, सम्भवतः सुरक्षात्मक दृष्टि से, अन्य स्थानो से साहित्य मगवा कर इसे पुष्ट किया। अनन्तर इनकी शिष्य सन्तति ने शताब्दियों तक श्रम कर ज्ञानागार का परिवर्द्धन किया। साहित्य सृजन और सरक्षण में जैन मुनियों का दृष्टि-कोण सदैव अति औदार्यपूर्ण रहा है। ज्ञानागार में न केवल जैन साहित्य ही सग्रहित है, अपितु. वैदिक परम्परा-संवद्ध, अन्यत्र अप्राप्त प्राचीन अनेक ग्रन्थ भी विद्यमान हैं। सांख्यकारिका का गौडभाष्य, वृत्ति, योगसूत्र के व्यासभाष्य पर तत्ववैशादीटीका, गीता का शाँकरभाष्य, हर्ष का खण्डनखण्डखाद्य, वैशेषिक और न्याय दर्शन के भाष्य तथा तदुपरिक्रमिक उदयनाचार्य की टीकाएं, न्यायसूत्र भाष्य-वर्त्तिक और उस पर तात्पर्य-शुद्धि के अतिरिक्त पाँच वृत्तियाँ, वौद्ध-परम्परा के न्यायबिन्दु-सटीक सटिट्प्पण, तत्व संग्रह आदि इस ज्ञानागार की ऐसी उपलब्धियां हैं जिन पर किसी भी परम्परा को गर्वानुभूति हो सकती है।

---

१. मोहनलाल, दलीचन्द देसाई—जैन साहित्यनो इतिहास, पृष्ठ ४७३
संवत् १४९७ की संभवजिन-प्रासादप्रशस्ति में भी संकेत है—

अणहिल्लपुरपाटकप्रमुखस्थानेपु यरकार्यत
श्रीज्ञानरत्नकोश विविधपक्षश्राद्धसधेन

—केटलोग ऑफ मेन्युस्क्रिप्टस् एट जैसलमेर, पृष्ठ ६६,

२. (अ) स्थाने स्थाने स्थापितसारज्ञानभण्डागारश्रीजिनभद्रसूरि
एपिग्राफिआ इंडिका १/३७

(ब) श्रीज्ञानकोशलेखनदक्षा जिनभद्रसूरयो मुख्याः
गुणविनय-संवोधसत्तरि-प्रशस्ति

आत्मस्थ सौंदर्य-जागरण के प्रशस्त पथ पर गतिमान श्रमण-परम्परा पौद्गलिक-सुषमा के प्रति कभी उदासीन नही रही। उसने सौंदर्याश्रित कला की मुक्त रूप से उपासना की है। जैसलमेर का भण्डार इस दृष्टि से विशेष अध्ययन के उपादान सजोए हुए हैं। कहने की आवश्यकता नही कि यहा की कलात्मक काष्ट-पट्टिकाए[1] भारतीय चित्र समृद्धि का पुरातन रूप सुरक्षित किये हुये हैं। साथ ही जिनभद्रसूरि और इनकी परम्परा के मुनियो ने दजनो स्वर्णाक्षरी सचित्र कल्पसूत्रादि की प्रतिया दीर्घकालव्यापी सक्षम कलाकारो द्वारा तयार करवा कर चित्र-कला के क्रमिक विकास की सामग्री प्रस्तुत की।

इस ज्ञानागर की ख्याति से प्रभावित होकर सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डा० बूल्हर (सन् १८७४), प० हीरालाल हसराज, भाण्डारकर जैसे विज्ञो ने समय-समय पर यथामति शोधकार्य किया। व्यवस्थित सूचीपत्र बनाने का यत्न किया, परन्तु तात्कालिक सकीर्ण वृत्ति के व्यवस्थापको के कारण वांछित सफलता प्राप्त न हो सकी। जिनभद्रसूरि की परम्परा के समर्थ और नि स्पृही आचार्य जिनकृपाचन्द्रसूरि और उनके सुशिष्ट उपाध्याय पद विभूषित सुखसागरजी महाराज सा० का चातुर्मास स० १९९२ मे जैसलमेर हुआ। समाज का इन्हे पूर्ण विश्वास प्राप्त था। किसी भी प्राचीन सग्रह से प्रति वहेरने का इन्हे अभ्यास न था। अत ज्ञानभण्डार के समुद्धार का काय प्रारम्भ किया गया। आचार्य श्री ने सुयोग्य शिष्यो के तत्वावधान मे पुरातन और शीर्ण-जीण प्रतियो की

---

१ ये पट्टिकाए जैन इतिहास की दृष्टि मे भी विशिष्ट महत्व रखती हैं। तात्कालिक अर्थात् बारहवी शताब्दी की प्रमुख घटनाओ को रग और रेखाओ द्वारा स्थायित्व प्रदान किया गया है। वादीदेवसूरि और कुमुदचन्द्र का शास्त्रार्थ, जिनदत्तसूरि की प्रवचन सभा, प्रतिष्ठोत्सव प्रसग आदि। यद्यपि अधिक विद्वज्जन द्वारा पुन पुन निरीक्षण होते रहने से अब इस प्रकार की सामग्री वहा स्वल्प ही रह गई है। शेष अपहृत हो गई है। पर अब तो अवशिष्ट की रक्षा का मार्ग ही रह गया है। कतिपय चित्रो का प्रकाशन भारतीय विद्या (हिन्दी गुजराती) के तृतीय वर्षांक मे हुआ है।

प्रतिलिपियां प्रारम्भ कीं। कालान्तर में उनका प्रकाशन भी जिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फण्ड (सूरत) द्वारा हुआ। यहां के बारह जर्जरित तालपत्रीय ग्रन्थों से छाया चित्र लिवाने में मुनि सुखसागरजी महाराज सा० का मुख्य हाथ था। प्रवर्त्तक मुनि कान्तिविजयजी, मुनि चतुरविजयजी और मुनि पुण्यविजयजी की महती प्रेरणा से पं० लालचन्द्रभाई गांधी एतत्कार्य सम्पादनार्थ जैसलमेर पधारे थे। निःसकोच भाव से मुझे कहना चाहिए कि जैसलमेर की अभूतपूर्व साहित्यिक-निध को विद्वज्जन समक्ष उपस्थित करने का यश पं० लालचन्द्र भगवानदास गाधी को ही मिलना चाहिये। अनन्तर मुनि जिनविजयजी और मुनि पुण्यविजयजी द्वारा व्यवस्थित किया जा चुका है।

मुझे यहां बड़े ही परिताप के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि ज्यों-ज्यों ज्ञानागार की प्रतिलेखना होती गई त्यों–त्यों वहां की मूल्यवान् निधि लुप्त होती गई, यहां तक कि काष्ठ–चित्रकला के उत्कृष्ट पट्टिका–चित्र जो यहाँ वर्षो तक सुरक्षित रहे, उनमें से कुछ सदा के लिए चुरा लिए गये। जिनदत्तसूरि, वादीदेवसूरि, त्रिशष्ठिशालाका–पुरुषचरित्र और सोलह विद्यादेवियों की चित्रित पट्टिकाए इनमें मुख्य हैं। इनमें से कुछ आज भी एक अन्वेषक मुनिराज के सग्रह की शोभा है। अपहरण का दौर यहां तक बढ़ा कि सं० १०८६ लेखवाली[1] सिद्धसेन–दिवाकराचार्यगच्छ–संवद्ध प्रतिमा भी वहां से गायब होकर आगमवेत्ता मुनि के संग्रह में पहुँच गई, जब कि वहां के श्रीसंघ ने किसी को वह मूर्त्ति भेंट नही दी थी। विश्वास है भविष्य के अन्वेषकों

---

१. पूरा लेख इस प्रकार है : श्री नागेन्द्रकुले श्रीसिद्धसेनादिवाकराचार्यगच्छे अम्माछुप्ताभ्या कारिता संवत् १०८६ ॥

इस प्रतिमा का चित्र इण्डियन सोसायटी ऑफ दी आर्ट के मुख पत्र वेस्टर्न इण्डियन आर्ट (सन् १९६५–६६) पृष्ठ २५ के सामने प्रकाशित है। प्रतिमा पर विचार व्यक्त करने वाला व्यक्ति जैसलमेर नही गया है, पर इसके अध्ययन की सुविधा देने के लिए मुनि पुण्यविजयजी को धन्यवाद दिया हैं। मूर्त्ति अपहरण का इतिहास एक रहस्य है।

के प्रति वहा का श्रीसघ सतर्क रहेगा, चाहे किसी भी कोटि का शोधक क्यो न हो।

जिनभद्रसूरि का जन्म स० १४४९ मे बताया जाता है, क्षमाकल्याण रचित पट्टावली मे जन्म नाम भादो है, माता-पिता खेतलदे और धोणिग, गोत्र भणसाली। परन्तु स० १५४९ मे प्रतिलिपित और सहज-प्रभ प्रणीत जिनभद्रसूरि रास मे जन्म नाम रामणकुमार और जन्म स्थान मेवाड मे देउलपुर सूचित है।

उन दिनो जिनराजसूरि खरतरगच्छ के विख्यात आचार्य थे। इनकी वैराग्यवसित वाणी से रामणकुमार को सासारिक वासना-वैभव से विमुख कर साधनामय सयममार्ग मे स० १४६१ मे प्रवृत्त किया, और वाचक प्रमुख शीलचन्द्र के समीप अध्ययनार्थ रखा। जिनराजसूरि के पट्टधर शिवादित्य की सप्तपदार्थी और वाग्भट्टालकारवृत्ति के प्रणेता जिनवर्द्धनसूरि स्थापित थे, परन्तु किसी अनिवार्य सयोगवशात् आचार्य सागरचन्द्रसूरि ने इन्हें इस पद योग्य न जान कर तत्स्थान पर कीर्तिसागर को स १४७५ मे आचार्य पद दे जिनभद्रसूरि नाम से अभिहित किया। उन दिनो आचार्य पद का महत्व महान् समझा जाता था। अब जिनभद्रसूरि पर उल्लेखनीय दायित्व-भार आ पडा। यह तो स्पष्ट ही है कि इन्हे आचार्य पद सघर्षमूलक स्थिति मे दिया गया था। इन्होने सघ सचालन, मुनि सघटन आदि समस्याओ को योग्यता के साथ हल किया।

जसलमेरवासी चोपडागोत्रीय सा० हेमराज पूरा आदि ने इनके सदुपदेश से स० १४९४ मे सम्भवजिन-प्रासाद और ग्रन्थागार के योग्य गुप्त भूमिगृह बनवाने प्ररम्भ किए जो स० १४९७ तक तैयार हो गये। आचार्यश्री ने शिल्पकला और भास्कर्ययुक्त सम्भवजिनप्रासाद की प्रतिष्ठा स० १४९७ मे कराई। ३०० प्रतिमाए और भी प्रतिष्ठित की। इस प्रासाद की प्रशस्ति मे जिनभद्रसूरि की प्रशसा स्वतन्त्र गुर्वाष्टक मे की है—

"आप बड़े प्रभावक प्रतिष्ठावान् और प्रतिभाशाली आचार्य थे। सिद्धान्त-विचार-विज्ञ पण्डित इनकी सेवा में रहते थे। उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य और सत्यव्रताचरण के कारण तात्कालिक जनता इन्हें स्थूलिभद्र की उपमा से अभिहित करती थी। इनने अपने सौभाग्य से शासन-गरिमा उद्दीप्त की। गिरनार, चित्रकूट/चित्तौड़ और माण्डव्यपुर/मण्डोवर/मण्डोर आदि अनेक स्थानों में इनके सदुपदेश से परमार्हतों ने विशाल नव्य-भव्य जिनभवन बनवाये[1]। अण-हिलपुर-पत्तन आदि पुस्तक भण्डार स्थापित किए। मण्डपदुर्ग/माण्ढवगढ़, प्रह्लादनपुर/पालनपुर और तलपाटक आदि नगरों में अनेक बिम्ब सविधि प्रतिष्ठित किए। उन्होंने स्वबुद्धि से (समदर्शी आचार्य हरिभद्रसूरि रचित) अनेकान्तजयपताका और (जिनभद्र-गणि क्षमाश्रमण प्रणीत) विशेषावश्यक भाष्य जैसे महान् दर्शन सैद्धान्तिक ग्रन्थरत्नों का अनेक मुनियों को अध्ययन करवाया। ये कर्म्मग्रन्थ और कर्म्मप्रकृति जैसे गहन विषय प्रतिपादक कृतियों के रहस्यों का ऐसा सुंदर, सरल और भावपूर्ण विवेचन करते थे कि जिसे सुनकर अन्य गच्छीय श्रमणवर्ग भी न केवल चमत्कृत होता था, अपितु, इनके इस चिन्तनपूर्ण विवेचन और एतद्विषयक विशद् ज्ञान की प्रशंसा भी करता था। राजल वैरिसिह त्र्यंबकदास जैसे सुशासक नृपति इनके चरणों में नत मस्तक रहते थे। इस प्रकार आचार्य बड़े शान्त, दान्त, सयमी, विद्वान् और सभी प्रकार से योग्य गच्छपति थे।"

विजययंत्र-पट्ट

श्रमण परम्परा में मन्त्रयोग का महत्व रहा है। जैन परिभापा-नुसार यह पदस्थ ध्यान का एक अंग है। तन्त्र मन्त्र और यन्त्र का इस योग में समावेश होता है। एक समय था जब भारत मे इस विद्या का

---

१ यह रावल लक्ष्मणदास के उत्तराधिकारी थे। इनने लक्ष्मीकान्त प्रीत्यर्थ पंचायतन प्रासाद बनवाया था, जैसा कि भाण्डारकर की दूसरी रिपोर्ट से सिद्ध है।

प्रामुख्य था। आध्यात्मनिष्ठ और पारलौकिक चिन्तन मे अनुरक्त श्रमण-परम्परा भी इस प्रभाव से अपने को सुरक्षित न रख सकी, प्रत्युत प्रचुर मान्त्रिक साहित्य का प्रणयन हुआ। कल्प, तन्त्र, पद्धति, बीजकाश और मार्ग जैसे विपयो मे विभक्त हो गया। जिनभद्रसूरि के समय मे यह विद्या उन्नति की चरम सीमा पर थी सूरिमन्त्र और वद्धमान विद्या-कल्प लगभग इस समय या इससे कुछ पूर्वकालिक ही हैं। इनके आधार पर कालान्तर मे स्वतन्त्र पट भी सयोजित होने लगे। स्व० मोहनलाल देसाई ने स० १९८४ मे अनुसन्धान-यात्रा मे ऐसा ही एक भव्य विजय-यन्त्र खेडा मे प० भाग्यरत्न के पास देखा था, जिस पर निम्नोक्त लेख अकित था—

> सवत् १५०५ वर्षे दीपोत्सवदिने लिखित प्रतिष्ठित श्रीखरतर-गच्छाधीश्वर श्रीजिनभद्रसूरिभिद जेत्रपताकायन्त्र सपरिवारस्य जैत्र वाछित सिद्ध कुरु कुरु स्वाहा

आजकल यह मूल्यवान् पट लदन के सग्रहालय मे है।

जिनभद्रसूरि के प्रखर वैदुष्यानुकूल कोई गम्भीर रचना उपलब्ध नही है। इसका कारण एकमात्र यही कल्प्य है कि वे जीवन भर ज्ञाना-गारो की सस्थापना और तन्निमित्त प्रतिलिपित प्रतियों के सशोधन[1]-परिमार्जन मे ही सलग्न रहे। शिष्य-परिवार को पढाने मे व्यस्त रहे तथापि जिनसत्तरीप्रकरण जैसी इनकी रचना प्राप्त है—

> गणहरसुहम्मवसे कमेण जिणरायसूरिसीसेहिं
> पयरणमिण हियट्ठ रइय जिणभद्दसूरिहिं

सदेहदोहावलीवृत्तिका शोधन भी इन्होने किया था—

> जैनन्द्रागमतत्ववेदिभिरभिरभिप्रेतार्थकल्पद्रुमि
> सद्भि श्रीजिनभद्रसूरिभिरिय वृत्तिर्विशुद्धीकृता

---

१ अनेक प्रशस्तियों के अन्त में स्वय द्वारा प्रतिशोधन के सकेत प्राप्त हैं।

जिनभद्रसूरि के गुरुबंधु, विज्ञप्तित्रिवेणि, पर्वरत्नावली, पृथ्वीचन्द्र-चरित्र (सं० १५०३ पालणपुर में) सन्देहदोहावलीलघुटीका, उपसर्ग-हरस्तोत्रवृत्ति, भावारिवारणवृत्ति, जिनकुशलचतुष्पदिका आदि स्फुट विविध स्तोत्र और चैत्यप्रवाडियों के प्रणेता तथा प्रतिलिपित प्रतियों के संशोधक उपाध्याय जयसागर; सं० १५७६ में जिनभद्रसूरि के पास दीक्षित, उत्तराध्ययनसूत्र-सर्वार्थसिद्धिवृत्ति निर्माता, अनेक स्वर्णाक्षरी प्रतियों के प्रलेखक या प्रोत्साहक कमलसंयमोपाध्याय[1] आदि सशक्त पारिवारिक थे। इन्हीं उपाध्याय ने जिनभद्रसूरि के चरण-पादुका राजगृही के वैभारगिरि पर्वत पर सं० १५२४ में स्थापित किए, (नाहर भाग २, लेखांक २५७)। जिनभद्रसूरि की एक प्रतिमा भी राजस्थानप्रदेशान्तर्गत खेड़गढ के समीप नगर गांव में मन्दिर के भूमिगृह में सुरक्षित है। प्रतिष्ठा काल १५१८ है।

जिनभद्रसूरि के ज्ञात प्रतिमा लेखों की ओर संकेत करने के पूर्व सूचित करना आवश्यक है कि इनके समय की प्रतिलिपित प्रतियें इतनी अधिक हैं कि सभी का स्वतंत्र उल्लेख असम्भव है। तत्परिचयार्थ मुनि जिनविजयजी सम्पादित जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, देशविर० प्रशस्ति-संग्रह, मुनि पुण्यविजयजी सकलित सूचिपत्र, जैसलमेर-सूचिपत्रादि दृष्टव्य हैं।

इनके ज्ञात प्रतिलेखों का प्रकाशन यहां किया जा रहा है—सं० १५०१–१०। अतिरिक्त प्रतिमा लेख नाहटा[2]—१४७९–८०–८४–८८–९३–

---

१. यह भी एक संयोग की बात है कि इसी समय खरतरपिप्लीयशाखीय जिनहर्षसूरि के शिष्य कमलसंयम उपाध्याय भी हुए है। यह भी साहित्य प्रणेता और उत्कृष्ट विद्वान् थे। विशेष के लिए दृष्टव्य है—विज्ञप्ति-त्रिवेणि, पृष्ठ ६८

२. संग्रहस्थ संख्या २६३३–४२–४३–४४ की प्रतिमाओं के प्रतिष्ठाता जिनभद्र-सूरि है और संख्या २६२३ में सं० १४७३ प्रयुक्त है, जबकि इन्हे आचार्य पद ही सं० १४७५ में प्राप्त हुआ था, सभव है पठन दोष का परि-णाम हो,

९६–९७–९८,–१५०१–२–५–६–७–९–१०–१२–१३, यतीन्द्रविजय—१४७९–९३–१५०५–१०, मुनि विशालविजय १५०९, बुद्धिसागरसूरि—भाग १, १४७९–१५०५–१२, भाग २, १५०५–९–१२, मुनि विद्याविजय—१४८९, मुनि कान्तिसागर—१४९२–१५११–१२–१३, विनयसागर—१४८४–८९–९०–९३ (सख्या ३३७),१५०३–४–५–६–७–१०–१२–१३, नाहर भाग १, १४७९–८४–९५–९७, १५०३–४–७–९–११–१२–१५, भाग २, १४८२–९–३९, १५०३–७–९–११[1], भाग ३, १४७९–८४–८७–९३–९४–९७—१५०३–५–७–९–१०–११–१३–२८[2], जैन सत्यप्रकाश वर्ष ६ पृष्ठ १८३–१५०७, वही वर्ष ८, पृष्ठ ३२, १५१३ पृष्ठ १४१, १५०६ पृष्ठ ३०३, १४७९–१५०७, वही वर्ष १६ पृष्ठ १०१–१४९७ आदि लेख सग्रहो के अतिरिक्त जैसलमेर सूची मे भी पाये जाते है।

(४२) जिनमहेन्द्रसूरि—(लेखाक ३१३) खरतरगच्छीय (मण्डोवरशाखा)

मण्डोवरशाखा के उद्भावक महाशासनप्रभावक आचार्य प्रतिष्ठा-कार्यकुशल और शिल्पशास्त्र के विशिष्ट् विद्वान् थे। इनके पूर्वकालिक जीवन का परिचय केवल इतना ही प्राप्त है कि वह रघुनाथ की धर्मपत्नी सुदरादेवी की रत्नकुक्षि से जन्मे थे। परन्तु जिनमहेन्द्रसूरि का आचार्यत्व-काल यशस्वी रहा है। इन्हे तात्कालिक राजस्थान के मुख्य राज्यो द्वारा प्राप्त प्रशसापत्रो से विदित होता है कि अपने सयम और साधना के बल पर केवल जैन सघ पर ही इनका प्रभाव नही था, अपितु राजा-महाराजा भी सम्मान की दृष्टि से देखते थे और सुदूरवर्त्ती विहार आदि की सुव्यवस्था करते थे। उदयपुर के महाराणा जवानसिंह, जैसलमेर के महारावल गजसिह, इन्दौर के तुकोजीराव होल्कर और बीकानेर के रत्नसिंह और महाराजकुमार सरदारसिह आदि के पर्वाने प्राप्त हैं। स० १८९७ जेठ कृष्णा २ शुक्रवार को लिखे आज्ञापत्र से स्पष्ट है कि

---

१ नाहर सख्या १०१० का इनका लेख सं० १५१७ का छपा है जबकि स० १५१४ मार्गशीर्ष कृष्णा ९ को स्वर्गस्थ हो चुके थे।

२ यह सवत् भी सदेहात्मक है सभव है पठनदोष हो।

जैसलमेर के महारावल गजसिंह ने कर्नल जोन सदरलेन को इनकी पूर्व और दक्षिण देश की यात्रा के समुचित प्रवध की सूचना दी है। इनके अतिरिक्त फारसी में लिखे अनेक पत्र बम्बई के सेठ जयन्तीलाल रतनचद मोतीशाह के सग्रह में हैं।

मोतीशाह सेठ और जिनमहेन्द्रसूरि

नररत्न मोतीशाह का जीवन चरित्र स्व० मोतीचंदभाई गिरधरलाल कापडिया ने लिखा[1] है, पर न जाने क्यों किस व्यामोह के कारण उसे पूर्णतया न्याय नही दे सके हैं। इतिहासकार को तो निष्पक्षभाव से सत्यवस्तु उपस्थित करनी हो चाहिए। अस्तु, उपर्युक्त कृति में मोतीचन्दभाई ने सेठ मोतीशाह का इतिहास साकरचंद से प्रारम्भ किया है। बताया है वह खंभात में निवास करते थे, वस्तुतः उनके पूर्वज ईसरू (राज०) के निवासी और स्थानीय ठिकानेदार के कामदार थे। इनके पूर्वजों के नाम जयपुर के श्रीपूज्यजी के दफ्तर में इस प्रकार अंकित हैं—

> नाहटागोत्रे सा० धनराज-महराज-केसरीचंद-रायचंद-सोमल-देवचंद-मायाचंद-साकरचंद-अमीचंद और मोतीशाह[2]।

गुलाबचन्द[3] और नेमचन्द मोतीशाह के बडे भाई थे। इनकी माता रूपकुँवरबाई लोक परिवार की और दहिणोक निवासिनी थी।

मोतीशाह सेठ खरतरगच्छ के परम अनुयायी और दादा श्रीजिनदत्तसूरि के परम भक्त थे। बम्बई में व्यापार कौशल के कारण इनने पर्याप्त धनार्जन किया। बम्बई की तात्कालिक सभी धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में इनका सर्वाधिक योग रहा हैं। कहने की आवश्य-

---

१. प्रकाशक श्रीगोडीजी जैन देहरासर, बम्वई,

२. जैन सत्यप्रकाश वर्ष ५ पृष्ठ ३०९

३. सेठ मोतीशाह (पृष्ठ २१) के लेखक ने तृतीय पुत्र का नाम देवचंद लिखा है।

कता नही कि इनकी समस्त चेतना के मुख्य सूत्रधार थे आचार्य जिनमहेन्द्रसूरि, क्योकि इनके प्रति सेठ सा० की अपूर्व श्रद्धा थी। बम्बई के भायखला मे दादावाटी का निर्माण तो सेठ मोतीशाह ने पहिले ही करवा दिया था, पर जिनमहेन्द्रसूरि ने इन्हे वहा विशाल जन प्रासाद बनवाने की प्रेरणा दी और श्रद्धासिक्त हृदय ने गुरुदेव की वाणी को साकार करने मे विलम्ब नही किया। पालीताणा के विख्यात शिल्पी और महुआ के महावीर स्वामी-मन्दिर के प्रधान शिल्पी रामजीभाई लाधाराम के नेतृत्व मे भायखला मे प्रासाद निर्माणार्थ कलाकार जुट गये। शिल्पी ने मन्दिर निर्माण मे इस बात का विशेष ध्यान रखा कि इसमे शास्त्रीय शुद्धि की पूर्णतया रक्षा हो, कारण कि रामजी भाई न केवल सर्वांगशिल्पशास्त्र के ही निपुण विद्वान् थे, अपितु, घरानो मे प्रचलित शैल्पिक-प्रादेशिक परम्पराओ से भी सुपरिचित थे। यही कारण है कि भायखला का मन्दिर शिल्प शास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा शुद्ध और निर्दोष बन पाया। मोतीशाह की हार्दिक आकाक्षा थी कि मन्दिर मे मूलनायक के रूप मे कोई प्राचीन प्रतिमा विराजमान की जाय। फलत इन्हे अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्रसूरि द्वारा स० १६६२ मे प्रतिष्ठित प्रतिमा मिल गई और स० १८८५ मे आचार्य जिनमहेन्द्रसूरि के करकमलो द्वारा आदिनाथ प्रभु को स्थापित किया[1]। प्रतिष्ठा के पावन प्रसगानन्तर तो सेठ मोतीशाह का आर्थिक विकास चरम सीमा पर पहुँच गया और साथ ही धर्म भावना भी सर्वोच्च शिखर पर पहुँची। लालबाग-उपाश्रय, पशुशाला, धर्मशाला, आगासी का जन मन्दिर आदि अनेक धार्मिक सुकृत्य जिनमहेन्द्रसूरि के सदुपदेश के ही परिणाम हैं।

सेठ मोतीशाह की धार्मिक आकाक्षाए महान् थी। वे गिरिराज पर भी एक जैनश्रमतिटूंक बनवाना चाहते थे। आचार्य द्वारा समर्थन मिलने पर रामजीभाई लाधाराम को एतदर्थ नियुक्त किया। पर समस्या

---

१ इसके सभामण्डप मे भगवान् आदिनाथ जी के मुख्य जीवन प्रसगो का पट्ट अतिभव्य है। उस युग की कला का सफल प्रतिनिधित्व इन आलेखनो द्वारा होता है। आज भी वे इतने स्पष्ट हैं और दर्शनीय हैं कि जैसे अद्यतन हो।

थी समुचित स्थान की। वर्षों के प्रयत्नों के वाद भी पूर्ण न होने वाला गर्त्त गड्ढ़ा कुंतासर ही एकमात्र उपयुक्त स्थान दृष्टिगत हुआ। वही रामजी भाई ने पसंद किया। परन्तु अहमदाबाद के प्रमुख धनिकों को उपहासास्पद प्रतीत हुआ। वे इसे भरना असभव समझ बैठे थे। परन्तु ज्ञान और अनुभववृद्ध कुशल कलाकार रामजीभाई ने असंभव को संभव ही नहीं बनाया, अपितु, गहरा गर्त्त भर कर तदुपरि विशाल प्रासाद बना दिया। इसकी प्रतिष्ठा में तो सेठ सम्मिलित नहीं हो सके थे। सं० १८९२ में ही कालकवलित हो गये। पर मोतीशाह सेठ के उत्साही सुपुत्र खीमचन्दभाई ने सं० १९०३ में प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न किया। मुख्य प्रतिष्ठापक थे उनके गच्छनायक जिनमहेन्द्रसूरि, जैसा कि प्रतिमाजी के लेख से स्पष्ट है। इस अंजनशलाका में कई शत बिम्ब थे।

इस प्रतिष्ठा कार्य के पूर्व पालीताणा में सेठ मोतीशाह ने विशाल धर्मशाला भो सं० १८८५ में निर्मित की थी। गिरिराज के भण्डारों की जो चाबियां आणदजी कल्याणजी की पीढ़ी में रहती थीं उनमें से एक मोतीशाह-धर्मशाला के मुनीम के पास रहा करती थी। मोतीशाह जयपुर ठिकाने के अनुयायी होने के कारण जिनमहेन्द्रसूरि के प्रति अति आस्था रखते थे।

बाफणा-परिवार और जिनमहेन्द्रसूरि

जैसलमेर का बाफणा-परिवार जैन संस्कृति का पोषक और प्रवर्द्धक था। देवराजजी के पुत्र गुमानचंद जी और पौत्र बहादरमलजी, सवाई-रामजी, मगनीरामजी, जोरावरमलजी, और प्रतापचंदजी आदि परिवार ने सम्मिलित होकर आचार्य श्रीजिनमहेन्द्रसूरि के सदुपदेश से जैसलमेर से (स० १९९१) सिद्धाचलजी का विराट् यात्रा-संघ निकाला था[1]। श्री संघ ने डेढ़ माह तक यहाँ रह कर अनेक महत्वपूर्ण धार्मिक कृत्य सम्पादित किये थे उनमें खरतर-वसहिक के शिखर का जीर्णोद्धार और मुख्य प्रासाद के प्रवेश द्वारा के दोनों ओर चक्रेश्वरी और गौमुखयक्ष की

---

१ इस संघ-यात्रा का पूर्ण विवरण जैन साहित्य संशोधक वर्ष १, अंक १ पृष्ठ १०८ पर प्रकाशित है,

प्रतिमा स्थापन भी सम्मिलित है। इस अवसर पर मूलनायक जी के भण्डार पर तीन ताले गुजरातियो के लगते थे और चौथा ताला सघपति ने अपना लगाया था जिसकी चावी वर्षो तक पालीताणा के अधिकारी यतिजी के पास रही। अमरसागर (जैसलमेर) मे बाफणा परिवार द्वारा निर्मित मन्दिरो की प्रतिष्ठा भी जिनमहेन्द्रसूरि के करकमलो से हुई।

जिनमहेन्द्रसूरि के स्व-रचित कोई ग्रन्थ उपलब्ध नही है। परन्तु उन्हे पुस्तक सग्रह का व्यसन था। एतदर्थ अनेक प्रतिलिपिको द्वारा सैद्धान्तिक विषय के शताधिक ग्रन्थ लिखवाये। बाफणा-परिवार का इसमे मुख्य योग था। उदयपुर के बाफणा-परिवार मे मैंने ऐसे दो सौ से अधिक ग्रन्थ देखे थे। कुछ मेरे सग्रह मे सुरक्षित हैं। जिनमहेन्द्रसूरि कब तक जिनशासन की प्रभावना करते रहे ? नही कहा जा सकता। परन्तु स० १९१८ के भरतपुर के खरतरगच्छ के उपाश्रयलेख मे जिनमुक्तिसूरि का नाम आया है, यह इनके उत्तराधिकारी थे। प्रकाशित लेख के अतिरिक्त अन्य लेख जैन सत्यप्रकाश वर्ष २० पृष्ठ १६७ पर १७९३-१९१० प्राप्त है।

(४३) जिनरत्नसूरि—(लेखाक ३२१) धर्मघोशगच्छीय (पासमूर्त्तिसूरि पट्टे)

प्रतिमा का परिकर खण्डित होने से लेख भी सुरक्षित नही रह सका है। सूचित दोनो आचार्यो का लेख किसी सग्रह मे दृष्टिगोचर नही हुआ।

(४४) जिनरत्नसूरि—(लेखाक ६६-१३४) वृद्धतपागच्छीय

आचार्य जिनरत्नसूरि के लेखो के निरीक्षण से ज्ञात हुआ कि वह अपने को वृद्धतपागच्छीय सूचित करते है। केवल स० १४२२ का एक लेख ऐसा मिला जिसमे पूर्व के दो आचार्यो का उल्लेख है। वे हैं जयतिलकसूरि और जयशेखरसूरि, (नाहटा-सग्रह लेखाक १६०८) इससे स्पष्ट है कि जिनरत्नसूरि आचार्य जयशेखरसूरि के पट्टधर थे। इस तथ्य क समथन मे १५१८ मे स्वय द्वारा प्रतिलिपित सूरिमन्त्रकल्प की

प्रति (पुण्यविजयजी–प्रशस्ति–संग्रह पृष्ठ २७२) तथा सं० १५९० की पर्यन्तराधना की लिखित कृति (पुण्य० प्रश० पृष्ठ ४७) उपस्थित की जा सकती है। मुझे यहां उपर्युक्त प्रमाणों की ओर इस लिए संकेत करना पड़ा कि स्व० मोहनलालभाई देसाई सम्पादित जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ ६६–६७ पर संवेगसुंदर रचित सार शिखामण (रचनाकाल स० १५४८) में विवेच्य आचार्यों को जिनसुदरसूरि का पट्टधर बताया है। यथा—

> वड़तपगच्छ गयणांगणि सूरि जेह वाणी गंगाजल पूरि
> श्रीजयसेहरसूरिवरो
> तास पाट दीपइं गुण भूरि गदपति श्रीजिनसुदरसूरि
> तपि-जपि निरमल गणधरुए
> तास पाटि पुहवि गुरु गुणनिधि जहनइ नासइ लहीइ सवि सिधि
> श्रीजिनरयणसुंरिंद वरो

उद्धरण के विपरीत सं० १५४८ में प्रतिलिपित श्राद्धप्रतिक्रमण स्तबक की पुष्पिका है जिसमें जिनसुंदरसूरि के पट्टधर जिनसाधुसूरि का उल्लेख है। कालिक दृष्ट्या स्पष्टतः जिनसुंदरसूरि जिनरत्नसूरि के परवर्त्ती ठहरते। वस्तुतः आलोच्याचार्य जयशेखरसूरि के ही पट्टधर थे। एक और विस्मय की बात है कि देसाई महोदय ने अपनी इसी मूल्यवान् कति के तीसरे भाग में (पृष्ठ ५०२–३) पर सवेगसुदरकवि के सं० १५२६ वाले लेख पर अपना अभिमत व्यक्त किया है कि ये जयचन्द्रसूरि-शिष्य जिनसूरि के अन्तेवासी थे, जयसुंदर के शिष्य थे। जबकि होना चाहिए जयशेखरसूरि, जिनसूरि; इसे जिनरत्न का सक्षिप्त नाम मान लिया जाना चाहिए। इनके सुंदरान्त शब्द-नाम वाले शिष्यों में साधुसुन्दर (प्रशस्ति संग्रह पृष्ठ ५०) और हेमसुन्दर (बुद्धिसागरसूरि भाग २ लेखांक ५०७) के उल्लेख मिलते हैं।

जिनरत्नसूरि का वैयक्तिक परिचय अप्राप्त है। इनके किसी अज्ञात शिष्य ने सं० १५३२ के लगभग मंगलकलश रास का प्रणयन किया, इसमें जिनरत्नसूरि का स्मरण किया है—

वड तपगच्छ केरो शृगार श्रीजिनरत्नसूरि सुगुरु उदार

—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ४९०

इनके प्रतिमा लेख स० १५०३ से ५१ तक के मिलते है। स० १५०३-१५१२-२३ इस सग्रह मे हैं। शेष यतीन्द्रविजय १५२२, मुनि विशालविजय १५०३-१७-१८-२१-३५, मुनि जयन्तविजय अ०प्र० १५३५, बुद्धिसागरसूरि भाग २, १५१४-२५-२७, मुनि विद्याविजय १५१३-१७-२२-२६-३४-३६, विनयसागर १५३२, नाहर भाग १, १५२७-३२, भाग २, १५०३-३६-४१, नाहटा १४०७-२२, मुनि कान्तिसागर १५५१ आदि सग्रहो मे पाये जाते हैं।

(४५) जिनराजसूरि—(लेखाक ३२२) खरतरगच्छीय

सकेतित लेख मे प्रतिष्ठाता आचार्य ने सवत् का सूचन नही किया है। केवल जिनराजसूरि पट्टे जिनचन्द्रसूरि का ही नाम है। खरतरगच्छ की प्राप्त पट्टावलियों मे जिनराजसूरि नामक दो आचार्यो का उल्लेख प्राप्त है और जिनचन्द्रसूरि तो लगभग प्रति तृतीय पाट पर होते रहे है। परन्तु यहा विवक्षित जिनराजसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि नही थे। प्रथम जिनराजसूरि जिनोदयसूरि के पाटवी थे। स० १४३३ फाल्गुन कृष्णा ६ को लोकहिताचार्य ने इन्हे जिनोदयसूरि के पट्ट पर स्थापित किया। स० १४४४ मे इनने चित्रकूट/चित्तौड मे आदिनाथ बिम्ब की प्रतिष्ठा की। तात्कालिक न्यायशास्त्र विशारदो मे इनकी परिगणना की जाती थी। सवा लक्ष पद्यप्रमाण न्यायशास्त्र के ये अध्येता थे। मेवाड के सास्कृतिक विकास मे इनका उल्लेखनीय योग रहा है। स० १४६१ मेद-पाटीय देवकुलपाटक/दिलवाडा मे इनका स्वर्गवास हुआ और वही पर इनके पट्टधर जिनवर्द्धनसूरि ने स० १४६९ मे इनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की। भारतीय पत्र-लेखन साहित्य मे ये सदैव स्मरणीय रहेगे। परन्तु इनके प्रथम पट्टधर जिनवर्द्धनसूरि और द्वितीय जिनभद्रसूरि थे, जिनचन्द्रसूरि कभी इनके पट्धर नही रहे, अत सकेतित लेख से इनका सबध नही है।

दूसरे जिनराजसूरि अकब्बर प्रतिबोधक जिनचन्द्रसूरि-जिनसिंहसूरि के पट्टदीपक थे। सं० १६४७ में जन्मे, स० १६५७ में संयम स्वीकार किया, सं० १६७४ मेड़ता में आचार्य पद मिला। न्याय (इस शास्त्र का अध्ययन आगरा के किसी बंगीय विद्वान् से किया था), काव्य, कोश और अलंकार आदि लाक्षणिक साहित्य पर इनका अद्भुत अधिकार था। नैषधकाव्य की छत्तीसहजारीवृत्ति में इनके पाण्डित्य का सम्यक् परिपाक दृष्टिगोचर होता है। राजस्थानी साहित्य के तो यह सफल सर्जक थे ही। मस्त योगी और निष्पक्ष सक्षम आलोचक ज्ञानसागरजी ने इन्हें अवध्यवचनी की अर्थपूर्ण संज्ञा से अभिहित किया है। इनने भी सहस्त्रों हस्तलिखित प्रतियें लिखवाकर ज्ञानागारों को समृद्ध किया और जैसलमेर निवासो थिरूशा जैसे श्रावक को न केवल साहित्य की दीक्षा दी थी, अपितु, उन्हें ज्ञान का महान् साधक बना दिया। इनका स्वतन्त्र संग्रह आज भी जैसलमेर में सुरक्षित है। भणशाली थिरूशा द्वारा समुद्धृत लोद्रवास्थित चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की, एतत्सम्बन्धी लेखों का संकलन जैसलमेर सूची के परिशिष्टों में किया गया है। गिरिराज (शत्रुंजय) पर अहमदाबाद वासी शिवा सोमजी द्वारा समुद्धृत खरतर-वसही की प्रतिष्ठा इनके कर कमलों से सं० १६७५ में सम्पन्न हुई[1]। इनकी सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कृति है शालिभद्र चतुष्पदिका, जिसे शाही परिवार के सक्षम चित्रकार शालिवाहन द्वारा चित्रित करवाया था, और

---

१. भ्रमवश कतिपय विज्ञ यह मानते हैं कि इस समय इस टूँक का निर्माण हुआ। तथ्य तो यह है कि इसका विकास विक्रम की पन्द्रहवी पूर्व ही हो चुका था। जैसा कि तत्रस्थित सिंहासन के अनेक लेखों से स्पष्ट है। इनकी सुरक्षा पर ध्यान देना अनिवार्य है, वर्ना असुन्दर समझ कर कभी भी नष्ट किया जा सकता है।

लावण्यकीर्त्ति[1] ने उसे प्रतिलिपित किया। उनकी अन्य देश्यभाषा विषयक रचनाओ का सामूहिक प्रकाशन बीकानेर के सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टिट्यूट ने जिनराजसूरि-कृति-कुसुमाजलि नाम से किया है। इन रचनाओ के अतिरिक्त अनेक स्फुट औपदेशिक अज्ञात पदो का, ज्ञानमेरु और लावण्यकीर्त्ति द्वारा प्रतिलिपित गुटका मेरे सग्रह मे सुरक्षित

---

१ नि सन्देह लावण्यकीर्त्ति स्पृहणीय सुलेखक थे। ये ज्ञाननन्दि के विनेय और भुवनकीर्त्ति के गुरुवन्धु थे। साहित्यिक रचनाए भी साथ-साथ करते थे। भुवनकीर्त्ति की अज्ञात स्फुट रचनाए मेरे सग्रहस्थ एक गुटके मे है जो लावण्यकीर्त्ति द्वारा प्रतिलिपित है। इनकी एक मात्र स्वतन्त्र रचना का उल्लेख स्व० मोहनलाल भाई ने किया है, और वह है रामकृष्ण चौ०, बधुद्वय की पार्श्वनाथधवल। अज्ञात रचना का अन्तिम भाग दृष्टव्य है—

विहु लोक सुलभ जाणि परतखि भुवन की रति गणि भणइ
गुरु ग्याननदि पसाय पामि हरप ही यडइ अति घणई

\+ \+ \+ \+

सुभ वरिस धन पद रमणि भवनइ सरस राज वधामणा
वदि जेठ तेरसि सुद्ध दिवसइ सबल खरतरगच्छ धणी
जुगपवर श्रीजिनसिंहगुरुनइ धमराजइ मुप भणी ५२

कलश

इम नयर जैसलमेरु मडण पास जिण सोभ निलउ
श्रीमल्ल सुत थिरराज कथनइ थुण्यउ तसु वीवीहलउ
गुरु ग्याननदि पसाय पामी भुवनकीरति गणिवरइ
लावण्यकीरति बधुसगइ सुमति पामी सुभ परइ ५३

इति श्री पार्श्वनाथधवल सवलसौभाग्योदयाय

है[1]। इनकी विद्वन्मान्य शिष्य-परम्परा ने श्रमण-संस्कृति के गौरव के अनुरूप साहित्यिक रचनाएं कर माता शारदा के चरणों में पुष्पांजलि समर्पित की।

जिनराजसूरि के पट्टधर भी जिनरत्नसूरि थे, तात्पर्य कि दोनों ही जिनराजसूरि के प्रपट्टधर ही जिनचन्द्रसूरि थे, पट्टधर नहीं। विवक्षित लेख का सम्बन्ध मेरी विनम्र सम्मत्यानुसार द्वितीय जिनराजसूरि प्रपट्टधर से होना चाहिए। कारण प्रतिमोत्कीर्ण लेख की लिपि को प्रथम जिनराज-सूरि-काल तक नहीं ले जाया जा सकता। फिर भी कालिक समस्या तो है ही। इसका समाधान तो तब ही संभव हो सकता है जब प्रतिमा निर्मापक का परिचय प्राप्त हो।

(४६) जिनसमुद्रसूरि (लेखांक २३४) खरतरगच्छीय

यह आचार्य जिनचन्द्रसूरि (जिनभद्रसूरि के पट्टधर) के पट्टधर थे। इस गच्छ में बेगड़शाखीय और भर्तृहरि-शतकत्रय एवम् रघुवंश-वृत्तिकार आदि कई आचार्य हो गये हैं। इनका जन्म वाग्भट्मेरु/वाहड़मेरु निवासी पारख गोत्रीय देकोशाह की पत्नी देवलदे की कुक्षि से १५०६ में हुआ था। शिक्षा, संस्कृति और धर्म की दृष्टि से उन दिनों बाड़मेर बहुत आगे था। मुनियों के सतत विहार के कारण ही यहां अनाकांक्षी श्रमणों ने स्वाध्यायार्थ सुन्दर हस्तलिखित पुस्तकों का ज्ञानमंदिर

---

१. संवत् १६७२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि २ शुभयोगे गणधरगोत्रीयपवित्रयः श्रीकम० श्रीपाल पुत्र सं० जैत्रसिह पुत्ररत्न चिरं० पद्मसिहेन लिखितः स्ववाचनायः।

यह गुटका जैसलमेर में ही प्रतिलिपित किया गया है। इसमें तन्त्रस्थ जिनेश्वरदेवों के संस्कृत और लोकभाषा में गुम्फित अनेक नूतन स्तोत्र लावण्यकीर्त्ति और ज्ञानमेरु द्वारा आलेखित है। ज्ञानमेरु सुलेख थे, इनके द्वारा सं० १६८० में प्रतिलिपित साध्वी मानसिद्धि-पद्मसिद्धि, और पुण्यसिद्धि (तीनों ही गणिनी थी) के लिए गणधरसार्द्धशतक-प्रकरण स्तवक मेरे संग्रह में सुरक्षित है, इसके दोनों ओर के (पुट्ठे) सुशोभन उत्कृष्ट कला के परिचायक है।

स्थापित किया था। कतिपय पुरातन काष्ट-पट्टिकाएं भी ऐसी थी जिन पर सुन्दर रगीन चित्र अकित थे। पर महत्वाकाक्षी एक मुनि द्वारा अपहृत होकर वह आज व्यक्तिगत सग्रह की सुषमा वढा रही हैं।

स० १५२१ मे सयम ग्रहण किया, कुलवर्द्धन नाम दिया और स० १५३३ मे समारोह के साथ जिनचन्द्रसूरि ने इन्हे आचार्य पद पर स्थापित कर जिनसमुद्रसूरि नाम से प्रसिद्ध किया। स० १५३६ मे अष्टापद-प्रासाद की प्रतिष्ठा जैसलमेर मे हुई थी जिसका पूरा श्रेय इन्ही आचार्य को है, स० १५५५ मे स्वर्गवास हुआ।

इनके शिष्य कल्याणतिलक ने स० १५५० के लगभग मृगापुत्रसधि का जैसलमेर मे मृजन किया था (जैन गूर्जर कविओ, भाग पृष्ठ ५१९)। इनके एक अन्य शिष्य कल्याण-तिलक गणि ने कालक कथा की रचना की और, उसी पर स्वयमेव वालाववोध भी लिखा—

अप्परुइ सीसहेउ कय कहाणयमिण समासेण
सिरिजिणसमुद्दसुहगुरुसीसकल्याणतिलएण

प्रस्तुत सग्रह के स० १५४४ के अतिरिक्त इनके अन्य प्रतिमालेख नाहटा १५३४-३६, ४९, नाहर भाग १, १५३६-३७-४८-५१-५३, भाग २, १५५३-५५, भाग ३, १५३६-३७, विनयसागर १५३५-३७-५५, विद्याविजय १५४३[1], विशालविजय १५३६।

---

१ यह लेख सुकोशल मुनि कीर्त्तिधर मुनि वाघिन तथा तत्सयुक्त मूर्त्ति पर उत्कीर्णित है। नीरव शान्ति और समभाव का ऐसा भव्य प्रतीक अन्यत्र दुर्लभ है। आज से तीस वर्ष पूर्व मेरे ज्येष्ठ गुरुवन्धु मुनिवर मगलसागर जी महाराज सा० ने देखा था और कूडे-कचरे से निकलवा कर सुरक्षित स्थान पर रखवाने को तात्कालिक अधिकारियों को प्रेरित किया था। इस पर स० १५४३ लेख महाराणा रायमल के समय का अकित है। साथ ही इन मुनियो के प्राकृत तथा सस्कृत भाषा मे भावपूर्ण परिचय तक्षित हैं। स० १७४८ मे कवि खेतल-खेता द्वारा रचित चित्तौड की गजल मे इस प्रतिमा पुज का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि यह मूर्त्ति शताब्दियो से आकर्षण का केन्द्र वनी हुई है।

मुनि कान्तिसागर—फार्व्स गुजराती सभा-त्रैमासिक व० ५ अ० ४ पृष्ठ ४५२

(४७) जिनसागरसूरि—(लेखांक ७६–९१) खरतरगच्छीय (पिप्पलीय)

खरतरगच्छ की पट्टावलियों में इस नाम के दो आचार्यों का पता चलता है। प्रथम पिप्पलीय शाखोद्भावक जिनवर्द्धनसूरि के प्रपट्टधर और जिनचन्द्रसूरि के पट्पगौरव थे जिनका अस्तित्व समय पन्द्रह-सोलहवीं शती रहा है और द्वितीय जिनसागरसूरि सत्रहवीं शती प्रभावक सूरि थे, दोनों ही अपने अपने क्षेत्रों में महत्वपूर्ण शासन सेवा के कार्यों से यशार्जित हुए है।

आलोच्य पिप्पलीय जिनसागरसूरि (प्रथम) के वैयक्तिक जीवनपट को आलोकित करने वाले ऐतिहासिक साधन अनुपलब्ध हैं, परन्तु पट्टावलियों से इतना ज्ञात है कि इनने चौरासी प्रतिष्ठाएं करवाई थीं। इनका स्तूप कुछ कालपूर्व अहमदाबाद में विख्यात था। राजस्थान के महान् पुरातन साहित्योद्धारक जिनप्रभसूरि के यह समकालिक आचार्य थे। बाबू पूर्णचन्द्र नाहर लेख संग्रह भाग द्वितीय में कुछ ऐसे प्रतिष्ठा लेख पाये गये हैं जिनमें दोनों के नाम उत्कीर्णित है। सम्भव है कि शाखाभेद के बावजूद भी सौजन्यवश दोनों आचार्यों ने संयुक्त प्रतिष्ठा करवाई हो।

पूर्व प्रसंग में संसूचित है कि जिनवर्द्धनसूरि, सागरचन्द्राचार्य के पट्टपरिवर्त्तनमूलक षड्यन्त्र के शिकार हुए थे। इसी कारण उन्हें अपने जीवन के बहुमूल्य क्षण चित्रकूट/चित्तौड़ मण्डलान्तर्गत पीपलिया ग्राम में व्यतीत करने पड़े। इसी से पंचम गच्छभेद से इस शाखा का जन्म हुआ। इस परम्परा का मेदपाट/मेवाड़ में सर्वाधिक प्रभाव था। यों तो प्रारम्भिक काल से ही इस प्रदेश की जैन जनता सुविहित खरतरगच्छ के प्रति अति आस्थावान् रही है, पर जिनवर्द्धनसूरि के निवास काल में उनकी श्रद्धा और भी पुष्ट हो गई थी। योगिनीपुर/जावर, नागहृद/नागदा, देवकुलपाटक/देलवाडा से प्रतिष्ठा लेख और तद्गच्छीय आचार्यों की प्राप्त प्रतिमाएं उपर्युक्त कथन का समर्थन करती हैं।

जिनसागरसूरि ने सं० १४८९ फा० सुदि ३ को जावर के सुपार्श्वनाथदेवयुक्त देवकुलिका की प्रतिष्ठा की थी, (विद्याविजय लेख संग्रह लेखांक १४२)।

मुनि जयन्तविजय सकलित अर्बुदाचल प्राचीन जैनलेख सदोह (लेखाक १८८) से ज्ञात होता है कि जिनसागरसूरि के समादेश से उपाध्याय विवेकहस, गणि लक्ष्मीसागर, मुनि जयकीर्त्ति सत्यलाभ, बालमुनि देवसमुदड और धर्मसमुद्र, साध्वी भावमति गणिनी, धर्मप्रभा गणिनी, रत्नसुन्दरी गणिनी, मोल्हा, डूगर, मेला आदि श्रावक-श्राविकासह अर्बुदाचल के आदिनाथ ओर नेमिनाथ की यात्रा स० १४६४ पोष कृष्णा २ रविवार को की थी।

जिनराजसूरि और नागहृद-नागदा

नागहृद-नागदा उदयपुर (राज०) से तेरहवें मील पर अवस्थित है। सर्पाकार राजमार्ग (नेशनल हाईवे ८) सस्कृति के दोपाधार प्रासाद और विशेष कर माता क्षेमकरी का उच्चगिरिशृग पर निर्मित भव्य भवन प्रेक्षक के हृदय मे श्रद्धा का सचार करता है। यहा की मनमोहक रूप छवि उत्प्रेरक भावनाओ का दिव्य सदेश देती हुई हृत्त्री तारो को झकृत करती है। प्रकृति की गोद मे खिले-पले-बने प्रतीको के दर्शन से अनिवर्चनीय आनन्द प्राप्त होता है। रससिक्त आकृतिया "रसो यमात्मा" की उक्ति पर अमर मुद्रा लगा देती है। आन्तरिक सद्वृत्तिया सजग हो जाती हैं और मानव स्वल्प क्षणो के लिए अन्तर्मुख हो, आत्म-दर्शन करने लगता है। उन कलाकारो के प्रति नत मस्तक हो जाता है जिनने दीर्घकाल व्यापी अमर साधना का प्राञ्जल प्रवाह कठोर पाषाणो पर प्रवाहित कर अलौकिक सृष्टि से जगत् को उपकृत किया। भूलुठित प्रस्तरो मे नन्दनवन का वोध कराया।

नागहृद की मृत्तिका का सस्पर्श होते ही मानसपटल मे उच्चभाव रेखाए उभरने लगती हैं। कण-कण मे सस्कृति और भावना के मौन स्वर गुजरित होते हैं। खण्डहरो की यथाय अनुभूति वाणी की अपेक्षा नही रखती। प्रकृति, सस्कृति और कला के केन्द्र को भाषा दी ही नही जा सकती, अनुभवानन्द-विभोर आगन्तुक ज्योतिरूप मे अपने आपको विलीन-तल्लीन कर देता है, या स्वय समर्पित हो जाता है।

शीलोत्कीर्ण प्रशस्तियो के इस नगर का पुरातन नाम नागहृद-नागद्रह प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्यिक रचना और प्रतिष्ठा

लेखों में इन्हीं नामों का व्यवहार हुआ है। इसमें नाग शब्द को पृथक् कर दिया जाय तो ह्रद या द्रह शब्द शेष रह जाता है। दोनों का अर्थ जलाशय है, दोनों में भावात्मक साम्य है। संस्कृत भाषा का ह्रद रूप प्राकृत[1] भाषा में द्रह बन जाता है, कालान्तर में द्रह का स्थान दा ने ग्रहण किया नागद्रह या ह्रद नागदा बन गया।

नागदा इतिहास जगत् में जितना यशर्जित हुआ है, उतने उसकी प्राचीनता पर प्रकाश विकीर्ण करने वाले ऐतिहासिक साधन समुपलब्ध नहीं हैं। राजस्थान के प्रकाशित ऐतिहासिक साहित्य में इसके अतुलनीय शैल्पिक वैभव, अतीत की समृद्धि आदि की प्रशंसा तो की गई है, परन्तु, इसके निर्मापक और निर्माता-काल पर सभी मौन हैं। कोई शिला या ताम्र प्रशस्ति आज तक ऐसी उपलब्ध नही हो सकी है कि नगर के आदि काल पर प्रकाश डाल समस्या का समाधान प्रदान कर सके। स्कंदादिपुराणों में नागह्रद स्थान विशेष का विशद् वणन प्राप्त है, पर उसमें इतना वैषम्य है कि निश्चित रूप से निर्णय करना कठिन हो जाता है। राजा जनमेजय और तक्षक नाग की पौराणिक कहानी इस नागह्रद के साथ भी जुड़ी हुई है। तक्षक अपने प्राण बचाने हेतु यहां एक कुण्ड में रहा था जिसकी स्मृति स्वरूप आज भी एक कुण्ड नागदा के समीप विद्यमान है।

प्रकृति के सुरम्य प्रांगण में निर्मित कुण्ड के समीप ही किंचित उच्च स्थान पर कलापूर्ण तक्षकेश्वर-महादेव का भव्य भवन-प्रासाद आज भी नागह्रदीय शिल्प समृद्धि की सुखद स्मृति संजोये हुए है। यहां प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इसका सम्बन्ध तक्षकवंशीय किसी शासक जाति से है या शिल्पकला विशारद तक्षक शिल्पियों से है? बुद्धिगम्य तर्कानुसार तो यही समुचित प्रतीत होता है कि इसका तात्पर्य तक्षक-शिल्पियों से ही होना चाहिए। नागह्रद में शताब्दियों से सभी जाति के शिल्पी रहा करते थे इस कथन के समर्थन में यहाँ का विश्वकर्मा-प्रासाद स्मरणीय है,

---

१. ह्लदेह्रदोः ह्लदशब्देहकारदकारयोर्व्यत्ययो भवति

जिसे स्थानीय जनता आज करमरियाजी का मन्दिर कहती है। दूर-दूर के शिल्पी आज भी विशिष्ट अवसर पर आकर न केवल अपनी कौलिक मनौति ही पूरी करते हैं, अपितु, इसे वे शिल्प-यात्रा का महान् धाम भी मानते है। प्रासाद प्रतिमाहीन होते हुए भी अवशेषो के समक्ष ही वे भावभीनी श्रद्धाजलि अर्पित कर अपने को धन्य मानते है। प्रासाद के उत्तरग मे विश्वकर्मा का प्रतीक अकित है। तक्षक, नाग और वर्धिकी शिल्पी के पर्यायवाची शब्द हैं। महाभारत मे नाग और तक्षक की परिगणना शिल्पियो मे की है। नाग शिल्पियो द्वारा द्वीप द्वीपान्तरो मे भारतीय सस्कृति और सभ्यता के उत्प्रेरक तत्व प्रसारित हुए। नागर शिल्प शैली के विकास की पृष्ठभूमि कुछ भी रही हो, परन्तु शिल्पियो का अभिमन्तव्य है कि इसके मूल मे नाग जाति की तक्षण-कुशलता अन्तर्निहित है। अर्थूणक-अर्थूंण (वग्गपाटक/वासवाडा, राज०) से प्राप्त स० ११३३ के जिनत्रयपट्टक से प्रमाणित है कि उस नाग-जाति के कुशल शिल्पी रूपदान मे अनुरक्त थे, विद्यमान थे।

सकेतित तथ्यो से सिद्ध है कि जनमेजय द्वारा आयोजित नाग-यज्ञ से या तक्षक सर्प से इसका दूर का भी सम्बन्ध नही है। तक्षक-राजवशियो का सम्पर्क राजस्थान से रहा अवश्य है, किन्तु, सूचित प्रासाद निर्माण के पर्याप्त पूर्व-काल मे। अत इन पक्तियो का लेखक निष्कर्ष पर पहुँचता है कि आलोच्य तक्षकेश्वर-मन्दिर नागह्रद में निवास करने वाले तक्षक-शिल्पियों से सबद्ध ही नही है, बल्कि उन्ही के द्वारा निर्मित भी है। वैदिक परम्परानुसार शिल्पशास्त्र के उद्भावक भगवान शकर माने जाते रहे हैं। अत तक्षकगण अपने ईश का मन्दिर श्रद्धा से बनायें-बनवायें यह सर्वथा स्वाभाविक ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय कलाकारो ने अवकाश के क्षणो में इसका निर्माण किया। यद्यपि यहा निर्माण सूचक कोई प्राचीन शिलोत्कीर्ण लेख नही है, पर कुण्ड के समीप शिलालेख लगाने का स्थान बना हुआ है, न किसी साहित्य या ऐतिहासिक कृतियो मे एतद्विषयक सकेत ही प्राप्त हैं। तथापि इसके समय निर्णय मे कठिनाई का अनुभव नही होता, कारण कि इसकी कला, सौदर्य रेखाए और शिल्प-भास्कर्य मूक रूप से अस्तित्व समय का समर्थन करते हैं। इसकी तमालपत्रिका और स्तवाकृतिया इसे एकादश शताब्दी मे रख देती

है। कारण कि एकलिंग-प्रासाद की परिधि में स्थित लकुलीश-प्रासाद (निर्माण काल सं० १०२८) और नागहृद स्थित अलोप-पार्श्वनाथ के मन्दिर के सभी अंग, प्रतीक आदि में पर्याप्त साम्य ही नहीं है, ऐसा ज्ञात होता है मानों तीनों के कलाकार एक ही रहे हों। जंघा और मण्डोवर की प्रतिमाएं भी इस तथ्य का मूक समर्थन कर रही हैं।

किन्तु इस कुण्ड के कारण ही नागहृद नगर अस्तित्व में आया, यह मन्तव्य युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। मेदपाट/मेवाड़ में जनश्रुति प्रचलित है कि गुहिल वंश के चतुर्थ शासक और महेन्द्र के पुत्र नाग या नागादित्य ने यह नगर बसाया था[1]। इस कथन का समर्थन समकालिक या प्राचीन ऐतिहासिक आधारों से नहीं होता। स्वल्प क्षणों के लिए नाग द्वारा बसाना मान भी लिया जाय तो एक आपत्ति यह खड़ी होती है कि इनके परवर्त्ती शील[2] और अपराजित[3] के लेखों में नागहृद का नाम क्यों नहीं है? यदि उन दिनों नागहृद का अस्तित्व होता तो कोई कारण नहीं था कि ये पाटनगर का उल्लेख अपने लेखों में न करते। अल्लट और शक्तिकुमार के लेखों में भी नागहृद का सूचन नहीं है। यहां तक कि पालड़ी का लेख भी इस विषय पर मौन है। प्राप्त पुरातन शिलालिपियों के आधार पर कहा जा सकता है कि इसका प्रथम लेखीय आधार सं० १०८३ का लेख है जिसमें—

स्थानं नागहृदाभिख्यमस्ति[4]

---

१. नागा दित्यस्ततोजातो पुरं नागहृदाभिधौ
निर्मितं निर्मलं तेन देवप्रासादपूरितम्
—अमरकाव्यम्

२. नागरोप्रचरिणी पत्रिका, वर्ष १ पृष्ठ ३११

३. एपिग्राफिया इन्डिका, भाग ४ पृष्ठ ३१–३२

४. यह कुटिलाक्षरी लेख राजकीय पुरातत्व संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित है, श्री परमेश्वर सोलंकीजी ने वरदा, वर्ष ६ अंक १ में प्रकाशित करवाया है।

शब्द अंकित हैं। इसमे राजा का नाम नहीं है पर वह सूर्यवंशी था। नागहृद का विस्तृत परिचय सं० १३३१ की चित्रकूट[1]-प्रशस्ति मे और सं० १३४२ की अचलेश्वर[2]-प्रशस्ति मे मिलता है। स्थानीय शिल्प और मूर्त्तिकला के अध्ययन से निःसकोच कहा जा सकता है कि ससूचित प्रशस्तियो के पूर्व सास्कृतिक दृष्टि से नगर पर्याप्त विकसित हो चुका था। वहा का सास-बहू का मन्दिर इस कथन की सम्पुष्टि करता है। कहा जाता है कि इस प्रासाद का निर्माण शक्तिकुमार ने लगभग सं० १०३० मे करवाया था। भारतीय शिल्प-स्थापत्य और मूर्त्तिकला का यह प्रासाद अभिमान है। यो तो यह विष्णु-प्रासाद है, परन्तु इसकी प्रवेश देवकुलिका के उत्तरंग-ललाटबिम्ब के स्थान पर जैन प्रतिमा लक्षित है। स्मरणीय है कि यह कृष्ण का यौगिक रूप नही है, कारण कि पद्मासनस्थ कृष्ण प्रतिमाए भी पाई गई हैं।

जैन दृष्टि मे नागहृद-नागदा

नगर के अतीत पर विचार व्यक्त करते समय जैन ऐतिह्य साधन-संदर्भ भी उपेक्षित नही रखे जा सकते। भारतीय संस्कृति से सबद्ध अधिकतर तीर्थ, ग्राम और नगरो का इतिहास जितना प्राचीन बताया जाता रहा है, उतने उनके समर्थक पुरातन प्रलिखित प्रमाण प्राप्त नही होते। उन पर किंवदन्तियो का अम्बार इतना चढा दिया जाता है कि कभी-कभी सत्य शोधन एक विषम समस्या बन जाती है। नागहृद भी इस पंक्ति का अपवाद नही हैं। सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य मुनि सुन्दरसूरि ने अपने नागहृद पार्श्वनाथस्तोत्र मे सूचित किया है कि यहा मौय

---

१ भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, पृष्ठ ७४–७५

२ इसी प्रकार शिव और लकुलीश के प्रतीक भी उपलब्ध है जिन्हे देखकर कभी-कभी जैन प्रतिमा होने का भ्रम हो जाता हैं, एकलिंग जी (उदयपुर, राज०) के प्रासाद की देवकुलिकाओ मे इस प्रकार के प्रतीक खुदे हैं और इसलिए मेवाड के जैन समाज मे भ्रम फैला कि वह किसी समय जैन मन्दिर था, पर यह उनका भ्रम ही है।

सम्प्रति ने जैन मन्दिर बनवाया था[1]। यह संकेत नागहृद के इतिहास को मौर्य युग में पहुँचा देता है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कोई मूल्य नहीं है। सच बात तो यह है कि क्या उन दिनों मन्दिर या शिखर बना करते थे या क्या ? प्रासाद निर्माण का इतिहास इतना प्राचीन नहीं है। मौर्य युग में गुफा-मन्दिर की प्रथा थी। यद्यपि नागहृद में भी अलोप-पार्श्वनाथ का एक गुफा मन्दिर है अवश्य, पर उतना प्राचीन नहीं है, और है भी वह दिगम्बर जैन गुफा मन्दिर। एक हजार वर्ष से ऊपर इसका शैल्पिक इतिहास नहीं जा सकता, कारण कि मन्दिर की तमालपत्रिका, शिखर, तत्रस्थ प्रतिमाएं सभी कुछ सूचित समयावधि के परिचायक हैं। मौर्ययुग में नागहृद का ही अस्तित्व नही था तो सम्प्रति द्वारा मन्दिर बनव ने का प्रश्न नहीं उठता। हमारे यहां अनेक पुरातन मन्दिर और मूर्त्तियों को श्रद्धावश सम्प्रति-निर्मित मान लिया है। इसी प्रथा की रक्षा आचार्यश्री ने की है। यदि उनने शिल्प और मूर्त्तिकला के प्रकाश में प्रासाद को देखने का प्रयत्न किया होता तो नागहृद में सम्प्रति द्वारा मन्दिर बनवाने की बात सम्भवतः न लिखते। दूसरी बात यह भी विचारणीय हो जाती है कि नागहृद में मौर्ययुगीन तो क्या गुप्तयुगीन भी ऐसा कोई अवशेष या चिह्न नहीं मिला। मै यहां प्रसंगतः बहुत ही विनम्रता के साथ कहना चाहता हूँ कि प्रतिमाविधान शैली, पाषाण और अन्य मौर्ययुगीन प्रतीकों के प्रकाश में देखने पर एक भी ऐसी प्रतिमा या अवशेष सुरक्षित नहीं है जिसे सम्प्रति-निर्मित माना जा सके। यह विषय ही इतिहासगम्य न होकर श्रद्धागम्य बन गया है।

दूसरा जैन उल्लेख मिलता है आचार्य समुद्रसूरि का जो खुम्माण-कुलोद्भूत माने जाते हैं[2]। यह तपागच्छीय पट्टावल्यानुसार २६वें

---

१. न सम्प्रति तं नृपतिं स्ववीति कः सुखाकृता येन जगज्जनाः सदा
श्रीपार्श्वं विश्वे हितशर्मदायक त्वत्तीर्थकल्पद्रुमरोपणादिह

२. खोमाणभूभृत्कुलजस्ततो भूत् समुद्रसूरिः स्ववंश गुरुर्यः
चकार नागहृदपार्श्वतीर्थं विद्यांबुद्धिर्दिग्वसनान् विजित्य

—मुनि सुन्दरसूरि–रचित गुर्वावली, २९

पट्टधर थे। इनका समय पचम शताब्दी माना जाता है, जो भ्रामक है। कहा जाता है कि इनने नागहृद तीर्थ जीतकर स्वाधीन किया, परवर्त्ती अनेक लेखको ने इस घटना का उल्लेख किया है। परन्तु किसी ने वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य पर विचार करने का कष्ट नही किया है। जैन परम्परा के इतिहास मे त्रिपुटी महाराज ने तो इन्हे देवर्धिगणि का समकालिक बताने की असफल चेष्टा की है (भाग १ पृष्ठ ४१४)। खुमाणकुलीक बताते हुए यह कल्पना कितनी हास्यास्पद है? खुमाणका (प्रथम) समय ही नवम शती का प्रारम्भ काल रहा है। इसे वाचक देवर्द्धिगणि के साथ रखने मे कोई तुक नही है। दूसरी बात यह भी है कि आचार्य को खुमाणकुलिक बताया है जो पर्याप्त परवर्त्तीकाल का परिचायक है। एक तथ्य यह भी विचारणीय है कि समुद्रसूरि के पट्टधर मानदेवसूरि को गुर्वावलीकार समदर्शी आचार्य हरिभद्रसूरि का मित्र बताते हैं[1]। अत सहज ही कल्प्य है कि समुद्रसूरि का समय लगभग आठवी शती का उत्तरार्द्ध हो सकता है। इस विषय की विशद् समीक्षा मैंने भगवान-एकलिंग-एक अनुशीलन मे की है।

जैन ऐतिहासिक साधनो मे सर्वप्रथम विध्यवल्ली/बिजोलिया का स० ११२६ का लेख ही ऐसा है जिसमे नागहृद का उल्लेख प्राप्त होता है। जिनपालोपाध्याय रचित खरतरगच्छ-गुर्वावली मे सकेत है कि जिनपतिसूरि ने स० १२४४-४५ मे नागहृद मे चातुर्मास व्यतीत किया था[2]। लगभग इसी शताब्दी के एक दिगम्बर जैन विद्वान् मदनकीर्त्ति ने

---

१ अभूद् गुरु श्रीहरिभद्रमित्र श्रीमानदेव पुनरेव सूरि

—गुर्वावली, पद्य ४०,

२ खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावलि, पृष्ठ ३४,

शासनचतुस्त्रिंशिका में नागहृदेश्वर पार्श्वनाथ का उल्लेख किया है[1]।

नागदा का विध्वंस

मदनकीर्त्ति का अनुमित समय सं० १२६३ है। इस युग में मेवाड़ के सिंहासन पर रावल मदनसिंह या पद्मसिंह आसीन रहे होंगे। वि० सं० १२७० से जैत्रसिंह का राज्यकाल प्रारम्भ हो जाता है। इन दिनों केवल नागदा में ही नहीं समस्त मेवाड़ में जैन संस्कृति चरम सीमा पर थी। इस समय तालपत्रों पर जैन साहित्य प्रतिलिपित हुआ और कतिपय ग्रन्थ चित्रित भी करवाये गये। यह वही जैत्रसिंह है जिसने जगच्चन्द्र-सूरि को तपा विरुद से अभिहित किया था। नागदा का वैभव और कीर्त्तिपताका चतुर्दिग् फहरा रही थी। इनके राज्यत्वकाल में शमसुद्दीन,

---

१. स्रष्टेति द्विजनायकैहरिरिति (प्रोद्गीयते) वैश्न (ष्ण) वै
बौद्धैर्बुद्ध इति प्रमोदविविशैः शूलीति माहेश्वरैः
कुष्टाऽ निष्ट-विनाशनो जनदृशांऽयोऽ लक्ष्यमूर्त्तिर्विभुः
स श्रीनागहृदेश्वरो जिनपतिर्दिग्वाससां शासनम्

शासनचतुस्त्रिशिका, १३,

इसी प्रकार उदयकीर्त्ति ने भी पार्श्वनाथ का उल्लेख किया है—
नायद्दह पासु सयंभुदेउ हउ वंदउं जसु गुण णत्थि छेव

वही पृष्ठ ५२

दिगम्बर सम्प्रदाय की जनता अब तक मालवदेश का नागदा ही नागहृद मानती रही। परन्तु वस्तुतः मेवाड का नागहृद ही नागदा है और मदन-कीर्त्ति-संकेतित पार्श्वनाथ का सम्वन्ध इसी से है। कारण कि पुरातन पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर आज भी विद्यमान है। ग्यारहवी शती तथा वाद के चार लेख आज भी अरक्षित-उपेक्षित दशा मे नाश की ओर गतिमान है। समय-समय पर यह प्रासाद जीर्णोद्धृत होते रहने के वाव-जूद भी पर्याप्त पुरातनत्व लिए है। मेरे देखते-देखते ही पुरातन-वस्तु-तस्करों के कारण यहां की मूल्यवान मूर्तियां विलुप्त हो चुकी है। राजस्थान सरकार का पुरातत्व विभाग कुछ नही कर पा रहा है?

अल्तमश ने नागदा पर आक्रमण कर उसे विखण्डित किया। इस घटना का विशद् वर्णन हम्मीरमदमर्दन के तीन अको मे दिया है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से वह सर्वथा निर्दोष और प्रामाणिक नही है। साराश कि मुसलमानो के आक्रमण के समय गुजरात के दूत के प्रयत्न से मुस्लिम सेना भयभीत होकर भाग गई। यह कथन जैत्रसिंह जैसे वीर शासक के चरित्र पर कलक लगाता है। यद्यपि विध्वस काल पर प्रकाश विकीर्ण करने वाले तात्कालिक अकाट्य ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नही हैं, परन्तु समसामयिक अन्य घटनाओ से हम्मीरमदमर्दनकार-कथित तथ्य का निरसन स्वत हो जाता है। अल्तमश शमसुद्दीन का अस्तित्व समय स० १२६८–१२९३ तक का रहा है। स० १२७९ तक तो निश्चित ही उसने नागदा पर आघात नही किया था। दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि फारसी तवारीखो मे अल्तमश की राजस्थान की लडाइयो का ब्यौरा है, पर उसमे नागदा-आक्रमण का सकेत तक नही है। हम्मीरमदमर्दन की स० १२८६ की प्रतिलिपि प्राप्त है, अत नागदा का नाश स० १२७९ के बाद और स० १२८६ के मध्यवर्तीकाल मे हुआ होगा।

पुनर्निर्माण

नाश और निर्माण जगत् के स्थायी तत्व हैं। मानव की सृजन शक्ति नाश मे कही अधिक बलवान् होती है। नागदा पर क्रूर प्रहार होने के बावजूद भी वहा का मानव हतोत्साह नही हुआ, पुन निर्माण मे जुट गया। वहा के कलाकार-शिल्पियो की छनिया बज उठी। भवन और देव प्रासाद खडे किये जाने लगे। राजनैतिक और सास्कृतिक चेतना ने शीघ्र ही नागदा को वैभवसम्पन्न नगर बना दिया। यद्यपि शिलालिपियो से भले ही सूचित तथ्यो का समर्थन न होता हो परन्तु वहा की शिल्पकला और उज्जस्वल रेखाए स्वय इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ऐसा मानने का कारण यह है कि शिलालेखो मे आगत शिल्पी-नाम मन्दिरो की शिलाओ पर तक्षित हैं। स्थानाभाववशात् सभी का उल्लेख सम्भव नही है।

श्रमण-परम्परा के विख्यात इतिहासविद् और शासनप्रभावक आचार्य जिनप्रभसूरि ने विविधतीर्थकल्प (प्रणयन काल सं० १३६४–१३८९) में नागहृद-पार्श्वनाथ का उल्लेख किया है[1]। सं० १४३१ की जिनोदयसूरि द्वारा लोकहिताचार्य को प्रेषित महाविज्ञप्ति में नागहृद में नवखण्ड पार्श्वनाथ-बिम्ब होने की सूचना है[2]। राजनैतिक दृष्टि से उन दिनों मेवाड़ के सिहासन पर प्रदेश के पुनरुद्धारक वीर साहसी और स्वाभिमानी हम्मीर के पुत्र महाराजा खेतसिंह (राज्य काल सं० १४२१–३९) विराजमान थे। यह भी पिता के समान वीर और निडर शासक थे। सं० १४८५ की श्रृंगी ऋषि प्रशस्ति से स्पष्ट है कि क्षेत्रसिंह ने हाड़ा राजा को आक्रमण कर परास्त किया और माण्डलगढ़ पर अधिकार स्थापित किया। मालवे के सुलतान अमीशाह को (दिलावरखां गौरी) ही नहीं हराया, अपितु ईडर के रणमल को भी कैद किया था। इनके समय में नागदा का सांस्कृतिक स्थान देवकुलपाटक ग्रहण कर रहा था। जो देवकुलपाटक किसी समय नागहृद का उपनगर समझा जाता था, वही नागहृद अब देवकुलपाटक का उपनगर हाने जा रहा था। महाराणा लक्षसिंह, मोकल और कुम्भकर्ण के समय में तो जैन इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से देवकुलपाटक केन्द्र बन गया था। इसलिए मुझे कहना पड़ता है कि मेवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक एतद्‌युगीन जैन साहित्य का अन्तःपरिशीलन न कर लिया जाय।

विक्रम की पन्द्रहवी शती के उत्तरार्द्ध में आचार्य जिनवर्द्धनसूरि और इनके पट्टधर जिनचन्द्रसूरि का प्रभाव देवकुलपाटक एवं निकटवर्त्ती प्रदेश में सर्वाधिक था। इनके अनुयायियों की देवकुलपाटक में बहुलता थी। नवलखा परिवार सूरिजी के प्रति विशेष आस्था रखता था। इसने अनेक जिनबिम्ब बनवा कर सूरिजी, इनके पट्टधर और प्रपट्टधर से उनकी प्रतिष्ठाएं सम्पन्न करवाई, उपकार परिज्ञापनार्थ दोनों ही

१, पृष्ठ ८६ और १०६

२. अन्तरा च नवखण्डमेदिनोविदितमहिमानं सर्वातिशय निधानं सकलकल्याण-मूलनिदान नागहृदमहास्थाने जिनवरं श्रीनवखण्डपार्श्वनाथनामानम्,

विज्ञप्तिमहालेख पृष्ठ २०,

आचार्यों की एकाधिक प्रतिमाएं भी बनवाकर जिनसागरसूरि के करकमलों द्वारा स्थापित की[1]।

सं० १४७८ में मेवाड के सिंहासन पर लक्षसिंह-लाखा के अपत्य मोकल आरूढ थे। नागहृद उन दिनों जगन्नाथ[2] तीर्थ की संज्ञा प्राप्त कर चुका था। मोकल ने निपत्य स्वबन्धु बाघसिंह की स्मृति बनाये रखने हेतु नागहृद में एक विशाल सरोवर का निर्माण करवाया[3] जो आज भी बाघेला-

---

१ दृष्टव्य विजयधर्मसूरि—देवकुलपाटक,

२ इसकी सूचना एकलिंग महात्म्य में है। नागहृद के पुरातन प्रासादों से सहज कल्प्य है कि मूलतः यहां वैष्णव संस्कृति विकसित थी, पाशुपत प्रभाव आठवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में प्रसारित हुआ। सं० ७१८ मृग० सु० ५ के अपराजितकालिक लेख में बताया गया है कि इसके सेनापति वराहसिंह की पत्नी ने कैटभरिपु का विष्णु मंदिर बनवाया। एकलिंगजी की स्थापना भी वैष्णव-संस्कृति की व्यापकता की परिचायिका है। तात्पर्य उसके चतुर्दिक् पांच कोस तक कोई शिवलिंग न था, यदि सूचित परिधि में ऐसी परिस्थिति में शिवलिंग स्थापित किया जाय उसे एकलिंग संज्ञा दी जा सकती है। यथा—

> पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते
> तदेकलिङ्ग माख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा
>
> —शब्दकल्पद्रुम भाग १, पृष्ठ २१३,

३ सरोवर का निर्माण सम्भवतः सं० १४७८—९० के मध्यवर्ती काल में हुआ था। इसका उल्लेख कुम्भलगढ प्रशस्ति (सं० १५१७) और शृंगीऋषि-प्रशस्ति (१४८५) में आया है—

> यदकारी मोकलनृप सरोवर लसदिन्दिरानिलराजिराजित
> उपागम्य अलिनयनतदाशय जलनेलये श्रयति नापर पय
>
> × × ×
>
> भ्रातृरावलबाघस्याऽनपत्यस्य फलाप्तये
> बाघेनाख्य तडाग तन्नाम्ना नागहृदेकरोत्

सरोवर के नाम से बाघसिंह की यादगार संजोये हुए हैं। नागहृद का सौन्दर्य इस तालाव से और भी निखर उठा। इसके पश्चिम भाग में, समीप ही, स्वल्पोच्च गिरिमाल है जिस पर दो जिनप्रासाद पूर्व निर्मित थे।

संकेतित दोनों प्रासादों की निर्माण शैली, वास्तुकला, प्रतिमा-विधान की विविधता और जैन संस्कृति मान्य प्रतीकों, जो वहां तक्षित है, पर विशद् प्रकाश डाला जाय तो सरलता से एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही तैयार किया जा सकता है। कारण कि प्रथम प्रासाद तो संस्कृति का मूर्त्तिमन्त रूप ही है। इसमें सूर्याभदेव की शोभा यात्रा का उत्खनन बहुत ही अच्छा हुआ है। मण्डोवर की भव्य प्रतिमाएं तथा नरथर का अंकन संस्कृति को साकार किए हुए हैं। आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया १९०५ के इतिवृत्त में इसे कुमारपाल राजा का मन्दिर बताया है। वस्तुत: बात वैसी नहीं है, कारण कि न तो वहां इस आशाय का कोई लेख प्राप्त है और न ही इतना प्राचीन वहां का शिल्प है।

उपर्युक्त मन्दिर के समीप ही एक विशाल पार्श्वजिनप्रभु चतुर्विंशति का प्रासाद है, इसके स्तम्भ पर सं० १४२८ का लेख उत्कीर्णित है। इससे ज्ञात होता है कि सुराणा परिवार ने इसे वनवाया या जीर्णोद्धृत करवाया हो, लेख अस्पष्ट है। इसकी त्रिदिक् देवकुलिकाओं पर मोकल-कालिक विभिन्न लेख खुदे हैं। अलग-अलग परिवार वालो ने भिन्न-भिन्न कालों में इसका निर्माण करवाया था। पृष्ठ भागे सरस्वती जैनमन्दिर के लिये कहा जाता है। यहां यह पंक्ति साकार है। पीछे की ओर सरस्वती की देवकुलिका बनो हुई है। इस प्रासाद की कणी पर जिनवर्द्धनसूरि का नाम खुदा है जो उनके नागहृद से घनिष्ट सम्वन्ध का परिचायक है। नागदा के जैन मन्दिरों में यही एक ऐसा प्रासाद अवशिष्ट है जिसमें त्रिकमण्डप के साथ गूढमण्डप भी विद्यमान है। मुख्य वेदिका पर आज कोई प्रतिमा विराजमान नहीं है परन्तु दोनों ओर धरणेन्द्र-पद्मावती के पुरुषाकार अंकन पार्श्व मन्दिर होने की कल्पना को वल देते है। गर्भगृह के दांये आलय में अष्टयक्षिणी प्रतिमा युक्त वैरुट्या की सपरिकर प्रतिमा विराजमान है। सभामण्डप की मर्दानिकाए विलुप्त है। केवल

प्राग्मण्डप कलात्मक मूर्तियो से सुसज्जित है, और ये मूर्तिया इसलिए सुरक्षित रह गईं कि तस्कर सरलता मे उठा नही सकते ।

इस मन्दिर के निकट ही एक कलापूर्ण देवकुलिका सोलहवीं शताब्दी की प्रादेशिक शिल्पस्थापत्य कला का अभिमान है। द्वार और सर्वाधिक सौन्दर्यसम्पन्न हैं इनकी तीनो ओर की जालिया। वायुप्रवेशार्थ इस प्रकार का प्रबन्ध नागहृद के सभी प्रासादो मे दृष्टिगोचर होता है, किन्तु ये जालिया सास-बहू के मन्दिर के बाद की सम्बद्ध कृतियो मे उत्कृष्ट स्थान रखती हैं। तात्कालिक लोककला का इसमे अच्छा निर्देशन हुआ है।

इन दोनो प्रासादो से कलाकारो के नाम भी दो दर्जन से अधिक मिल जाते हैं। आश्चर्य और परिताप इस विषय का है कि ऐसी कलात्मक समृद्धि के लिए जैन समाज की ओर से सुरक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न होने से महत्वपूर्ण प्रतिमाए अपहृत हो चुकी हैं, शेष के विषय मे भविष्य-वाणी करना कठिन है।

तालाब के दक्षिण दिशा का भाग रिक्त था। इसी उच्च स्थान पर नवलखा परिवार ने विशाल शान्तिनाथ भगवान् का भव्य भवन प्रासाद बनवाया। इसका पुरातन रूप कैसा रहा होगा ? नही कहा जा सकता, परन्तु बाह्य भाग को देखने से इसकी सुन्दर आन्तरिक रूप-राशि की कल्पना की जा सकती है। विशाल सभामण्डप आज जीर्णोद्धृत है। इसका गर्भगृह प्रतिमानुसार अद्भुत है। चारो ओर देवियो की प्रतिमाए अंकित । मूलगृह के मुख्य सिंहासन पर भगवान् शान्तिनाथ की ९ फीट ऊँची सपरिकर प्रतिमा विराजमान है। प्रतिमा का निर्माण मेवाड के विख्यात शिल्पी मदन के पुत्र धरणा[1] और बोका ने किया है।

---

१ धरणा नागहृद का कुशल मूर्तिकार था, इसने महाराणा कुम्भकर्ण के समय मे एक और ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा बनाई थी जिसके प्रतिष्ठा-पक आचार्य जिनवर्द्धनसूरि थे, आचार्य श्री ने धरणा जैसे ख्यातिलब्ध शिल्पी के सहारे स्थापत्य कला को प्रोत्साहित किया।

अद्भुत प्रतिमा के कारण ही इसे स्थानीय जनता अदबदजी के नाम से पहचानती है। यहां कहावत है कि नागदा में रह कर जिसने अदबद जी के दर्शन नहीं किये उसने यहां कुछ भी नहीं देखा। मूल प्रतिमा के लेख से प्रमाणित है कि इसकी प्रतिष्ठा जिनसागरसूरि ने सं० १४९४ वर्षे माघ सुदी ११ गुरुवार को की। तक्षित लेख इस प्रकार है—

"संवत् १४९४ वर्षे माघ सुदी ११ गुरुवारे श्रीमेदपाटदेशे श्रीदेवकुलपाटकपुरवरे नरेश्वर श्रीमोकलपुत्र श्रीकुम्भकणभूपतिविजयराज्ये श्रीउसवंसे (शे) श्रीनवलक्षशाषमण्डन सा० लक्ष्मीधर सुत सा० लाधू तत्पुत्र साधुश्रीरामदेव तद्भार्या प्रथमा मेलादेकुक्षिसंभूत सा० श्रीसहणपाल/माल्हणदे कुक्षिसरोजहंसोपमजिनधर्मकर्पूरवातसद्य धीनुंक सा० सारंग/तदंगनाहीमादे लखमादेप्रमुखपरिवारसहितेन सा० सारंगन (ण) निजभुजोपर्जितलक्ष्मीसफलीकरणार्थं निरुपममद्भुतं श्रीमहत् श्रीशान्तिजिनविम्वं सपरिकरं कारित्तं/प्रतिष्ठितं श्रीवर्धमानस्वाम्यन्वये श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनराजसूरिपट्टे श्रीजिनवर्द्धनसूरित (स्त) त्पट्टे श्रीजिनचन्द्रसूरित (स्त) त्पट्टपूर्वाचलचूलिकासहस्रकरावतारैः श्रीमिज्जिनसागरसूरिभिः"

सदा वंदंते श्रीमद् धर्ममूर्त्तिउपाध्यायाः
घटितं सूत्रधार मदन पुत्र धरणावीकाभ्यां[1]
आचंद्रार्क नंद्यात् ॥ श्रीः ॥ छ

(अन्य हस्तसक्षरों से)

संवत् १७३२ वर्षे आसोज सुद १ गुरौ लोषतं सूत्रधार नाथा जात भंगोरा जात्रा सुफल फलज्यो।

नःगह्द को मन्दिरों का नगर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। कहा जाता है कि जिस समय जिनसागरसूरि ने उपर्युक्त प्रतिष्ठा करवाई

1. यहां से आगे का लेख–पाठ नाहरजी के संग्रह में (लेखांक १९५८) शुद्ध नहीं छपा है।

गणि के आग्रह से हैमलघुवृत्ति के चार अध्याय पर दीपिका रची[1]। दूसरी विवेचनात्मक कृति है कर्पूरप्रकरमहाकाव्य की टीका, इसका प्रथमादर्श धर्मचन्द ने लिखा, यथा—

श्रीखरतरगणराजश्रीजिनवर्द्धनसूरिशिष्येण
श्रीजिनसागरगुरुणा रचिता कर्पूरटीकेयम्
प्रथमादर्शे लिखिता तच्छिष्येणेह धर्म्मचन्द्रेण

सकेतित धर्मचन्द वही है जिनका नाम नागदा के लेख मे आया है। इनके शिष्य मतिनन्दन ने धर्मविलास की रचना की, यथा—

श्रीखरतरगच्छेश्वरजिनसागरसूरिमुख्यतर
मुं मालामौलिमणिर्जयति श्रीधर्मचन्द्रगणि

इति श्रीधर्मविलासग्रन्थे सघाधिप श्रीजावडसुश्रावकाभ्यर्थनया श्रीखरतरगणनभोगणदिनमणिश्रीजिनसागरसूरि-शिष्यवाचनाचार्य-श्रीधर्मचन्द्रगणि-शिष्य वाचनाचार्यश्रीमतिनन्दनगणिकृते नरकुलवर्णनो नाम चतुर्थोल्लास सम्पूर्ण[2]

स० १४८६ मे मेलादेवी ने निजपुण्य हेतु जिनवर्द्धनसूरि शिष्य ज्ञानहस के सदेह-दोहावली-वृत्ति तथा इसी परिवार ने स०१४६२ मे आवश्यकवृहदवृत्ति का द्वितीय खण्ड आदि प्रतियें प्रतिलिपित करवा कर आचार्य श्री के पारिवारिक मुनियो को समर्पित की।

इस सग्रह मे जिनसागरसूरि के स० १४९४–१५०१ के दो लेख प्रकट हो रहे हैं। शेष प्रतिष्ठालेख निम्न सग्रहो मे प्रकाशित हैं—नाहर भाग २, १४६१–९४–९५–९६–९७–१५०१–३–७–९–१०, नाहटा १४९१–६४–१५०२–७–६, मुनि विशालविजय १४९५, बुद्धिसागरसूरि

१ देवकुलपाटक, पृष्ठ २१।

२ मुनि श्रीपुण्यविजयजी—प्रशस्त्यादिसग्रह, पृष्ठ १२७–८।

भाग १, १५०९-१०, भाग २, १४९५-१५१०, मुनिकान्तिसागर १५०५, विनयसागर १४९१-९५-१५००-१-५-७, विद्याविजय १४८९-१४९१।

जिनसागरसूरि के पट्टधर थे जिनसुन्दरसूरि (परिचय के लिये देखिये संख्या ५१)।

(४८) जिनसुन्दरसूरि—(लेखांक ५९)

यह आचार्य किस परम्परा और किसके अनुवर्त्ती थे ? प्रश्न चिह्न है। प्रतिमा लेख का सार केवल इतना ही है कि संवत् १४४७ फाल्गुन कृष्णा ३ को श्रीमालीज्ञातीय पितृ खीमसी अरली····वीरपाल डूगर····(ने) श्रीपार्श्वनाथबिम्ब श्रीजिनसिंहसूरि के उपदेश से भरवाया और श्रीसूरि ने प्रतिष्ठा की।

"उपदेशेन" शब्द अनुसन्धाता का ध्यान केन्द्रित कर लेता है। मानस पटल पर रेखा उभरती है कि हो न हो इस प्रतिमालेख का सम्बन्ध पौर्णमिकपक्ष से ही होना चाहिए। यों तो अंचलगच्छीय आचार्य भी उपदेशक के रूप में ही उल्लिखित होते रहे हैं। इस शताब्दी में ही नहीं अपितु, पूरी अंचलीय-परम्परा में इस नाम का कोई आचार्य हुआ ही नहीं है। अब विचारणीय रह जाता है पौर्णमिकपक्ष।

इस पक्ष की विस्तृत पट्टावली अद्यावधि उपलब्ध नहीं हो सकी हैं फिर भी प्राप्त साधनों के आधार पर स्व० मोहनलाल देसाई ने अथक परिश्रम कर यथाशक्य प्रामाणिक पट्टक्रम वनाने का प्रयास किया है[1]। परन्तु वहां भी इस आचार्य का उल्लेख नही है। देसाई के अनन्तर नव्य प्रमाण उपलब्ध हुए है। उनके आधार पर देसाई के प्रयत्न का परिमार्जन अपेक्षित है।

विवक्षित आचार्य का अस्तित्वकाल पन्द्रहवी शती है, इस शताब्दी का एक प्रतिमालेख प्राप्त हुआ है जो समस्या को समाधान देने में सहायक

---

१. जैन गूर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२३३

सिद्ध हो सकता है। अत पूर्व समाननामा आचार्यों पर दृष्टिपात करना आवश्यक होगा, देसाई के पट्टक्रम मे ये अनुल्लिखित हैं।

सवत् १३६३[1]–१३६६[2]–७३[3]–७६[4]–१४०६[5]–१४–२१[6]–२४[7]सभी लेख उपदेशक कोटि के आचार्य जिनसिंहसूरि के हैं, स० १३६३ के लेखो से महत्व का तथ्य प्रकट होता है और वह यह कि जिनसिंहसूरि के गुरु मेरुप्रभसूरि थे। इनके प्रतिमालेख १३७३[8]–८६–९१[9] और असवतीय है[10]। लेखो से प्रमाणित है कि ये मेरुतुगसूरि के शिष्य थे। यह मेरुतुगसूरि मेरुप्रभसूरि के शिष्य थे। स० १४२१–२४ के लेखो मे जिनसिंहसूरि को पूर्णिमापक्षीय बताया है।

इतने विवेचन के अनन्तर प्रश्न यह उपस्थित होता है कि स० १३६९–१४२१ तक के लेखो का सम्बन्ध क्या एक ही जिनसिंहसूरि से था या क्या ? दीर्घ अन्तराल एक आचार्य मानने मे बाधक है। प्रस्तुत सग्रह मे प्रकाशित लेख स० १४४७ का है, अत सं० १३६३–१४४७ तक एक आचार्य की कल्पना विलष्ट है। अनुभव तो इस अनुमान की ओर प्रेरित करता है कि ब्रह्माणगच्छ मे जिस प्रकार मुनिचन्द्रसूरि और वीरसूरि नामो का क्रम चला है उसी प्रकार इस पक्ष मे भी हुआ तो क्या आश्चर्य ? सूचित जिनसिंहसूरि किसके शिष्य थे गर्भित ही है।

(४६) जिनसिंहसूरि—(लेखांक २६२) खरतरगच्छीय

यह खरतरगच्छ-पिप्पलीयशाखोद्भूत आद्यपक्षीय (प्रवर्त्तनकाल सं० १५६४) परम्परा के प्रथम पट्टधर थे। जिनदेवसूरि इस शाखा के

१-२-३ नाहटा-संग्रह, लेखांक २३२–१३१९–२५७
४-५-६ अर्बुदाचल प्राचीन जैन लेख-संदोह, लेखाक ५४७–५६९–५७७
७ विशालविजय–संग्रह—लेखाक ६५, इसका अनुवाद गलत दिया है
८-९-१० बुद्धिसागरसूरि—सग्रह भाग २ लेखाक २० के लेख में मेरुतुगसूरि के आगे का भाग खण्डित है और—प्रभसूरि पाठ है अन्य प्रतिमालेखों के आधार पर त्रुटिकांश में मेरुप्रभसूरि सहज कल्प्य है, तदर्थ वहीं ग्रन्थ लेखाक ८३ दृष्टव्य है।

प्रवर्त्तक थे। इसका सूत्रपात परिस्थितिजन्य-वैषम्य के कारण हुआ। प्राप्त प्रतिमा और शिलालिपियों से प्रमाणित है कि पिप्पलीयशाखा का अधिक प्रभाव मेदपाट/मेवाड़ में था। इसका कारण यह भी हो सकता है कि इसके संस्थापक जिनवर्द्धनसूरि, सागरचन्द्राचार्य द्वारा पट्ट के लिए अयोग्य घोषित किये जाने के अनन्तर मेवाड़ में ही अधिक विचरे और पिप्पलगांव मे ही स्थायी रहे। देवकुलपाटक और नागह्रद/नागदा (एकलिग जी के समीप) तो इस शाखा के आचार्यो का केन्द्र था। इन्होंने भारतीय शिल्प-स्थापत्य कला के मुख को उज्जवल करने वाले अनेक भव्य-मारकर्य-युक्त प्रासाद एवं प्रतिमाओं का निर्माण कर शासन की महत्ती प्रभावना की थी। जिनसिंहसूरि के वैयक्तिक जीवन पट को आलोकित करने वाली साधन सामग्री अनुपलब्ध है। वल्कि कहना यह चाहिए कि इस आचार्य का अस्तित्व केवल प्रतिमालेखों में ही सुरक्षित है। जिनदेवसूरि ने इन्हें कब पट्ट-स्थापित किया? नहीं कहा जा सकता, परन्तु सं० १६१६ के लेख से (बुद्धिसागरसूरि भाग १ लेखांक ७९८) ज्ञात होता है कि इतः पूर्व स्थापित किये जा चुके थे।

प्रस्तुत संग्रह में सूरिवर का सं० १६२७ का लेख प्रकाशित किया गया है इसी तिथि का एक और लेख बाबू पूर्णचन्द्र नाहर-संग्रह में (लेखांक १३८८) प्रकाशित है। बाबू सा० ने लेख के अग्रभाग में प्रश्न चिह्न बना दिया है। मै स्वयं इसकी प्रतिलिपि करते समय चकित हुआ था कि सं० १६२७ में जिनसिंहसूरि कैसे हो सकते है? कारण कि मेरे मस्तिष्क में अकब्बर प्रतिबोधक जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर घूम रहे थे, जिन्हें आचार्य पद अकब्बर के विशिष्ट आग्रह से स० १६४९ में दिया था। सम्भव है ऐसा विचार बाबू सा० के मन में भी रहा हो। अन्यथा प्रश्न चिह्न जंसी कोई बात नही थी। समाननामधारो आचार्य समीप-कालिक हों और उनके परिचय प्राप्ति के समुचित साधन अप्राप्त हो तो स्वभावतः ही अन्वेषक को भ्रम हो सकता है।

जिनसिंहसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि थे, इनके प्रभूत लेख विनयसागर-सग्रह में मिलते है। प्रत्येक लेख में अपनी शाखा की आचार्या-वली का उल्लेख किया है। नव्य शाखा के कारण कुछ तो अपनत्व

होता ही है और दूसरा प्रबल कारण यह भी था कि उन्ही दिनों एक और जिनचन्द्रसूरि भी विद्यमान थे, तत्पार्थक्य प्रदर्शनार्थ भी ऐसा किया जाना सम्भव है।

(५०) जिनसुन्दरसूरि—(लेखांक ७१) तपागच्छीय

जैन संस्कृति के दीप्तिमय स्तम्भ सोमसुन्दरसूरि के मुख्य शिष्यों मे जिनसुन्दरसूरि भी एक थे। त्रिपुटी महाराजश्री ने इनका पूर्व नाम जयन्तरूप[1], सूचित करते हुए जिनकीर्तिसूरि और इन्हें अभिन्न आचार्य माना हैं। परन्तु अपने कथन के समर्थन मे कोई ऐतिहासिक आधार नही दिया है। तथ्य यह है कि ये दो भिन्न आचार्य थे। आचारप्रदीप की अन्य प्रशस्ति मे दोनो की रचनाओं का उल्लेख है। इस सत्य को आगे चल कर त्रिपुटी महाराज ने स्वीकार भी कर लिया है, पर मूल में ही[2]। जिनसुन्दरसूरि को आचार्य पद तब दिया गया जब गुणराज[3] सोमसुन्दरसूरि के साथ तीसरी बार स० १४७७ में विमलगिरि-सिद्धाचल यात्रार्थ आया था। उस समय मधुमति मे यह कार्य सम्पन्न हुआ। साहित्योद्धार और तीर्थों के रक्षण के लिए आचार्य का पूरा समुदाय सन्नद्ध रहता था। जैन तीर्थ जीरावला के विकास मे इस परिवार ने महत्वपूर्ण योग देकर अद्भुत तीर्थभक्ति का परिचय दिया है। स० १४८७ वैशाख शुक्ला सप्तमी को जिनसुन्दरसूरि के सदुपदेश से दो देवकुलिकाओं का निर्माण हुआ था, (यतीन्द्र-विजय संग्रह लेखांक ३०३-३०४)। इसी वर्ष मे स्तम्भतीर्थ/खम्भात और पत्तन के आस्थावान् श्रावकों ने पौष शुक्ला द्वितीया को यही लाभ प्राप्त किया था, (मुनि जयन्तविजय—अर्बुदाचल प्र० लें० सं० लेखांक १६१-६२)।

१-२ जैन परम्परानो इतिहास भाग ३ पृष्ठ ४५८ और ४५७

३ संघवी गुणराज असाधारण पुरुष था। वर्णावती का स्वामी इसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। इनके लघुबन्धु आग्रह ने सांसारिक वैभव से विरक्त होकर भागवती दीक्षा अंगीकार की थी। अनन्तर इनने जीवन के मूल्यवान् क्षण तपश्चर्या मे व्यतीत किए। सं० १४६५ मे मुनिसुन्दर ने इन्हे वाचक पद प्रदान किया। गुणराज का विशद् परिचय महावीर प्रशस्ति मे चारित्ररत्न ने कराया है।

सोमसौभाग्य पट्टावली में एक शब्द में इनकी पाण्डित्यमयी प्रतिमा का परिचय दिया है—

एकादशांगसूत्रार्थधारक श्रीजिनसुन्दरसूरि,

इसी प्रकार—

विद्यानिधानजिनसुन्दरसूरिशिष्यः श्रीसोमसुन्दरगणेन्द्रनिदेशवश्यः
चारित्ररत्नगणिरल्पमतिर्व्यधत्त दानप्रदीपमिमामात्मपरार्थ सिद्धे

ज्ञानप्रदीप में भी स्मरण किया है।

जिनसुन्दरसूरि की केवल एक ही रचना दीपावलिकाकल्प[1] प्राप्त है—

संवत्सरेऽग्निद्विप-विश्वसंमिते दीपालिकाकल्पममुं विनिर्ममे
तपागणाधीश्वरसोमसुन्दरश्रीसुशिष्यो जिनसुन्दराह्वयः

जैन समाज के सुविख्यात विद्वान् और अनुसन्धाता पं० लालचन्द भाई[3] गांधी ने सूचित किया है कि 'तपागच्छीय जिनसुन्दरसूरिनो संदीपावलि-कल्प, वि० सं० १४२३ मां रचायल होइ आ पछीनो छं।" पण्डितजी का यह विधान कि इस कल्प की रचना सं० १४२३ में हुई, अनुचित है; कारण कि इस समय तो इनके गुरु सोमसुन्दरसूरि का जन्म भी नहीं हुआ था। रचना काल—जैसा कि ग्रन्थकार स्वयं सूचित करता है—सं० १४८३ ही उचित है। इससे आगे बढ़ कर त्रिपुटी महाराज

---

१. इस रचना की लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि निर्माण के तीस वर्ष बाद ही किसी भावुक भक्त ने इक्कीस चित्रों से सज्जित प्रति तैयार करवाई, जो आज बीकानेर निवासी कलाप्रेमी मोतीचंद जी खजान्ची के संग्रह में सुरक्षित है।

—जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ११ पृष्ठ ६७

२. केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स्, प्रशस्तित्यादि संग्रह पृष्ठ १०५।

३. श्रीजिनप्रभसूरि अने सुल्तान महम्मद, पृष्ठ ७६।

जैन परम्परा के इतिहास मे (भाग ३ पृष्ठ ४५८) लिखते हैं कि चतुर्विशतिजिनस्तुति सावचूरि (पद्य उन्नतीस) भी इन्ही की रचना है। सच्चाई यह है कि प्रस्तुत कृति चारित्ररत्न की है जसा कि उसके अन्तिम पद्य से स्पष्ट है—

> नूता श्रीऋषभादिवीरचरमा सार्वाश्चतुर्विंशति-
> स्तन्यासुमर्म मुक्तिलम्भचनाणा चारित्रलक्ष्मी पराम्[1]

स० १४८८ के प्रकाशित लेख के अतिरिक्त अन्य लेख मुनि विशालविजय १५०३ और जयन्तविजय-सग्रह १४८७ मे पाये जाते है। यो तो इस सग्रह का स० १५२० लेख भी जिनसुन्दरसूरि से सम्बद्ध है, पर प्रश्न है कि क्या उस समय इनका अस्तित्व था ? दूसरी बात है कि लेख मे गच्छ का भी सकेत नही है। मैं उसे इनका नही मानता।

(५१) जिनसुन्दरसूरि—(लेखाक १८३) खरतरगच्छीय

यह आचाय खरतरगच्छ की पिप्पलीयशाखा के जिनवर्द्धनसूरि-जिनचन्द्रसूरि-जिनसागरसूरि (स० ४७) के पट्टधर थे[2]। स० १५७३ मे प्रतिलिपित[3] विद्यासागरीय महाखण्डनवृत्ति की अन्त्य पुष्पिका तथा स० १६६६ मे लिखित राजसुन्दर[4] प्रणीत पट्टावली मे इनका उल्लेख दृष्टिगोचर होता हैं। पुरातन शिलोत्कीर्ण प्रशस्ति और तात्कालिक प्रादेशिक शिल्प-स्थापत्य कला के अवशेषो से प्रमाणित है कि पिप्पलीयशाखीय आचार्यो का विशेप प्रभाव योगनोपुर/जाउर/जावर से देवकुलपाटक तक फैला हुआ था। यद्यपि मेवाड मे प्राप्त एतद्विपयक साधनो का

---

१ जैनस्तोत्रसन्दोह भाग १ पृष्ठ ७६।

२ नाहटा सग्रह लेखाक ९५२।

३ स्व० मोहनलाल देसाई जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृष्ठ ६९५ तथा प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ ८२

४ वन्दा श्रीजिनसागरसूरि जाम पमाइ विघन सवि
चउरासि प्रतिष्ठा कीद्ध अम्हादावाद थूम प्रसिद्ध
नामु पदइ जिनसुदरसूरि

समुचित अनुशीलन असाम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं हो पाया है, परन्तु यहां ऐतिहासिक साधन-सामग्री पर्याप्त परिमाण में विद्यमान है। नागदा के जैन मन्दिरों के खुरे और कणियों में जिनसुन्दरसूरि के नाम अनेक स्थान पर उत्कीर्णित है। प्रासाद खण्डित है, परन्तु इससे अनुभव होता है कि इन ध्वस्त-प्रायः जिनालयों के प्रतिष्टापक जिनसुन्दरसूरि ही थे, इनके वैयक्तिक जीवन के सम्वन्ध मे अधिकृत रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं।

सं० १५२५ के इस संग्रह में प्रकाशित लेखातिरिक्त इनके अन्य लेख नाहटा—१५११-१५, नाहर भाग १, १५१५-१६, मुनि कान्तिसागर १५१६ के संग्रहों मे पाये जाते है।

(५२) जिनहंससूरि—(लेखांक २७२) खरतरगच्छीय

परिचय संख्या ४६ वाले आचार्य के पट्टधर जिनहंससूरि संसारी पक्ष से उनके भानजे थे। इनका जन्म सं० १५२४। सेत्रावा में हुआ था चोपड़ागोत्रीय मेघराज पिता और कमलादेवी माता थीं। जन्म नाम था इनका धनराज। किंवदन्ती है कि इनके माता-पिता वर्षों तक सन्तान हीन रहे। परिवार समुद्रसूरि के प्रति आस्थावान् था। गुरु महाराज ने नियम दिलवाया कि यदि सन्तान हो तो प्रथम बालक को दीक्षा दिलवाई जाय, तथैव हुआ भी। संस्कारशील वालक सहर्ष सं० १५३५ में संयम स्वीकार कर धनराज से धर्मरंग बने। आगमादि साहित्य के विशिष्ट अध्ययनानन्तर सं० १५५५ में अहमदावाद में आचार्य पद प्रदान किया और स० १५५६ में बीकानेर में बड़े समारोह के साथ शान्तिसागराचार्य ने सूरिमन्त्र समर्पित किया। श्रीप्रशस्ति संग्रह पृष्ठ ३२, ४२ सं० १५२८ की पुष्पिका में जिनहंससूरि जिनमाणिक्यसूरि का नाम है, जो विचारणीय है।

आगरा जाने पर इनके प्रति श्रद्धा रखने वाले श्रावकों ने सम्राट के समान स्वागत किया। किसी विघ्न सन्तोषी ने वहां के तात्कालिक लोदी शासक को उभारा कि यह मुनि तो वैभव और सम्पदा में आपकी समानता करता है इस बात पर इन्हें धवलपुर/धौलपुर में रक्षित किया।

शासक ने इनसे प्रार्थना की कि कोई चमत्कार बताओ। समता के सागर मे सदैव निमज्जन करने वाले योगी-मुनि के लिए आध्यात्मिक साधना का प्रदर्शन वर्जित है। इससे लोक-सम्पर्क वढता है, क्रमश प्रवुद्धसाधक पतन की ओर गतिमान होता है। आगमानुमोदित मयम और प्राण-प्रण से प्रत्येक मर्यादा का सावधानी के साथ पालन करने वाले आचार्य के समक्ष अकारण ही एक समस्या खडी हो गई। यह परीक्षण काल था, आचार्य ने शासक से निर्भीकता से कहा कि आध्यात्मिक जीवन मे चमत्कारो का कोई मोल नही होता। साधना द्वारा ही सिद्धि प्राप्त करना हमारा जीवन-लक्ष्य है। श्रमण सस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तो के सतर्क प्रतिपादन से वह प्रसन्न हुआ और अपनी भूल समझ मे आई। कष्ट के लिए क्षमा-याचना करते हुए साम्पत्तिक वैभव भेंट करना चाहा, परन्तु अनाकाक्षी आचार्य ने अस्वीकार करते हुए अन्य बन्दीजनो की मुक्ति चाही' तथैव आज्ञा का पालन हुआ, अमारिपटह बजवाया।

यह आचार्य सैद्धान्तिक विद्वान् थे। आचारागसूत्र जैन-सस्कृति का प्राण है, शीलाकाचार्य ने सूत्र को सवगम्य बनाने हेतु वृत्ति निर्मित की थी। कालान्तर मे वौद्धिक ह्रास से वह भी दुर्बोध हो चली थी। आचार्य ने इस पर स० १५७३ मे लूणकर्ण-राज्य-बीकानेर दीपिका टीका का निर्माण किया। देवतिलक, दयासागर और भक्तिलाभ[1] ने सशोधनादि मे सहायता की[2]।

स्व० मोहनलाल देसाई ने अपने 'जैन साहित्य के इतिहास' (पृष्ठ ५१९) मे इस दीपिका का प्रणयन काल स० १५८२ माना है और नाहटा-

---

१ यह मुनिवर विद्वान्, ग्रन्थशोधक और सुलेखक थे, इनके हाथ के लिखे पत्रपाठ मेरे सग्रह मे है।

२ माहात्म्यमत्र चन्द्र श्रीपाठकदेवतिलकनामान
दक्षा शिष्या वाग्गुम्फगुरुदयासागरेन्द्राणाम्
गीतार्थशिरोमणिभि श्रीपाठक भक्तिलाभमुख्यै
सशोधिता तथापि च यदत्र दुष्ट विशोध्य तत्

बन्धुओं ने स्व०-सम्पादित लेख-संग्रह में इसका अनुकरण किया है। ग्रन्थ-कार स्वयं रचना काल का उल्लेख कर रहे हैं, यथा—

श्रीलूणकर्णराज्ये मन्त्रीश्वरकर्मसिंहसंघपतौ
श्रीमद्विक्रमनगरे गुण-मुनि-शर-चन्द्रमित वर्षे (१५७३)

इनका शिष्य परिवार भी विद्वद्भोग्य साहित्य-प्रणेता था। जिनभद्र-सूरि के ज्ञानमूलक अभियान को इस युग में बल मिला। अभयदेवसूरि और मलयगिरि महाराज की वृत्तियों का परिशीलन कर जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पर पुण्यसागरोपाध्याय ने जैसलमेर-शासक भीम के समय में वृत्ति निर्मित की जिसका प्रथमादर्श ज्ञानतिलक जैसे सारस्वत ने तैयार किया। इस उपाध्याय की अन्य रचनाओं के लिए नाहटा लिखित युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि द्रष्टव्य है। जिनहंससूरि के समय की दूसरी महत्वपूर्ण और सर्वमान्य रचना है, दण्डप्रकरण। इसके प्रणेता हैं आचार्य-शिष्य धवलचन्द्र मुनि के शिष्य गजसार मुनि। इस पर उनने सं० १५७९ में पत्तन में चूर्णि भी लिखी।

इनके धर्मानुशासन में सं० १५६६ में उपासकदशांग, सं० १५७६ में पंचमांग भगवतीसूत्र आदि प्रतियां विशेष रूप से लिखी गई। इनका स्वर्गवास सं० १५८२ में पाटण में हुआ। सं० १५७३ के अतिरिक्त लेख नाहटा—१५५७–६१–६३–६६–६८–७०–७२–७५–७८–७९–८०–८१, नाहर भाग १, १५५८–६०–६३–६५–६८–७६–७९, भाग २, १५५९–६२, भाग ३, १५५८–५९–६६–६७–६८–७५–७८–८१, बुद्धिसाग सूरि भाग २, १५६१–६२, भाग १, १५५७, विनयसागर—१५५९–६०–६२–६६–६८–७०–७१–८१, मुनि कान्तिसागर—१५६४–८१, जैन सत्यप्रकाश वष ८ पृष्ठ ३०१–१५७६, पाये जाते हैं। विनयसागर संग्रह में क्रमशः इनके दो लेख सं० १५८७ (लेखांक ९८०) और १५९१ (लेखाक ९९६) के उपलब्ध हैं जबकि वे स्वर्गस्थ हो चुके थे, सम्भव है पठन प्रमाद का परिणाम हो।

(५३) जिनहर्षसूरि—(लेखांक १९४–२१५–२३०–३१) खरतरगच्छीय

यह आचार्य उपर्युक्त जिनसुन्दरसूरि के पट्टधर थे। इनके समय में सं० १५२६ में चक्रेश्वरसूरि-गुरुप्रतिक्रमण, सं० १५५१ में उपदेशमाला

वालावबोध, इसी वर्ष मे ललितविस्तरा और स० १५६१ मे निशीथभाष्य प्रतिलिपित किये गये। आचार्य जिनहर्षसूरि प्राचीन साहित्योद्धार मे विशेष अभिरुचि रखते थे। स० १५४४ से १५६३ तक के प्रयास के प्रमाण मे जीतकल्पभाष्य (स० १५४४), पचकल्पभाष्य, पचकल्पचूर्णि (सवत् १५४५ वर्षे इद पुस्तक सधापितम्), बृहत्कल्पचूर्णि, (सवत् १५६३ वर्षे श्रीपत्तने श्री खरतरगच्छे श्रीजिनवर्द्धनसूरिसन्ताने श्रीजिनहर्षसूरि-शिष्ये सधाप्यालेखि), निशियभाष्य (सवत् १५६१ वर्षे श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनहर्षसूरिभि सधाप्य लेखितम् "श्री रस्तु सघाय") लीवपुरी/लीवडी ज्ञानागार मे सुरक्षित हैं। इन प्रतियो पर मुनि श्रीपुण्यविजयजी का अभिमत द्रष्टव्य है—

"भण्डारमा साधेलो प्रति पाँच छे। ते प्रति उदरे करडी खाधी होय अथवा चट्टाय तो ते कारणे चौथा भाग जेटली गोलाकार खा-खवाई गयेल हती। तेने खरतरगच्छीय श्रीजिनहर्षसूरि ए अने तेमना शिष्योए सधावीने पुन जोवती करी छे। प्रती ने ऐटली निपुणताथी साधवामा आवी छे के बुद्धिमान गणातो माणस पण तेना पानाने प्रकाश सामे राखो तेनो छाया ने पोतानो आख उपर लाव्या सिवाय तेने क्यां साधेली छे ए एकाएक न कही शके। साध्या पछी जे अक्षरो लखवामा आव्या छे ते पण आवाद प्रथमना लेखक ने मलता ज छे[1]।"

यहा इनके सवत् १५२८–३३–४२–४२ चार लेख दिये हैं। शेष के के लिए निम्न सग्रह दृष्टव्य हैं—

नाहटा—१५२३–२७–४२–५१–५९, नाहर भाग १, १५१९–२७–२८–३१–५१, भाग २, १५२३–२८, भाग ३, १५१९–२०, मुनि कान्तिसागर

---

१ ज्ञानांजलि पृष्ठ ३०

१५२५, विनयसागर १५१९–२१–२३–३१–३६–४८–५५ (लेखांक ८८० इस लेख में जिनसुन्दरसूरि का नाम न होकर जिनसागरसूरि पट्टे संकेतित है), ५७–६४, बुद्धिसागरसूरि भाग, १५१९–२०–२२–२४–२५–३२–४४–५२, मुनि जयन्तविजय (आबू०) १५२३, अर्बुद प्र० १५२५–४४, मुनि विशालविजय १५८७, विद्याविजय १५२२–२९–४१, निज दैनन्दिनी से—१५५६।

इनके शिष्य कमलसंयम उपाध्याय बहुश्रुत थे। उपाध्यायजी ने स्वहस्त से पर्याप्त कृतियां प्रतिलिपित कर ज्ञानभण्डार की अभिवृद्धि की। स्मरणीय है कि जिनभद्रकालिक कमलसंयमोपाध्य से यह भिन्न हैं।

ज्ञ

(५४) ज्ञानचन्द्रसूरि—(लेखाक ९९) धर्मघोषगच्छीय

जीर्ण-जर्जरित परिकर पर तक्षित लेख-पाठ पर्याप्त श्रम के अनन्तर ही पढा जा सका, कारण कि प्रतिमा और त्रुटित परिकरांश चूने से भित्ती मे चुने हुए थे। चूने के क्षार से सौंदर्य-सम्पन्न प्रतिमा का रूप तो विकृत हो ही गया, साथ ही वह ऐसी कडकीली पपडी जैसी हो गई है कि उसे स्पर्श होते ही धात्वांश खिरने लगता है। अवशिष्ठ भाग अतीत सौन्दर्य की अनुभूति कराता है। दीर्घकालव्यापी सक्षम कलाकार ने इसके निर्माण मे पुरातन उपादान प्रयुक्त कर पन्द्रहवी शती की कृति को, इससे भी पूर्वकाल की प्रतीत होती बना दी है। किसी समय प्रभु का यह बिम्ब अगणित व्यक्तियो को आत्मस्थ सौन्दर्य जागरण द्वारा विकासात्मक पथ की ओर प्रेरित करता था, वही आज मानव प्रेरणा का पात्र बन गया है, क्या विधि का विधान है ?

पठितांश का सार केवल इतना ही है कि स० १४९६ मे धर्मघोषगच्छ के ज्ञानचन्द्रसूरि ने इसकी प्रतिष्ठा की। बनवाने वाले श्रद्धालु परिवार का परिचय विलुप्त है। आचार्य परिचय-रेखान्तगत विगत पक्तियो मे

संसूचित है कि किसी गच्छ या तदाश्रित शाखा के सूरिवरों के पट्टक्रम परिज्ञानार्थ तत्सम्बद्ध पट्टावलियां महत्वपूर्ण साधन है। विशेषत: जिन गच्छों के आचार्यों के प्रतिष्ठालेख उपेक्षाकृत कम और पर्याप्त कालान्तराल में उपलब्ध होते हों, उनकी काल-संगति बैठाने में पट्टावलियां ही उपयोगी प्रमाणित होती है। परन्तु इनका उपयोग अनुसन्धित्सूओं को सावधानी से करना चाहिए। शोध के क्षेत्र में तथ्योपलब्ध्यर्थ वही ऐतिहासिक साधन-सूत्र स्वीकार्य हो सकता है जो सत्य की जांच की कड़ी आंच सह सके। अनुभव है कि कभी-कभी ऐसे साधनों में इस प्रकार के संकेत मिल जाते हैं जिनकी सम्पुष्टि तात्कालिक या पारवर्त्ती अन्य सूत्रों से नहीं होती। ऐसी स्थिति में ग्रन्थकृत प्रशस्ति, प्रतिलिपित पुष्पिका प्रतिमा और, शीलात्कीर्ण लिपियों का सहारा लेना पड़ता है। अन्वेषण में गवेषक का तनिक भी प्रमाद, साम्प्रदायिक व्यामोह या ऐसी ही कोई असावधानी हो जाय तो भूलों की परम्परा का सूत्रपात हो सकता है।

उदाहरणार्थ यहां प्रसगतः राजगच्छ पट्टावली को ही लिया जा सकता है, जो विविधगच्छीय है। यह कति पट्टावली की व्यापक सज्ञा सार्थक नहीं करती। यद्यपि संकलयिता ने उदारता का परिचय दिया है, परन्तु प्रतीत ऐसा होता है कि उसने अपनी स्मृति के आधार पर ही एक दो श्राचार्यो का विशद् गुण वर्णन कर, शेष में कुछेक के नाम मात्र, और वह भी अपूर्ण, दिये हैं। कारण कि अपने ही गच्छ के अनेक ऐसे आचार्यों के नाम नहीं दिये हैं, जिनके प्रतिमालेख सम्प्राप्त है। आलोच्य आचार्य ज्ञानचन्द्रसूरि की महिमा में पट्टावली संकलयिता ने ठीक-टीक स्थान रोका है, परन्तु इनके गुरु प्रगुरु का नाम निर्देश तक नहीं किया है। अत: आचार्य क्रम की दृष्टि से इसकी विशेष उपयोगिता संदिग्ध है, फिर भी ऐतिहासिक नव्य तथ्य की ओर संकेत है।

विवेच्याचार्य के समय पर विचार प्रस्तुत करने से पूर्व जान लेना अवाश्यक है कि इनका सम्बन्ध राजगच्छोद्भूत धर्मघोपसूरि की परम्परा से था जो धर्मघोपगच्छ के नाम से विख्यात है। सपादलक्ष[1] देश मे आचार्य जिनदत्तसूरि के अनन्तर इनका विशेप प्रभाव, न केवल जैन सघ या सार्वजनिक जनता पर था, अपितु, राजपरिवार भी इन्हे सम्मान की दृष्टि से देखता था। इनका दार्शनिक ज्ञान उच्चकोटि का था। जैनाचार्य होने के बावजूद भी साख्यशास्त्र के व्याख्याता के रूप मे यशार्जित थे। प्रस्तुत ज्ञानचन्द्रसूरि के पूर्व-पट्टाधीश के सदुपदेश से स० १३८५ मे प्रतिलिपित कल्पसूत्र की लेखन पुष्पिका मे इनकी प्रशसा मे निम्न पद्य दृष्टव्य है—

वादिचन्द्रगुणचन्द्रविजेता भूपत्रयविबोधविधाता
धर्म्मसूरि नाम पुरासीद् विश्वविश्वविदितो मुनिराज

यही पद्य जीर्णोद्धृत विमलवसति के स० १३७८ की बयालीस पद्यात्मक प्रशस्ति मे उद्धृत है। नयनचन्द्रसूरि ने भी वही से लेकर अपनी पट्टावली मे दिया ज्ञात होता है। उद्धृत पद्य के भावो का अधिक स्पष्टी-करण निम्न काव्य मे निहित है—

आसीत् श्रीराजगच्छे सदसि नरपतेरल्हणाख्यस्य सांख्य-
ग्रन्थव्याख्याविधाता नलनृपतिपुरो वादिगर्व्वापहर्त्ता

---

१ श्रीडत्यो हृदयागणे गुणवता शाकमरीभूभुजा
जीयासु सुचिर गिरो भगवत श्रीधमसूरिप्रभो

जैनावज्ञाप्रसक्तं जिनमतसुदृढं विग्रहेशं विधाय
श्रीमज्जैनेन्द्रधर्मोन्नतिकरणपटुर्धर्मसूरिर्मुनीन्द्रः[1]

---

१. यह पद्य विविधगच्छीय पट्टावली संग्रहे उद्धृत है, पद्य संकेतित घटनाओं का विवरण रविप्रभसूरि-रचित धर्मघोषसूरि स्तुति में मिलता है—

श्रोता यस्याजयेन्द्रः सदसि तिलकिते कोविदानां घटीभिः
सांख्यव्याख्यासु सूक्तीर्मधुसमधुरसाः स्वैरमासाद्य यद्यः

× × ×

दिग्वासः शेखरोसावजयनरपतेः पर्षदि श्रीगुणेन्दुः

× × ×

एकोस्मिन् भुवनत्रये विजयते श्रीधर्मसूरिर्गिरां
व्युत्पत्ति (शमस्य यस्य (च) शतं स विग्रहक्ष्मापतिः
ईदृक् कोस्ति विचक्षणः क्षितितलेत्ये (त्रे) त्यूचिवान्नपरं
वक्त्रेण स्तवनोच्छलद्भुजलतालंकारनादैरपि
स्तुत्यः कस्मिन् न धर्मसूरिसुगुरुर्यस्योपदेशात् पुरे
स्वास्मिन् कारयति स्म विग्रहनृपो जैनं विहारं द्रुतं
यस्मिंस्तस्य गिरा चकार च गुरुर्बिवंप्रतिष्ठा (विधि)
भूयोप्यस्य गिरा निवारितवधामेकादशी स्वक्षितौ
ऊर्ध्वीकृत्य भुजं वदाम्यनुपमं श्रीधर्मसूरिर्गिरा-
मादेयत्वमसौ यदस्य वचसा श्रीविग्रहेशः स्वयं
यस्मिन् राजविहार-दण्ड-कलशरोप-प्रतिष्ठादिने
एतां श्रीधर्मसूरीणां स्तुतिं मुक्तालतामिव
सतां कण्ठोत्थितां चक्रुः श्रीरविप्रभसूरयः

—डिस्क्रिप्टिव केटलोग ऑफ मेन्युस्क्रिप्ट्स इन धि जैन भण्डार्स एट पाटन पृष्ठ ३६९–७०,

इसी प्रकार आगमिकवस्तुविचारसार-विवरण में यशोप्रभसूरि ने भी अन्त्य प्रशस्ति में ऐसे ही विचार अंशतः व्यक्त किये है जो धर्मघोषसूरि के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं।

धर्मघोपसूरि के महान् व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली वस्तुमूलक रचना उन्ही की परम्परा के आचार्य रविप्रभसूरि एव अज्ञात कर्तृक पत्तनीयसूची मे उल्लिखित हैं[1]। उनमे उपर्युक्त पद्य-सकेतित घटनाओ का स्पष्टीकरण है।

आचार्य ज्ञानचन्द्रसूरि भी धर्मघोपसूरि के समान ही प्रभावक महापुरुष थे। राजगच्छीय पट्टावली मे इनकी प्रशसा मे पर्याप्त पद्य सकलित हैं, परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि इनके गुरु प्रगुरु का उल्लेख पट्टावलीकार ने न जाने क्या समझ कर नही किया ? जबकि उसे ज्ञात था। कारण कि स० १३३५ मे प्रतिलिपित कल्पसूत्र की लेखन पुष्पिका से[2] सकलयिता परिचित था, जेसा कि उसके द्वारा वादिचन्द्र वाले उद्धृत काव्य से स्पष्ट है। इससे अनुमान करने की प्रेरणा मिलती है कि पट्टावलीकार को केवल अपने गच्छ के कतिपय मुख्य आचार्यों का गुणानुवाद

---

१ धर्मघोपसूरि स्तुति (पृष्ठ ३०६), धर्मघोपसूरि स्तोत्र (पृष्ठ ३०७) (इसमे किसी भाटीवशीय नरेश को प्रबुद्ध करने का सकेत है), धर्मसूरि स्तवन (पृष्ठ ३०८), रविप्रभसूरि रचित धर्मघोपसूरि स्तुति (पृष्ठ ३६६) वारहमासा पृष्ठ ३७०)—

२ आनन्दसूरिशिष्य श्रीअमरप्रभसूरिदेशना श्रुत्वा
हरिपालाभिधपुत्र कुलचन्द्रस्येति चिंतितवान्

× × ×

इय पर्युपणाकल्पपुस्तिका स्वस्तिकारिणी
लिखिता हरिपालेन स्वमातृ श्रेयसे तत

—डि० कै० मे० पा० भं० पृष्ठ ३६

ही अभिष्ट था। मेरे संग्रह में धर्मघोषगच्छ की एक पट्टावली सं० १६०९ के प्रतिलिपित गुटके[1] में आलेखित है, इसमें स्पष्ट उल्लेख है—

सूरिश्रीअमरप्रभुः सचरणश्रीज्ञानचन्द्रोगुरुः

अर्थात् वह अमरप्रभसूरि के शिष्य थे। यह अमरप्रभाचार्य वही हैं जिनके उपदेश से सं० १३३५ में कल्पसूत्र[2] और सं० १३४४ में कालककथा[3] की प्रतियां लिखवाई गई थीं। यह आनन्दप्रभसूरि के

---

१. यह गुटका प्राचीन रचनाओं की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें अनेक अज्ञात कृतियें प्रतिलिपित है। भावकलश, मतिशेखर, देवकल्लोल, नयशेखर, धर्मसूरि, जयवल्लभ, अजितदेवसूरि, कुमुदचन्द्रसूरि, आशानन्द, विमलानन्द आदि की रचनाओं के साथ धर्मघोषगच्छ की पद्यात्मक पट्टावली भी प्रतिलिपित है सौभाग्य की बात है कि इसके प्रतिलेखक थे राजगच्छीय पट्टावली के कर्त्ता नयनचन्द्रसूरि के शिष्य चक्रपाणि, पुष्पिका इस प्रकार हैं—

संवत् १६०९ वर्षे श्रावणसुदी ४ सोमवारे/श्रीधर्मघोषगच्छे भट्टारिक श्रीश्री ७ नन्दिवर्द्धनसूरितत्पट्टेभट्टारक श्री श्री श्री नयचन्द्रसूरिशिष्य चक्रपाणि लिषितं नागपुर मध्ये ॥ पातिसाह श्रीसलेमसाहविजइराजै। शुभं भवतु ॥

२. आनन्दसूरिशिष्य श्रीअमरप्रभसूरितः श्रुत्वोपदेशं कल्पस्य पुस्तिकां नूतनमिमां उद्यमात् सोमसिंहस्य सुपुण्यः पुण्य हेतवे अलेखयच्छुभालेखां निजमातुर्गुणाश्रिय

सं० १३४४ मार्ग० शुदि २ रवौ सोमसिंहेन लिखापिता ॥

—जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह भाग १ पृष्ठ ३६

३. आबू की विमलवसहिका में सं० १३७९ का एक लेख है जिसमें वादी धर्मसूरि और आनन्दसूरि का नाम है। ये दोनों ही धर्मघोपगच्छीय ही है, परन्तु सं० १३७९ तक आनन्दसूरि जीवित थे ? यह प्रश्न है। आनन्दसूरि शिष्य का पुरानी भाषा में पार्श्वनाथकलश भी प्राप्त है।

पट्टधर थे। स० १३७८ के अर्बुदाचलीय जीर्णोद्धृत लेख मे भी अमरप्रभ-सूरि का पट्टधर बताया गया है—

मूलपट्टेक्रमे तस्य धर्मघोषगणार्यमा
बभूवु शमसम्पूर्णा अमरप्रभसूरय

तत्पट्टभपणमदूपणधर्मशील सिद्धान्तसिन्धुपरिशीलनविष्णुलील.
श्रीज्ञानचन्द्र इति नन्दतु सूरिराज पुण्योपदेशविधिबोधितसत्समाज
वसु-मुनि-तु (गु) ण-शसि (शशि) वर्षे ज्येष्ट (ष्ठेऽ) सितिना (व)
मिसोमयुतदिवसे श्रीज्ञानचन्द्रगुरुया प्रतिष्टि (ष्ठि) तो ऽ बुंदगिरो
ऋषभ १३७८ ज्येष्ट (ष्ठ) सुदि ९ सोमे[1]।"

स० १३९६ वैशाख सुदि ८ के लेख से भी ज्ञानचन्द्रसूरि, आणदसूरि-अमरप्रभसूरि के पट्टधर प्रमाणित हैं[2]। रघुनार्थापि प्रणीत लुकागच्छ पट्टावली मे भी तथव पट्टक्रम प्रदत्त है, परन्तु यहाँ आनन्द या आनन्दप्रभसूरि का नाम नही है[3]। स्मरणीय है कि ज्ञानचन्दसूरि के पूर्व पट्टाधीश अमरप्रभसूरि का अपरनाम अमरचन्द्रसूरि प्रतिमालेख मे प्राप्त है[4]।

आचार्य ज्ञानचन्दसूरि अर्बुदाचलशृंगस्थ विमलवसहि के पुन प्रतिष्ठापक के रूप मे सदैव स्मरणीय रहेगे। विक्रम की चौदहवी शती मे अल्लाउद्दीन खिल्जी ने मन्दिरो पर आक्रमण द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर हिन्दू विरोधी नीति का सक्रिय परिचय दिया था। भारतीय शिल्प-स्थापत्य मूर्तिकला के अनुपम केन्द्र आबू पर भी उसकी कुदृष्टि पडी। यद्यपि इन प्रासादो को उसन कब खण्डितकर विकृत किया? निश्चित नहीं कहा जा सकता। अनुमित है कि उसकी सेना ने स० १३६८ मे जालोरके कान्हडदेव

---

१ मुनि जयन्तविजय-सग्रह (अर्बुदा० लेख०) लेखाक १
२ मुनि जयन्तविजय-सग्रह (अर्बुदा० लेख०) लेखाक ९१
३ विविधगच्छीय पट्टावली सग्रह पृष्ठ ८१
४ बुद्धिसागरसूरि-सग्रह भाग २ लेखाक ५४८

पर आक्रमणानन्तर लौटते समय इन मन्दिरों का नाश किया[1] और धर्मघोषगच्छीय विवक्षित आचार्य ज्ञानचन्द्रसूरि ने माण्डव्य/मण्डोवर के संस्कृतिप्रेमी संघपति लल्ल और वीजड़ आदि को सदुपदेश देकर विमलवसति का पुनरुद्धार किया। यद्यपि इस पवित्र कार्य में अन्य गच्छीय श्रावकों तथा आचार्यों का सहयोग था, परन्तु मुख्य योग ज्ञानचन्द्रसूरि का ही था। सं० १३७८ में प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई, इस वर्ष के चार दर्जन से अधिक लेख इन्हीं आचार्य के प्राप्त हैं। सं० १३९४ में भी इन्होने यहाँ प्रतिष्ठा करवाई थी। आबू के इनके कुछ प्रतिष्ठालेखों के अतिरिक्त सभी लेखों में 'धर्मघोषसूरि पट्टे' शब्द प्रयुक्त है। इसका सीधा अर्थ यही निकलता है कि ये संकेतित आचार्य के पट्टधर थे, पर कालिक वैषम्य से यह असम्भव है। परन्तु यहाँ सूचित लेखगत शब्द का व्यापक अर्थ लेना चाहिये, और वह यह कि धर्मघोषसूरि के पाट पर अर्थात् उसी की परम्परा में, न कि सीधे पट्टधर। गच्छ-स्थापक आचार्य के प्रति बहुमान प्रदर्शनार्थ या उनकी स्मृति बनाये रखने हेतु ही ऐसा किया जान पड़ता है।

ज्ञानचन्द्रसूरि कब तक जिनशासन की प्रभावना करते रहे, प्रमाणाभाव में, निश्चिततया नहीं कहा जा सकता। परन्तु प्रतिष्ठालेखों के आधार पर इनना निश्चित है कि सं० १३९६ के पूर्व परमधाम प्रस्थित हो चुके थे। इनके शिष्य मुनिशेखरसूरि की प्रतिमा सं० १३९६ में प्रतिष्ठित हुई।[2] अतः इतः पूर्व स्वर्गवास हो चुका था। बुद्धिसागरसूरि-संग्रह में स० १३०७ (लेखांक ५४८), मुनि यतीन्द्रविजय-संग्रह में सं० १३०९ (लेखांक १९९), तथा नाहटा संग्रह में सं० १४२६ (लेखांक १६४८), के प्रतिष्ठालेख प्राप्त हैं जिनके प्रतिष्ठापक धर्मघोषगच्छीय यही ज्ञानचन्द्रसूरि बताये हैं। परन्तु कालिक दृष्टि से सभी लेख संदेहात्मक हैं, सम्भव है पठन दोष का ही परिणाम हो। सूचित काल में इस नाम के अन्य आचार्य इस गच्छ में ज्ञात नहीं।

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा सीरोही का इतिहास, पृष्ठ ७०।

२. मुनि जयन्तविजय : (अर्बुदा० ले०) लेखांक ९१

मैं यह असदिग्ध रूपेण स्वीकार करता हू कि आलोचित आचार्य ज्ञानचन्द्रसूरि के पट्टधर सागरचन्द्रसूरि थे और उनके पट्ट पर मलयचन्द्र सूरि आये। परन्तु जिस सागरचन्द्रसूरि को पट्टावली मे ज्ञानचन्द्रसूरि के बाद उल्लिखित किया है और उन्ही के पट्ट पर मलयचन्द्रसूरि की जो कल्पना की है, वह सर्वथा निराधार और भ्रामक है। पद्य सकेतित सागरचन्द्रसूरि आचार्य ज्ञानचन्द्रसूरि के पूर्ववर्त्ती महापुरुष थे। यह कणादके मत का साधिकार और तर्कपूर्ण खण्डन करने वाले नेमिचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। इनका सम्बन्ध राजगच्छ की भरतशाखा से था और विख्यात काव्य-प्रकाश सकेत के प्रणेता माणिक्यचन्द्रसूरि के पूर्व-पट्टाधीश थे। काव्य-प्रकाश-सकेत की अन्त्य प्रशस्ति मे सूरिवर का इस प्रकार स्मरण किया है —

मदमदनतुषारक्षेपपूषा जिनवदनसरोजाताग्निवागीश्वरायाः ।
द्युमुखमखिलनककग्रन्यपने स्हाणा तदनु समजनि श्रीसागरेंदुर्मुनीद्र ॥[1]

ज्ञानचन्द्रसूरि से पूर्वकालिक मानने का दूसरा प्रबल तर्क यह है कि उद्धृत पद्य मे केल्हण का नाम आया है जिसे इनने प्रबुद्ध किया था। यह केल्हण नाडोल के चौहाण नरेश आल्हण का पुत्र और उत्तराधिकारी था। वि० स० १२२१–४९ तक के इसके लेख मिले हैं।[2] कहा जाता है कि आचार्य ने गूजरेश्वर सिद्धराज जयसिह की प्रशसा मे कुछ काव्य लिखे थे।[3]

उपर्युक्त पक्तियो से स्पष्ट है कि यह सागरचन्द्रसूरि से भिन्न आचार्य हैं। इतना और स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इनके मलयचन्द्रसूरि नाम के कोई पट्टधर नही थे। प्रत्युत इनके पट्टधर तो थे माणिक्यचन्द्रसूरि। महादाश्चर्य तो त्रिपुटी महाराज पर होता है कि उनने किस आधार पर

---

१ ए डिस्क्रिप्टिव कैटलोग आफ मेन्युस्क्रिप्ट्स इन धि जैन भण्डार्स एट पाटन पृष्ठ ५४

२ म० म०प० विश्वेश्वरनाथ रेऊ भारत के प्राचीन राजवश, भाग। पृष्ठ २९७

३ द्रव्याश्रा श्रीजयसिहदेव गुणा कणादेन महर्षिणोक्ता ।
त्वया पुन पण्डितदानशौण्ड गुणाश्रय द्रव्यमपि व्यधायि ॥
जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ २५५

कल्पना कर डाली कि 'तेमनी पाटे आ० मलयेन्दु थया होय,'[1] जबकि वे स्वयं अपने "जैन परम्परा के इतिहास" में ज्ञानचन्द्रसूरि का समय सं० १३७८-९४ स्वीकार कर चुके है।[2] और केल्हण के समय से भी परिचित है।[3] मान लीजिये पट्टावलीकार ने प्रमादवश कोई गलत उल्लेख कर दिया हो, परन्तु अन्वेषक का तो कर्त्तव्य होता है कि कथित तथ्य की अन्य तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक साधनों के प्रकाश में जांच पड़ताल करे।

ज्ञानचन्द्रसूरि के उत्तराधिकारी सागरचन्द्रसूरि थे जिनके प्रतिष्ठा लेख सं० १४०६-६४ नाहटा, नाहर, मुनि विद्याविजय आदि सग्रहों में पाये जाते हैं। इनके उत्तराधिकारी मलयचन्द्रसूरि के प्रतिमालेख मुनि विद्याविजय, बुद्धिसागरसूरि, नाहटा, मुनि कान्तिसागर, नाहर और विनयसागर संग्रहों में प्राप्त हैं। राजगच्छ पट्टावली में इनकी प्रशंसा में निम्न दो पद्य संकलित हैं :—

भूपालमालाप्रणतानिरीहः समग्रविद्यागुणलब्धिपात्रम् ।
सर्वत्र सत्कीर्तितपद्महस्तो मुदेऽस्तु नित्यं मलयेन्दुसूरिः ॥
श्रीराजगच्छाम्बुधिपूर्णचन्द्र समस्तविद्यापदमस्ततन्द्रः ।
प्रज्ञापराभूतसुरेन्द्रसूरिर्जीयाच्चिरं श्रीमलयेन्दुसूरिः ॥

मेरे संग्रहस्थ गुटके में प्रतिलिपित धर्मघोष पट्टावली में भी तथैव क्रम प्राप्त हैं :—

सूरिश्रीअमरप्रभुः सुचरण श्रीज्ञानचन्द्रोगुरुः ।
सिद्धान्तंकनिधिः सुधाशुभगिरः श्रीसागरेंदुप्रभुः ॥
विख्यातो मलयेन्दुसूरिसुगुरुविद्याकलासेवधिः ।
सौभाग्योद्धिपद्मशेखरगुरुः सदभ्यः सुखं यच्छतु ॥

मलयचन्द्रसूरि के एक पट्टधर उवसग्गहरस्तोत्र के टीकाकार विजयचन्द्रसूरि भी थे, जिनका परिचय सं० १११ में दिया गया है।

---

१. जैन परम्परानो इनिहास भाग २ पृष्ठ ३७
२. जैन परम्परानो इतिहास भाग २ पृष्ठ ४२
३. जैन परम्परानो इतिहास भाग २ पृष्ठ ३६

भुवनभानुकेवलिचरित्र[1] की प्रशस्ति से परिज्ञात है कि मलयचन्द्रसूरि के शिष्य एक आचार्य जिनचन्द्रसूरि भी थे, यथा —

तेषा नाम्ना प्रकटो जयति श्रीधर्मघोषगच्छोऽयम् ।
श्रीमयचन्द्रसूरिसूरि (मा)ऽभुद् विश्रुतस्तु गुणै ॥२॥
तत्पदपकजसूर्या सूरीश्रीपद्मशेखरमुनिन्द्रा ।
तत्पट्टे विख्यात सूरय श्रीजिनचन्द्राख्या ॥३॥

(५५) ज्ञानविमलसूरि—(लेखाक ३०७) तपागच्छीय

तपागच्छपट्टावल्यानुसार इकसठवें आचार्य के यह विमलशाखीय पट्टधर थे। श्रीमाल/भिन्नमाल (राजस्थान) के ओसवाल ज्ञातीय वासव-गोत्रीय सा० वासव की अर्द्धांगिनी कमलादेवी की रत्नकुक्षि से स० १६६४ मे इनका जन्म हुआ। जन्म नाम था नाथूमल्ल। धीरविमल के पास स० १७०२ मे दीक्षा अगीकार की, नयविमल नाम रखा। अमृत-विमल और मेरुविमल के चरणो मे बैठकर विद्याभ्यास किया[2]। साहित्य, काव्य आदि शास्त्रो के अध्ययनान्तर आगमो का पारस्परिक स्वाध्याय किया। नयविमल की विद्याभिरुचि सार्वदेशिक थी। अब तक इनने धर्म और दर्शन के मौलिक रहस्यो को आत्मसात् कर लिया था। श्रीसघ मे सयम और सारस्वत के रूप मे यशर्जित हो चुके थे। आचार्य विजयप्रभसूरि चाहते थे कि इन्हें कोई सम्माननीय पद प्रदान किया जाय। परिणामत स० १७२७ मे सादडी के समीप घाणेराव मे आचार्यश्री ने पन्यास-प्रशांश पद से अलकृत किया। स० १७३६ मे इनके दीक्षादाता धीरविमल काल-कवलित हुए जिसका इन्हे अपार दुःख हुआ। ज्ञानी की गहन वेदना भी दूसरे के लिए अमृत सिद्ध होती है, व्यक्ति का परिताप सामूहिक वेदना का प्रतीक बन जाता है। यो तो नयविमल का जीवन

---

१ कैटलोग ओफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मे० मुनि पुण्यविजयजी-कलैक्शन भाग २
प्रशस्त्यादिसग्रह पृष्ठ २४१

२ विद्यागुरु वली अमृतविमल कवि मेरुविमल मन धरइ
—जैन गूर्जर कविओ भाग २ पृष्ठ ५१४

सदैव पारलौकिक चिन्तन में लगा रहता था, इस घटना ने संवेदनशील वृत्ति को उभार दिया। अन्तर्मुखी चिन्तन वैराग्यरससिक्त होकर साहित्य के रूप में प्रवाहित हुआ। यदि इनके साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया जाय तो विदित हुए विना न रहेगा कि धीरविमल के स्वर्गवास होने के वाद तो इनका जगत् और जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही वदल गया था। प्रत्येक रचना आध्यात्मिक रस से परिप्लावित होती गई। यही कारण है कि नयविमल ने उस समय की संघर्षशील सामाजिक स्थिति में भी अपना स्थान बना लिया था।

सं० १७४८ में तात्कालिक गच्छाधिराज विजयप्रभसूरि की अनुज्ञा से महिमासागरसूरि ने षण्डेर में आचार्य पद देकर ज्ञानविमलसूरि सार्थक नाम दिया। नव्याचार्य की तीर्थभक्ति उल्लेखनीय थी। सूरत के पारेख या कपूरचन्द भणशाली को उपदेश देकर गिरिराज का संघ निकलवाया था। इसका भावपूर्ण वर्णन कवि दीपसागरगणि के शिष्य सुखसागर द्वारा किया गया है। कहना अनुचित न होगा कि सुखसागर द्वारा ज्ञानविमलसूरि की साहित्य-साधना को वेग मिला था। इनकी अनेक रचनाओं का प्रथमादर्श आज भी खम्भात के खारवावाडे के ज्ञानभण्डार में विद्यमान है। यदि सूचित ज्ञानागार का अन्वेषण किया जाय तो और भी महत्वपूर्ण सामग्री मिल सकती है।

ज्ञानविमलसूरि का साहित्य लगभग लोकभाषा में ही निबद्ध है। मौलिक कृतियों के अतिरिक्त स्तबक या विवेचनात्मक अधिक है। इनकी रचनाओं के लिए जैन गूर्जर कविओ के भाग देखने चाहिए। आचार्य कवि का स्वर्गवास सं० १७८२ में खम्भात में ८९ वर्ष की आयु में हुआ, और दो वर्ष बाद वहीं पर भोयरे के पाडे में स० १७८४ में चरण स्थापित हुए। इनका सं० १७५१ का प्रतिष्ठा लेख प्रकाशित किया जा रहा है, यही प्रथम लेख है। अतिरिक्त लेख मुनि कान्तिसागर १७६९, मुनि विशालविजय १७०९-६१-६९ (इस वर्ष के वहुत लेख इस संग्रह में संकलित हैं), और वुद्धिसागरसूरि १७६४-६५ संग्रहो मे पाये जाते हैं।

(५६) ज्ञानसागरसूरि—लेखाक १८२) वृद्धतपागच्छीय

ज्ञात्वा मुधाधिकरस म्वत आविवेश वभ्र ह्रिया
परमयाकिल यस्य वाचाम् ।
तत्पट्टकैरवविबोधनपार्वणेन्दु श्रीज्ञानसागरगुरु
समभूत् शमीश ।।
सूरिर्भूरिगुणाधारस्तत्पट्टोदयवल्लभ ।
सागरा श्रुवारीणा तत श्रीज्ञानसागरा ।।

आचार्य ज्ञानसागरसूरि वृद्धतपागच्छीय रत्नसिंहसूरि (स० १०१) के प्रपट्टधर थे । वैयक्तिक परिचय प्राप्त नहीं है । बृहत्पोसालिक पट्टावली मे सूचित है कि इनने विमलनाथ चरित्र आदि अनेक नव्य रचनाओ का सृजन किया । तात्कालिक सफल व्याख्याताओ मे इनकी परिगणना की जाती थी । माण्डवगढ के सग्राम सोनी ने इनसे भगवती-सूत्र श्रवण किया और गौतम शब्द पर सुवर्ण टक-मुद्रा चढायी । अनन्तर इस द्रव्य से पाटन, खम्भात, राजनगर और भण्डौच मे ज्ञानागार स्थापित किये । इनके सदुपदेश से सग्राम सोनी ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये थे । अन्य श्राद्धो ने पुस्तकें[1] लिखवाकर इन्हें समर्पित की ।

---

१ माण्डवगढ निवासिनी श्राविका लाखू ने स्वपति श्रेयार्थ आत्माचाय विरचित पृथ्वीचन्द्र चरित्र (प्राकृत) सटिप्पण की प्रति लिखवा कर उदयवल्लभसूरि और ज्ञानसागरसूरि को स० १५१५ आश्विन शुक्ला ५ गुरुवार को समर्पित की । श्राविका लाखू का परिचय दृष्टव्य है—

"स्वस्ति सवत् १५१५ वर्षे असोमा से शुक्ल पक्षे पचमीगुरौ श्रीमण्डपदुर्गवास्तव्य श्रीश्रीमालज्ञातीय साह राजा भार्या श्राविका धाम्ड सुत साह नाथा भार्या लाखू तथा स्वश्रेय से भर्तु श्रेयसे च श्रुतज्ञानाराधनाय पूर्वलेखितश्रीदशवैकालिकवत्तिभक्तामरवृत्ति अजितशान्ति स्तोत्रवृत्तिनाममालासिंदूरप्रकरकमग्रन्थपट्कवीतराग-स्तोत्रविशत्युपदेशरत्नकोशशीलोपदेशमालासग्रहिणीव्याकरणसून-प्रभृतिवहुग्रन्थसमथा श्रीपृथ्वीचन्द्रचरित्र प्राकृत टिप्पनकसहित लेखयित्वा वृद्धतपागच्छनायकभट्टारकश्रीरत्नसिंहसूरिशिष्य श्रीउदय-वल्लभसूरि श्रीज्ञानसागरसूरिभ्यो वाचनाय प्रदत्तम् ।"

—पीटमन रिपोर्ट, पाचवा, पृष्ठ १२०

इस संग्रह में ज्ञानसागरसूरि का सं० १५२४ का लेख प्रकट किया जा रहा है। शेष इन संग्रहों में दृष्टव्य हैं—

बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५२२–२७–२८–३३–४२–४६, भाग २, १५२४–२८–३०, नाहर भाग २, १५२५–२८, मुनि विद्याविजय १५२३–२५–२९, मुनि कान्तिसागर १५५३, विनयसागर १५३०–३२, मुनि जयन्तविजय (अर्बुदा० प्र०) १५२८, मुनि यतीन्द्रविजय १५२८।

(५७) देवसूरि—(लेखाक १२) जाल्याधरगच्छीय ?

प्रतिमा का स्वल्पाश, पर महत्वपूर्ण भाग खण्डित हो गया है। प्रतिमा के प्रतिष्ठापक आचार्य ने स्वगच्छ का सकेत नही दिया है। प्रसन्नता इसी बात की है कि आचार्य नाम सुरक्षित है। तात्कालिक साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करने से सर्व प्रथम ध्यान जाल्योधर-गच्छीय देवसूरि पर जाता है जिनने स० १२५४ मे वढवाण मे पद्मप्रभ-चरित्र की रचना की[1]। इनके शिष्य हरिभद्रसूरि के स० १२९६–९७ के दो लेख प्राप्त हैं[2]। अत बहुत सम्भव है कि प्रस्तुत सग्रह मे प्रकाशित स० १२७३ का लेख भी इन्ही का हो। देवसूरि का जीवन काल कब तक रहा ? नही कहा जा सकता, परन्तु यदि सूचित लेख इन्ही का हो तो सकेतित समय तक इनका अस्तित्व माना जा सकता है, तथापि इस लेख के आचार्य अनन्वेषणीय नही हैं।

(५८) देवगुप्तसूरि—(लेखाक ६०) उपकेशगच्छीय

उपकेशगच्छ मे इस नाम के आचार्यो का प्राचुर्य है, इसका कारण आचार्य परिचय-रेखा सख्या १३ मे प्रदर्शित है। आलोच्याचार्य अपनी परम्परा के अडसठवें पट्टदीपक थे, इनके अस्तित्व काल के अनेक प्रतिमा-लेख प्राप्त हैं जिनमे केवल देवगुप्तसूरि का नाम ही आता है। किसी

---

१ डिस्क्रिप्टिव केटलोग ऑफ मेन्युस्क्रिप्ट्स इन दि जैन भण्डार्स एट पाटन, पृष्ठ २१२

२ महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ, पृष्ठ ११२

के सन्तानीय या पूर्वपट्टधीश का संकेत उनमें नहीं मिलता, अतः सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव होता है।

यह सूरिवर कवि और सिद्धान्तवेदी समयज्ञ सन्त थे। वि० सं० १४०९ में दिल्ली में इनका पद-महोत्सव सम्पन्न हुआ था। इनका प्रतिमालेख-प्राप्ति काल स० १४०९-८८ तक विस्तृत है। एक आचार्य का इतना दीर्घ अस्तित्व समय विवशतावश ही स्वीकार करना पड़ रहा है। सूचित अवधि के मध्य पट्टपरिवत्तन भी नहीं हुआ है और न ही पट्टावलियां ही इस समस्या पर कुछ प्रकाश डालती है।

कोई भी गच्छोद्भव भले ही किसी विशिष्ट कारण या सद्भावना के हेतु हुआ हो, परन्तु उसकी शाखा-प्रशाखा व प्रादुर्भाव के पीछे अवश्य ही कोई न कोई वैयक्तिक संघर्ष रहता है। इतिहास और परम्परा इस बात की पुष्टि करते हैं। उपकेशगच्छीय पट्टावली में बताया गया है कि पूर्व काल में श्रमण-परम्परा भगवान् पार्श्वनाथ और श्रमण-संस्कृति के अग्रदूत भगवान् महावीर—दो भागों में विभक्त थी। गौतम स्वामी के विशिष्ट आग्रह से केशीकुमार ने पञ्चम परिग्रह व्रत स्वीकार किया। दो प्रवहमान ऊर्ज्जस्वल धाराएं आपस में समा गई। विधि का विधान है कि मानव बुद्धिजीवी प्राणी होने के नाते एक स्थिति—चाहे वह कितनी ही उच्च और सर्वसाधनसम्पन्न क्यों न हो—में नहीं रह सकता। वह महत्वाकांक्षी होता है, यह तथ्य गच्छगत शाखाओं पर पूर्णतया चरितार्थ होता है। क्षीणकाल के कारण कथित धारा पुनः विभक्त हो गई, अर्थात् देवगुप्तसूरि के शिष्य मतिसागर ने अहंकारवश उपकेशगच्छ में ही सं० १४९८ में खदिरीशाखा का सूत्रपात किया। यथा—

ततः काले हीयमाने शाखा जाता द्विधा पुनः
वसुनन्दवेदेन्द्रंके (१४९८) वर्षे शाखा पृथक्कृता

शत्रुंजय की यात्रा भी की थी। देवगुप्तसूरि का विशेष परिचय पट्टावली मे नही मिलता, परन्तु तात्कालिक उपकेशगच्छीय मुनिवरो द्वारा रचित लोकभाषामय रचनाओ से ज्ञात होता है कि वह समय गच्छोत्कर्ष का था। इनका शिष्य-प्रशिष्यादि समुदाय विद्योपासक था। इनने धनसार देवकल्लोल, पद्मतिलक, हसराज और मतिसागर को पाठक पद समर्पित कर सम्मानित किया था।

धनसार

इनका विशद् परिवृत्त ज्ञात नही है, निम्नोक्त प्रमाणो से स्पष्ट है कि यह स० १५२७ मे पाठक वन चुके थे—

तच्छिष्य माणिक्य म ( ) गण्यधामा श्रीपाठक श्रीधनसागरनामा
सुचिर जयन्तु मुनि-कर-बाण-महोसख्यके वर्षे
स० १४२७ वर्षे ॥[1]

मेरे सग्रह की उपकेशगच्छ पट्टावली मे धनसार के लिए इस प्रकार उल्लेख किया है—

उपाध्याय श्रीधनमार, श्रीभर्तृहरिकाव्यस्यविवृत्ति कृता, यदुक्त
उपकेशगच्छगगनागणदीप्तिमानो श्रीसिद्धसूरि सुगुरोर्महिमाधिकस्य
शिष्येण तस्य धनसारवरेण्यटोके यमद्यननु भर्तृहरी व्ययथि

जिनरत्नकोश पृष्ठ ३७० से भी उपर्युक्त पद्य का समर्थन होता है।

धनसारोपाध्याय के दो अज्ञात गीत मेरे सग्रह मे पाये गये हैं जिनमे से एक के प्रणेता सोवनमेरु मुनि हैं। इनसे ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना ही ज्ञात है कि इनके पिता राजा मन्त्री मलहागर और माता राजलदे थी। गीत ये हैं—

---

१ मुनि पुण्यविजय—प्रशस्त्यादि सग्रह, पृष्ठ ८३।

(१)

सकलशास्त्र सिद्धंत वषाणइ, जाणइ अंग इग्यारुजी
क्षमा षड़ग करि मन्मथ जीतउ, पाठक श्रीधनसारूजी
आवउ सही ए अतिहिं आणंद भरि, चालउ चउक पूरावऊजी
कनकथाल मोतीयडे भरि करि, श्रीधनसार बधावउजी
अविचल सकल विमुष वाणी, गाजइ जिम जलधारूजी
जिन पुत नवल तनिय पडिबाहइ, आदिल ऋषि आचारूजी
राजलदे कूषिहिं अवतरिउ, राजा मन्त्री मलहारूजी
देसण वाणी अमिय रस बोलइ, धन-धन श्रीधनसारूजी
केसी गणधर तणइं अनुक्रमि, श्रीसिद्धसूरि गुरु सामूंजी
संघ सहित धनसार उभाइ, संप्रति जीऊ कोडि वरुसीजी

(२)

धनसार वधामणां गीत

सरसति सामिणि मन धरी ए, गाहिसु सुविहित सार
भवियण मनि आणंद धरी ए, चउद विद्या भण्डार
चितांभणडउ गइ गहई, धन-धन श्रीय धनसार
साकर द्राास सुहमणि है, मधुरउ ता मधु जाणि
अभीय नमिउ उजाणीयइ है, सम्भलि सुह गुरु वषांणि
कुलमण्डण एह अवतरिउ है, राजा मन्त्री मलहार
धनराजलदे उरि धरिउ है, उवएसगच्छ सिणगार
वांणि सहजि सोहमणि है, आगम करइ वषाण
मूरति अति रलियामणी है, मानइ राय सुलतांण
हियडइं अरिहंत नितु धरइ है, जाणइ छन्द प्रमाण

पञ्चमहाव्रत धरइ है, वादीय मोटड मोण
पञ्च प्रमेष्ठि मनि नितु वमइ है, पञ्च विनय परिहार
दीठइ जन मन उल्हसइ है, मूवउ करउ आचार
सोवनमेरु गणि वीनवइ है, श्रीय धनसार मुणिद
सुह गुरु उवभाय जयवन्ता है, प्रति पउ जा रवि-चन्द

इति वधामणा गीत

धनसार के एक शिष्य कीर्त्तिकल्लोल[1] थे। यह भी सस्कृत साहित्य पर अधिकार रखते थे। यद्यपि इनकी कोई स्वतन्त्र रचना उपलब्ध नही हुई है और न ही किसी जैन साहित्य के प्रकाशित इतिहास मे इनका नामोल्लेख हुआ है पर मेरे सग्रह को एतत्गच्छीय[2] पट्टावली

---

१ ' ' ' श्री पाठक धनसारनामा
तन्मुख्यशिष्य सुगुणै समृद्ध श्रीकीर्त्तिकल्लोल इति प्रसिद्ध
—मुनि पुण्यविजय-प्रशस्त्यादि सग्रह, पृष्ठ ८३

२ यह कृति केवल गुरुमालिका ही नही है, अपितु, तत्सम्बद्ध ऐतिहासिक सन्दर्भ से भी युक्त है। इसमे इस गच्छ के आचार्यों द्वारा समय-समय पर लिखवाये आगमो की विस्तृत पुष्पिकाए भी सकलित हैं और कतिपय आचार्यों की चरण-पादुकाओं के लेख भी उद्धृत हैं, जबकि इस प्रकार की सामग्री पट्टावलियो मे नहीं पाई जाती। साथ ही प्रकाशित पट्टावली की अपेक्षा उत्तरकालिक अनेक नव्य तथ्य सकलयिता ने सूचित किये हैं। ज्ञात होता है कि किसी इतिहास प्रेमी यति ने स्वान्त सुखाय इसका प्रणयन किया है।

में इन द्वारा रचित ३४ पद्यात्मक कल्पसूत्र की[1] प्रशस्ति उद्धृत है। इसमें कवि ने देशल और उनके पारिवारिक व्यक्तियों का विशद् परिचय दिया है। साथ ही उपकेशगच्छीय आचार्यों के जीवन-सम्बद्ध प्रधान प्रसंगों की ओर भी संकेत किया है। इसका रचना काल सं० १५५८ है।

धनसागरोपाध्याय के एक शिष्य देवतिलक भी थे जिनने कल्याण-मन्दिरस्तोत्र पर सौभाग्यमंजरी वृत्ति रची (पुण्यविजय, प्रं० पृष्ठ ९७)।

देवकल्लोल

जैन गूर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ ५०९ पर इन्हें सिद्धसूरि का शिष्य बताया गया है। परन्तु इनने स्वयं अपने को स्व-रचित कलिकाचार्यकथा[2] की अन्त्य प्रशस्ति में कर्म्मसागर का विनेय संकेतित किया है। इस तथ्य का समर्थन इन्हीं के शिष्य देवकलश प्रणीत ऋषिदत्ता चौ० (रचना काल सं० १५६९) से होता है। मेरे संग्रह की उपकेशगच्छीय पट्टावली में इस प्रकार का उल्लेख है—

तत्पट्टे सिद्धसूरयः गुणभूरयः, संवत् १५६५ वर्षे श्रीश्रेष्ठीगोत्रे मन्त्रीश्वरदशरथात्मजेन मन्त्रीश्वरलोलागरेण मेदिनीपुरे, पद

---

१. तस्मिन्समये सं० १५२८ वर्षे श्रीकीर्त्तिकल्लोलनाम्नासाधु अभूत् तेन कल्प-सूत्रस्य प्रशस्ति कृता चतुत्रिंशत्वृत्तो साच इयं।

वाचनाचार्य श्रीकीर्त्तिकल्लोलानं च प्रेरणाम्
सहोद्यमं हृदि धृत्वा श्रद्धायुक् समलीलिखम् ३३
वसु-बाण-शर-चन्द्र (१५५८) वर्षे हर्षेण पुस्तकं
दत्त आचंद्रार्कं यावत् नन्दतु दाता सदा नित्यं ३४

कल्पसूत्रस्य प्रशस्ति, स० १५५८ वर्षे माघ सुदि १ रवौवासरे। यह प्रति अन्वेपणीय है।

२. श्रीकालिकाचार्यकथासंग्रह, पृष्ठ १८५–९१, यह प्रति सं० १५७६ में उदयपुर के समीप डभोकग्राम में प्रतिलिपित हुई है. प्रणयन काल है सं० १५६६।

महोत्सव कृत तदा उपाध्याय देवकल्लोलनाम्ना कालिकाचार्य कथा। प्रान्ते यदुक्त यथा—

श्रीमदकेशगच्छीया कर्मसागरपाठका
तच्छिष्यो देवकल्लोलोऽकार्षीत् हर्षात् कथामिमाम् १०३
श्रीविक्रमनृपात् पट्षट्पचेकमितिवत्सरे
जाता कथेय मुनिर्भिचिता वन्दिता चिरम् १०४

पुन देवकल्लोलेन श्रीमद्रत्नप्रभसूरीणा स्तव कृता विद्यते, पनरपि सत्यकायास्तुतय अनेक स कृता दृश्यते, पर गुरुगम्य।

देवकल्लोल की कतिपय स्फुट स्तुतिमूलक रचनाए मेरे सग्रह मे सुरक्षित है। पर रत्नप्रभसूरि के गीत अन्वेपणीय हैं। इनके अन्तेवासी देवकलश ने स० १५६९ मे ऋपिदत्ता चौ० का प्रणयन किया, (जैन गूर्जर कविओ भाग १, पृष्ठ १२०)।

पद्मतिलक और हसराज के विपय मे ज्ञातव्य प्राप्त नही है। पट्टावलीकार भी नाम के अतिरिक्त कोई मूल्यवान् सूचना नही देता है।

मतिसागर

मतिसागर नामक एकाधिक व्यक्तियो का उल्लेख जैन साहित्य मे पाया जाता है। प्रथम मतिसागर का सकेत आचार्य परिचय रेखान्तर्गत स० ५७ मे किया गया है जो खदिरीशाखा के उद्भावक थे। दूसरे मतिसागर वह थे जिन्हे देवगुप्तसूरि ने उपाध्याय पद प्रदान किया था। तीसरे मतिसागर आगमगच्छीय धधूकाशाखीय अमररत्नसूरि-सोमरत्नसूरि-गुणनिधानसूरि-उदयरत्नसूरिशिष्य गुणमेरु के विनेय थे और स० १५६४ मे इनने लघुक्षेत्रसमास तथा स० १६०५ मे सौभाग्यसुन्दरसूरि के समय मे

संग्रहणी पर विवरण लिखा[1]। चंपकसेन रास के प्रणेता भी यही जान पड़ते हैं[2], कारण कि दोनों में कालिक साम्य है।

मेरे संग्रह की उपकेशगच्छ पट्टावली में सर्वथा अज्ञात मतिसागर का उल्लेख प्राप्त है[3]। विभिन्न मतिसागरों पर विचार करने की अपेक्षा अत्रं अभिष्ट यह है कि खदिरीशाखा के प्रवर्त्तक और देवगुप्तसूरि द्वारा प्रदत्त उपाध्याय पद वाले एक ही है या भिन्न? प्रथम मतिसागर को उपकेशगच्छ की पट्टावली में अड़सठवें आचार्य देवगुप्तसूरि का शिष्य बताया गया है, परन्तु दूसरे मतिसागर किसके शिष्य थे? स्पष्ट नहीं है। शाखावाले का समय सं० १४९८ पड़ता है, दूसरे का सं० १५२८। दोनों के मध्य ३० वर्ष का अन्तर है। यहां विचारणीय यह है कि जो व्यक्ति स्वतन्त्र शाखा निकालने की क्षमता रखता हो वह किसी पद विशेष की अपेक्षा रखेगा? और अन्य शाखीय मुनि को इसी गच्छ के परवर्त्ती कोई आचार्य पद प्रदान कर सम्मानित करेगा? सम्भव तो यही जान पड़ता है कि सं० १५२८ में उपाध्याय पद प्राप्त व्यक्ति शाखा प्रवर्त्तक से भिन्न ही हो सकते हैं। परन्तु दूसरे मतिसागर किसके शिष्य थे? यह गर्भित है।

---

१. जैन गूर्जर कविओ भाग ३, पृष्ठ ६१५–६१८।

२. जैन गूर्जर कविओ भाग ३, पृष्ठ ५०६–५५।

३. देसाई महोदय ने इस कवि को आगमिक मतिसागरोभिन्न माना है, परन्तु उस युग में इस कवि के अतिरिक्त और समान नामधारी कवि का अस्तित्व ज्ञात नहीं हैं। यह मुनि सिद्धसूरि के शिष्य वाचक वीरसुन्दर के अन्तेवासी थे। इनका समय सं० १६६३ है। मतिसागर के प्रशिष्य और वाचक भावरत्न के शिष्य धर्मसिंह ने धातुतरगिणी का प्रणयन किया। यह भी संयोग की वात है कि सं० १६६३ मे ही वृहत्तपागच्छीय चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्त्तिसूरि ने भी इसी नाम पर इसी विषय की रचना की है, जिनरत्नकोश, पृष्ठ १९६।

आचार्य देवगुप्तसूरि का नव्य लेख सं० १४७० का प्रकट किया जा रहा है। अतिरिक्त प्रतिष्ठालेख बुद्धिसागरसूरि संग्रह भाग १, १५०२-४-१९-२१-२७, नाहर भाग १, १५२८-४६-४८-५६-५८-५९-६३, भाग २, १५२८-३४-३५-३७-४४-४६-५८-५९, बुद्धिसागरसूरि भाग १५३०-३३-३६, जैनयुग वर्ष ५ पृष्ठ ८ ४६९, १५३२ नाहर भाग ३, १५३८-४२, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प०) १५२८, मुनि कान्तिसागर १५०७ (?) आदि संग्रहों में पाये जाते हैं।

निज दैनन्दिनी से—सं० १५२१।

(६०) देवगुप्तसूरि—(लेखांक २७८) द्विवदनीक

द्विवदनीक उपकेशगच्छ की एक शाखा है। इसका प्रादुर्भाव सिद्धसूरि से हुआ, आगमगच्छ से इस परम्परा ने समाचारी और सूरिमन्त्र ग्रहण किया। नमस्कार महामन्त्र के पद में भी हवई के स्थान पर होई कहने लगे। उपधान और माला का भी विरोध हुआ। एतद्गच्छीय पट्टावली में सं० १२६६ में उद्भूत द्विवदनीकों के सम्बन्ध में इस प्रकार उद्गार व्यक्त किये हैं—

रस रस दिनकरवर्षे मासे मधुमाधे च सञ्जियाम्
जाता द्विवदनीका श्रीमत्श्रीसिद्धसूरिवरा
आगमगच्छाद् गृहीत समाचाराति सूरिमन्त्रवर
परमेष्ठिप-ोच्चारणगृहीतनियत प्रतिक्रमणे
द्विवदनीकास्तु ते जाता द्वादशावर्तवंदनासमये
वैराग्यरंगसागरसत्सूत्रे सावधानास्ते
नमस्कारे च होईति मंगल च द्विवदनम
नोपधान न मालापि गच्छेऽस्मिन्नीदृशो क्रिया[1]

---

[1] होई और हवई की शास्त्रीय चर्चा के लिए उपाध्याय मुनिवर श्रीसुखसागर जी महा० द्वारा सम्पादित समयसुन्दर—समाचारीशतक दृष्टव्य है पृष्ठ १२३।

आगे चल कर शालिभद्र, देवयश, भुवनचन्द्र, रत्नतिलक, सिद्धसूरि, वाचक श्रीचन्द्र, शुभकीर्त्ति, जयतिलक, सोमप्रभ आचार्य-मुनियों के नाम दिये हैं, जो इस परम्परा के अनुयायी थे।

इस गच्छ के आचार्य और मुनि-परम्परा की विस्तृत गुरुमालिका उपलब्ध नहीं है। प्राप्त ऐतिहासिक साधन के आधार पर स्व० मोहनलाल देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३, पृष्ठ २२८५ पर व्यवस्थित पट्टक्रम देने का प्रयास किया है। बताया है कि पार्श्वनाथ और महावीर को ये लोग वन्दना करते थे, इस कारण से द्विवंदनीक सज्ञा से पूरी परम्परा अभिहित हुई। श्री मोहनलाल देसाई ने जै० गु० क० भाग ३ पृष्ठ २२८२ पर सूचित किया है कि कक्कसूरि प्रविनेय धर्मरुचि के शिष्य सिंहकुल ने सं० १५५० में मुनिपतिचरित्र की रचना की। परन्तु कवि तो इस संग्रहस्थ प्रतिमालेख के आचार्य देवगुप्त के शिष्य थे जैसा कि वह स्वयं स्वरचना में स्वीकार करते है—

बिवंणीक गद सोहि गणधार श्रीदेवगुप्तसूरि जयकार
तास शिष्य सिंघकुल इम मणि साभलता नव नीथ्यं श्रंगणइ

इनके एक अज्ञात शिष्य द्वारा अमरदत्त मित्राणंद रास सं० १६०६, ऊंभा में रचित प्राप्त है। इनके अन्य लेख केवल बुद्धिसागरसूरि-संग्रह में सं० १७७३–९९ प्राप्त हैं।

(६१) देवरत्नसूरि - (लेखांक १३०–६२–२११) आगमगच्छीय

यह आचार्य आगमगच्छीय विद्याविलासी जयानन्दसूरि के पट्टधर थे। सं० १४९९ की रचना देवरत्नसूरि फाग से प्रतीत होता है कि अणहिल्लपुरपत्तन उन दिनों आगमगच्छीय परम्परा का प्रधान क्षेत्र था। वहीं पर चांपसी पेथडके कुल में प्राग्वाट्करणिग की पत्नी कुतगदे की रत्नकुक्षि से सं० १४६२ में इनका जन्म हुआ। बाल्य नाम था जावड़। रूप गुणों के साथ-साथ जावड़ की प्रतिभा कौलिक संस्कारों के कारण विकसित होने

लगी। जयानन्दसूरि ने महापुरुषोचित लक्षणो से अनुमित किया कि यह बालक भावी शासन-प्रभावक हो सकता है। वीतरागवाणी को जीवन मे साकार किये माता-पिता के समक्ष उनने यह विचार उपस्थित किया। दोनो ने इस प्रस्ताव को शुभ कर्मोदय समझा। वे शासन सेवार्थ न केवल जावड को ही सदा के लिये समर्पित करने को तैयार हुए, अपितु, स्वय दम्पत्ति भी गुरु सुश्रुषार्थ तत्पर हो गये। पाच वर्ष की लघुवय मे ही पूरे परिवार के साथ स० १४६७ मे जयानन्दसूरि के समीप पाटन मे सयम स्वीकार किया। आगमगच्छ-सम्बद्ध ऐतिहासिक प्रशस्ति और पुष्पिकाओ से प्रमाणित है कि उन दिनो उनका प्रभाव बहुत व्यापक था। श्रुतभक्ति के वशीभूत होकर इनने प्रभूत साहित्य प्रतिलिपित करवाया था[1]। योग्य और सस्कार सम्पन्न गुरु के चरणो मे बैठकर क्षुल्लक मुनि ने सारस्वत साधना प्रारम्भ की। सयम की आराधना के साथ इनने स्वल्प समय मे ही शिक्षा के क्षेत्र मे उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर ली। स० १४९३ वैशाख शुक्ला पचमी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। आचार्य जीवनकाल को आलोकित करने वाले ऐतिहासिक साधन अनुपलब्ध हैं।

स्व० मोहनलालभाई देसाई ने प्राप्त प्रतिमालेखो के आधार पर पुरस्कृत आगमिक आचार्यक्रम मे देवरत्नसूरि के गुरु जयानन्दसूरि के एक अन्य पट्टधर विविकरनसूरि का उल्लेख किया है। वह विचारणीय है। तथ्यत वे जयानन्द के सीधे पट्टधर नही थे। पारम्परिक अवश्य थे।

---

१ मुनि जिनविजय जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य-सचय, पृष्ठ १५०-५८। आचार्य जयानन्दसूरि स्वय भी बाल दीक्षित थे। व्याकरण, छद, अलकार, काव्यादि के अतिरिक्त गणित शास्त्र के विशेषज्ञ थे। स्व-समुदाय मे प्रविष्ट शैथिल्य के प्रति जागृत थे, इनने अनेक ग्रन्थो को प्रतिलिपित करवाकर श्रुत साहित्य की रक्षा मे उल्लेख्य योग दिया —

श्रुतलेखनमथाचार्यभृतीनि बहूनि पुण्यकार्याणि।
याऽकार्षीद् विविधानि च पूज्यजयानन्दसूरिगिरा॥

अनुयोगद्वार वृत्ति, ओघनिर्युक्ति, कल्पसूत्रादि की अन्त्य प्रशस्तियो मे यह पद्य समुद्धृत है।

सूरिवर ने अपने किसी भी प्रतिमालेख में जयानन्द को पूव पट्टधर नहीं बताया। इन द्वारा लिखवाये ग्रन्थों की प्रशस्तियों में भी :—

आगमगच्छे विभूनां सूरिजयानन्दसद्गुरोः क्रमतः

उल्लेख मिलता है। क्रमतः शब्द ध्यान देने योग्य है। सं० १५७१ में इसी परम्परा के मुनिद्वारा प्रतिलिपित सन्देहविषौषधि की लेखन पुष्पिका में पट्टक्रम इस प्रकार दिया है:—जयानन्दसूरि-देवरत्नसूरि-शीलवर्द्धनसूरि-शीलरत्नसूरि-विवेकरत्नसूरि, (प्रशस्ति-संग्रह, अहमदाबाद, पृष्ठ ७६)।

विवक्षित देवरत्नसूरि शिष्य शीलसिंह ने प्राकृत भाषा में स्वोपज्ञ कोष्टकचिन्तामणि का प्रणयन किया।[1] इस कवि ने श्रीचन्द्रचरित्र की भी रचना की। इसकी अन्त्य प्रशस्ति आगमगच्छीय-सूरि-परम्परा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।[2] विचारणीय है इसका प्रणयन समय। मुनि पुण्यविजयजा ने तेनोदधि-निधि-वेदेन्दु पाठ के आधार पर रचना सं० १४१४ स्वीकार किया है। वह ऐतिहासिक काल-क्रम को देखते हुए सत्य प्रतीत नहीं होता, बल्कि प्रशस्त्यन्तर्गत तथ्य से ही सं० १४१४ सन्देहात्मक स्थिति खड़ी कर देता है। कारण कि सं० १४७७ का वर्णन तो प्रशस्ति में ही किया गया है। अतः सं० १४१४ की रचना तो किसी भी दृष्टि से मानी ही नहीं जा सकती। कवि ने अपने पूज्य के प्रति

श्रीदेवरत्नसूरिप्रवरास्तत्स्थापिता गुरुगणाद्याः।
गुरुसेविनो जयन्ति ग्रथितानेकोत्तरग्रन्थाः ॥४८॥

उद्गार व्यक्त किये हैं जिनका जन्म ही सं० १४६२ में हुआ था, आचार्य पद सं० १४९३ में प्राप्त किया। इससे स्पष्ट है कि रचना समय इतः पश्चात्

१, सिरिदेवरयणगुरुवरगुणलंकियसीलसालि मुणिसिंघो।
तस्सीसु कट्टपुरणसुरमणिगंथं इमं भणइ ॥ १५१

इति कोष्ठकचिन्तामणिग्रन्थः सार्द्धशतकल्पः सम्पूर्णः/श्रीआगमगच्छेशश्रीदेवरनसूरिवरशिष्यवाचनाचार्य पं० शीलसिह (सूरेः) कृतिरियं चिरं जीयात्।
—केटलोग ओफ सं० प्र० मं० प्रशस्तयादिसंग्रह, पृष्ठ २७०।

२. वही पृष्ठ २३३-३८।

ही सम्भव है। सकेतित समयावधि मे आगमिक परम्परा मे इस नाम का और कोई हुआ ही नही है। मेरी विनम्र सम्मति मे चन्द्रचरित्र का रचना काल स० १४९४ या १४९७ होना चाहिये। (इन्दु १ वेद ४ निधि ९ और उदधि/समुद्र से ४ या ७)।

देवरत्नसूरि के लिये अनेक ग्रन्थ 'प्रणेता' शब्द का व्यवहार किया है परन्तु इनकी कोई रचना दृष्टिगोचर नही हुई। त्रिपुटी महाराज ने जैन परम्परा के इतिहास (भाग २ पृष्ठ ७४९) पर बताया है कि नमो लोए सव्वसाहूण पद के सव्व शब्द पर ३९ अर्थ का विवरण प्रस्तुत किया है और वह भी स० १५७१ मे, जबकि इनका अस्तित्व ही उन दिनो नही था।

इनके स० १५११-१९-३१ के नव्यलेखातिरिक्त नाहटा १५१६-१७, नाहर भाग २-१५२५-३२, भाग १—१५१७, विद्याविजय १५१३-२३-२५-३१, विनयसागर १५१७, बुद्धिसागरसूरि भाग २, १५१६-१८-२५-२७-२९-३०-३१-३३ भाग १—१५११-३ जैन सत्यप्रकाश वर्ष २ पृष्ठ ५८१-१५१३।

(६२) देवसुन्दरसूरि—(लेखाक ४६-५६) तपागच्छीय

जैन साहित्य सरक्षण और पुनरुद्धार के मगलमय इतिहास मे देव-सुन्दरसूरि का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये सोमतिलकसूरि के पट्टधर और गच्छ के उनचासवे आचार्य थे। इनका जन्म स० १३८६ मे (लघु पोसालिक पट्टावली मे जन्म स० १३९६ दिया है) हुआ था। त्रिपुटी महाराज ने तो जन्म स० १९३६ दिया है जो अत्यन्त आश्चर्यजनक है, (जैन परम्परानो इतिहास भाग ३ पृष्ठ ४३१)। स० १४०४ मे दीक्षा अगोकार की और १४२० मे पाटन के सघ ने आचार्य पद पर स्थापित किया। इनका प्रभाव न केवल तात्कालिक समाज पर ही था, अपितु, पत्तनस्थ योगी कणयरीपा ने समाधिस्थ होते हुए अपने शिष्य उदयीपा के सम्मुख इनके गुणो की हार्दिक प्रशसा कर इन्हे सिद्धयोगी बताया था। अकलुष-हृदयी आचार्य ने दायित्वपूर्ण पद आते ही शिष्यो को ज्ञानोपासनार्थ प्रेरित किया। ज्ञानसागरसूरि, गुणरत्नसूरि, कुलमण्डनसूरि और सोमसुन्दरसूरि ऐसे शिष्य आचार्य हुए जिससे साहित्य और शासन यशार्जित हुआ।

देवसुन्दरसूरि के जीवन का स्मरणीय कार्य यह था कि उनने सांस्कृतिक उपादानों की ओर जैनसंघ का ध्यान आकृष्ट किया। भारतीय लेखन कला के इतिहास में तालपत्रों का बाहुल्य था, परन्तु इनके समय में—विशेषकर पश्चिम भारत में—इसका प्रचार सीमित हो चला था। इतःपूर्व काश्मीर आदि भू-भागों में भूर्जपत्र/भोजपत्र का प्रचलन था। दोनों की उपलब्धि सन्देहास्पद स्थिति पर पहुँच चुकी था। मलाया और मलबार से आयात किया जाने वाला तालपत्र आना बन्द हो चला था। मुसलमानों के आगमन के कारण कागज का विकास हो चुका था। देवसुन्दरसूरि ने तालपत्रों पर लिखित साहित्य का कागजीय संस्करण तैयार करवाया। यही कार्य राजस्थान में जिनभद्रसूरि सम्पन्न कर रहे थे। इस युग की सहस्त्रों प्रतियाँ उपलब्ध है।

इनके सं० १४४४ और १४६५ के दो लेख के अतिरिक्त प्रतिष्ठालेख नाहटा–१४६६–६७–३८, नाहर भाग २, १४५८, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १४६६, भाग २, १४४७, विद्याविजय १४–६, विनयसागर १४६५, मुनि जयन्तविजय अर्बु० जैन सत्यप्रकाश वर्ष ९ पृष्ठ ३८२–१४६८ आदि संग्रहों में पाये जाते हैं।

(६३) देवसुन्दरसूरि—(लेखांक ३२३) वृहत्तपागच्छीय

दृष्टि सम्पन्न अन्वेषक की जिज्ञासा असीम होती है। वह असीम साधन-सूत्र के माध्यम से अचिन्तित नव्य-भव्य तथ्यों का उद्घाटन कर चमत्कार उत्पन्न करता है। पर्याप्त गवेषणानन्तर भी वांछित तथ्योपलब्धि के अभाव में वह पुनः धैर्य और साहस के साथ अनुसन्धान में अपने आपको समर्पित कर देता है। शोध का क्षेत्र ही ऐसा प्रशस्त है कि उसमें प्रश्न चिह्न को यथासम्भव अवकाश नहीं होता। यथार्थत्व प्राप्ति की प्रबल तितिक्षा उसे सत्य के समीप एक दिन ला खड़ा करती है। अनुशीलन के अन्तराल में आगत कठिनाइयां उसका आनन्द हैं। भुक्तभोगी ही इसका अनुभव कर सकता है। ऐसी ही स्थिति का सामना इस सग्रह में प्रकाशित स० १६–६ लेख के लिए करना पड़ा। लेख मे केवल एक ही अंक विलुप्त है, और प्रतिष्ठापक है तपागच्छाचार्य देवसुन्दरसूरि।

मानसपटल पर सहज ही विचार-रेखा उभरती है कि यह आचार्य तपागच्छ की किसी शाखा से सम्वद्ध थे और इनका वास्तविक अस्तित्व-काल क्या हो सकता है ? हमारे यहा अभी सभी गच्छ और तत्सम्वद्ध-शाखा-प्रशाखाओ का समाधान ग्रन्थगत प्रशस्ति, पुष्पिका, प्राप्त प्रतिमालेख तथा शिला-लिपियो से लेना पडता। एतद्विषयक साधन भी प्रभूत परिमाण मे तो समुपलब्ध नही हैं, तथापि प्राप्याधार बहुत कुछ अशो मे उलझनो को सुलझाने मे सहयोग देते हैं।

विनयसागर-सग्रह मे स० १६३७ की तीन शिलोत्कीर्णित प्रशस्तिया प्रकाशित हैं। (लेखाक १०३२-३३-३४)। उनमे से दो का सम्बन्ध देवसुन्दरसूरि से है। इनमे बताया गया है कि स० १६३७ मे बागडप्रदेश के गिरिपुर-निवासी हुम्बडज्ञातीय परिवार के कोटनगर[1] मे सम्भवनाथ चैत्यालय मे एक-एक देवकुलिका बनवाई। उनमे सुविधिनाथ और चन्द्रप्रभु के बिम्ब स्थापित किए जिनकी प्रतिष्ठा वृद्धतपागच्छीय धनरत्न-सूरि-तेजरत्नसूरि के पट्टधर देवसुन्दरसूरि ने सम्पन्न की। इस अवसर पर विनयचरित्र[2] भी साथ थे। सम्भव है वे वहा के स्थायी आवासी रहे हो। धनरत्नसूरि के प्रशिष्य उपाध्याय नयसुन्दर ने स्वनिर्मित

---

१ यह स्थान गिरिपुर/डूंगरपुर से तैंतीस मील और सागवाडा से ग्यारह मील के अन्तर पर अवस्थित है। वर्तमान मे गलियाकोट नाम से विख्यात है। किसी समय वृहद्तपागच्छीय आचार्यों का विचरण-केन्द्र था। आज भी यहा लेख-सूचित प्रासाद विद्यमान है। माही के तट पर पुरातन दुर्ग के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। इस्लाम-शिया मत के दाऊदी बोहरो का यह तीर्थस्थान है। फखरुद्दीन की दरगाह बनी हुई है जिनके पिता राजपूत और सिद्धराज जयसिंह के मन्त्री तारामल थे। अरब के मौलाना अब्दुल्ला ने इन्हे इस्लाम मजहब मे दीक्षित किया था।

२ इसने स० १६२८ श्रावण सुदि ५ गुरुवार कोटनगर मे हुम्बड जातीय बाई रत्ना के जिनदास प्रणीत यशोधररास प्रतिलिपित किया। यह वृद्धतपा-गच्छ की परम्परा के थे, इससे लगता है इस परम्परा की गद्दी गलिया-कोट मे थी।

पट्टावली में केवल इतना ही संकेत दिया है : सिरिदेवसुन्दराहा विरहन्ता विजयसुन्दरा गुरुणो। अपनी रचना यशोधरनृपरास में 'देवसुन्दरसूरि दिनकर विजयसुन्दरसूरि पट्टधर' (प्रणयन काल सं० १६१८) और अन्तिम उल्लेख सं० १६६५ नल दमयन्ती-चरित्र में 'श्रीदेवसुन्दरसूरि आणंदसूरि विजयमाँन विजयसुन्दरसूरि' किया है। यों तो आत्मप्रतिबोध में भी संकेत है, परन्तु वह असंवतीय रचना है। प्रथम उल्लेख से प्रामाणित है कि सं० १६१८ में देवसुन्दरसूरि आचार्य बन चुके थे। आश्चर्य इस बात का है कि बृहत्पोसालिक पट्टावली की वृत्ति इनके सम्बन्ध में मौन है। वहां तो केवल इतना ही सूचित है कि देवरत्नसूरि, अमररत्नसूरि के शिष्य थे। यह शाखा प्रवर्त्तक थे, इसी कारण से यह अपने को तेजरत्नसूरि का पट्टधर वताते हैं। नयसुन्दर स्वयं अपने संस्कृत भाषा के ग्रन्थों की प्रशस्तियों में तेजरत्न के बाद देवरत्नसूरि का उल्लेख करते हैं। अतः यह तो असंदिग्ध है कि दोनों आचार्य भिन्न थे, परन्तु पट्टावली में कालक्रम का अभाव होने से कौन कब तक रहा? यह बताना सरल नहीं। परन्तु इतना निःसंकोच कहा जा सकता है कि देवरत्नसूरि के बाद ही देवसुन्दरसूरि का स्थान है। जब इन्हें तेजरत्नसूरि का पट्टधर मानते हैं, जैसा कि सं० १६३७ लेख से प्रमाणित है, तो इन्हें आचार्य पद कब मिला यह प्रश्न होगा। तेजरत्नसूरि का प्रतिष्ठालेख सं० १६१५ का नाहर-संग्रह में (लेखांक १३०७) प्राप्त है, अतः इस संग्रह में प्रकाशित लेख का समय सं० १६२६-४६ का मध्यवर्त्ती माना जाना चाहिए। सं० १६३५ वै० व० ११ को देवसुन्दरसूरि ने कोटनगर में प्रतिष्ठा की थी, (विनयसागर : १०३१ लेखांक)।

हुम्वड-गांधी परिवार द्वारा कारित सम्भवनाथविम्व पर उत्कीर्णित सं० १७८१ के लेख में इस परम्परा की पट्टावली इस प्रकार मिलती है—श्रीधनरत्नसूरि-अमररत्नसूरि-तेजरत्नसूरि—देवसुन्दरसूरि—विजयसुन्दर—

सूरि-लब्धिचन्द्रसूरि-विनयचन्द्रसूरि-धरचन्द्रसूरि-उदयचन्द्रसूरि-जयचन्द्र-सूरि (इसी मन्दिर की अन्य प्रतिमा लेखो के आधार पर)—शान्तिसागर-सूरि और नयरत्नसूरि।

इन लेखो से पता चलता है कि उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक हुम्बड जाति पर वृद्धतपागच्छीय मुनियो का प्रभाव था। नहीं कहा जा सकता है कि ये सर्वांशत त्यागी ही थे।

ध

(६४) धनरत्नसूरि—(लेखाँक २७५) वृद्धतपागच्छीय

श्रुतोद्धारक, विद्वान् ग्रन्थकार और वृहत्तपागच्छीय आचार्य लब्धि-सागरसूरि के पट्टधर धनरत्नसूरि बहुत प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। जाति से श्रीमाली, कर्णावती के निवासी साधु समधर के पुत्र मन्त्री वापा के पुत्र थे। माता का नाम अधकू था। धनरत्नसूरि का इससे अधिक वैयक्तिक परिचय प्राप्त नही है। वृहत्पोसालिक पट्टावली भी इससे अधिक संकेत देने में समर्थ नहीं है। वह केवल एक ही महत्वपूर्ण घटना की सूचना देती है कि हेमविमलसूरि के चरणसेवी, सहस्रार्थीविरुद से विख्यात हर्षकुल गणि ने प्रमुदित मन से पन्द्रह विद्वतापूर्ण संस्कृत पद्यों द्वारा इनकी स्तुति की थी[1]। इसी से तात्कालिक आन्तरसाम्प्रदायिक सौमनस्य का अनुभव होता है।

उदयसागरसूरि ने पांच आचार्य स्थापित किये थे उनमें धनरत्नसूरि भी थे, जो पुरुष-सरस्वती के पट्ट पर हुए। स्थापना काल अज्ञात है। उदयसागरसूरि दीर्घकाल तक अर्थात् सं० १५३३ से १५७३ तक शासन

---

१. विविधगच्छीय पट्टावली-संग्रह मे इन पद्यों का पृष्ठ ३४—३५ पर प्रकाशन हुआ है, अन्तिम पद्य है—

एवं विनु.................भक्त्या हर्षकुलेनामलन

सत्काव्यः श्रीशशिगणनाथा धनरत्नसूरिशाः

सेवा मे दत्तचित्त रहे[1]। इनके पूर्व—पट्टाधीश ज्ञानसागरसूरि के लेख स० १५३१ तक मिलते हैं। अत सम्भव है स० १५३० तक यह आचार्य पद पर स्थापित हो चुके होगे। इस कथन के समर्थन मे आचार्य शीतल-सागरसूरि का स० १५३० का (विद्या वि० लेखाक ४३३) उपलब्ध है। प्रस्थापित पाच आचार्यो मे यह भी एक थे। इस लेख मे वह उदयसागर-सूरि शिष्यत्व स्वीकार किए हुए हैं। ऐसी स्थिति मे यह मानना पडेगा कि धनरत्नसूरि को भी आचार्य पद लगभग सकेतित समय ही मिला था। स० १५३८ की लब्धिसागरसूरि की प्रतिलिपित रचना प्राप्त है, (जैन गूर्जर कविओ, भाग ३ पृष्ठ ५२७)। सम्भव है निर्माण इससे भी पूर्व किया हो।

सहज ही एक प्रश्न उठता है कि जब उदयसागरसूरि द्वारा पाचो को आचार्य पद अनुमति स० १५३० मे दिया गया तो क्या कारण है कि धनरत्नसूरि के प्रतिष्ठालेख स० १५६० से ही मिलते है? क्या इत पूर्व इन्हे कही प्रतिष्ठा-कार्य सम्पादन कराने का अवसर नही आया था? मान लिया जाय कि वृद्ध और पूज्यश्री के रहने के कारण ऐसा प्रसग भी न उपस्थित हुआ तो भी सोमसुन्दरसूरि के समान सामूहिक प्रतिष्ठोत्सवलेख उल्लिखित होने ही चाहिए था।

धनरत्नसूरि ने सौभाग्यसागर को आचार्य पद प्रदान किया था। इनके शिष्य परम वैयाकरण उदयसौभाग्यगणि ने ऊपर ससूचित हर्षकुल

---

१ उदयसागरसूरि का अस्तित्वकाल अनेक प्रशस्ति और प्रतिमालेखों से असदिग्ध होन के बावजूद भी त्रिपुटी महाराज इसे हीरविजयसूरि का समकालिक आचार्य बता रहे हैं जो हास्यास्पद है (जैन परम्परानो इतिहास भाग ३ पृष्ठ २६)। सच बात तो यह है कि हीरविजयसूरि का जन्म ही स० १५८३ मे हुआ था और इत पूर्व इनका देहोत्सर्ग हो चुका था। इस नाम के और कोई आचार्य तपागच्छ मे सूचित युग मे नही हुए।

गणि से व्याकरणशास्त्र का सर्वांगपूर्ण अध्ययन कर हैमप्राकृतढुंढिका अर्थात् व्युत्पत्तिदीपिका का सं० १५९१ में स्तम्भतीर्थ/खम्भात में प्रणयन[1] किया।

धनरत्नसूरि की परम्परा का उल्लेख नयसुन्दर ने इस प्रकार किया है—

सिरिधणरयणगणाहिवअमराओ रयणतेअओ रयणा
गुरुभायया गुणन्नू सूरिवरो देवरयणो य १८

इनके पट्टधर प्राग्वाट्ज्ञातीय पत्तनवासी साधु अचत की धर्मपत्नी चन्द्रावती-कुक्षी-सम्भूत, सवालक्ष हैमशब्दानुशासन के निर्णेता अमररत्न-सूरि हुए। इनने तेजरत्न, देवरत्न, कल्याणरत्न और सौभाग्यरत्न को सूरि पद प्रदान किए। प्रथमातिरिक्त सभी नव्य शाखा के संस्थापक माने जाते हैं। तेजरत्नसूरि स्तम्भ/खम्भात निवासी वीपक की पत्नी हरखाई के पुत्र थे, अमररत्न के गुरुबन्धु। इनका और इनकी परम्परा का वागड़-प्रदेशस्थ जैनसंघ पर पर्याप्त प्रभाव था। गिरिपुरनिवासी और व्यापारार्थ सागरपत्तन/सागरपुर/सागवाटक/सागवाड़ा में निवास करने वाले नाकर ने वहीं पर शिखरबद्ध पार्श्वनाथ-प्रासाद बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा तेजरत्नसूरि द्वारा सम्पन्न हुई। बागड़ की प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थों की पुष्पिकाओं से पता चलता है कि परम्परा की गद्दी गलियाकोट, सागवाड़ा और डूंगरपुर में थी। कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि जिनवल्लभसूरि और जिनदत्तसूरि ने जो श्रमणसंस्कृति के बीजों का यहां वपन किया था, कालान्तर में वृहद्तपागच्छीय परम्परा ने पल्लवित-पुष्पित किया।

---

१. जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास पृष्ठ ७९ मे प्रो० हीरालाल कापड़िया इस कृति को सौभाग्यसागर की रचना मान रहे है जो रचयिता के गुरु थे, और दूसरी प्राकृतवृत्तिढुंढिका याने व्युत्पत्ति-दीपिका का प्रणता हृदय-सौभाग्य माना है जो स्पष्ट उनकी भूल है : पट्टावलीमें स्पष्ट उल्लेख है—

तेषां शिष्या; पं० श्रीउदयसौभाग्यगणि: श्रीहैमप्राकृतढुंढिकां चक्रे।

प्रसगवश एतद्गच्छीय आचार्यों के सम्बन्ध मे प्रसारित भ्रम का परिमार्जन अपेक्षित है। त्रिपुटी महाराज लिखित जैन परम्परा के इतिहास मे सूचित किया है कि अमररत्न का अपरनाम सुररत्न[1] या तेजरत्न भी मिला है, परन्तु अपने कथन के समर्थन मे कोई ऐतिहासिक आधार वे प्रस्तुत नही कर सके हैं। उनकी इस सारहीन कल्पना का परिणाम यह हुआ कि तेजरत्नसूरि को पट्ट-परम्परा से ही विदा दे दी। अर्थात् दो भिन्न आचार्यों को नामार्थसाम्य के कारण एक मान लिया और तेजरत्नसूरि को पट्टक्रम से निकाल बाहर किया। जबकि तथ्य यह है कि, जैसा कि ऊपर सूचित किया जा चुका है, अमररत्नसूरि ने ही तेजरत्न का आचार्य स्थापित किया था। तात्कालिक इस समुदाय के मुनि और आचार्यों द्वारा प्रणीत साहित्य और प्रतिलिपित प्रतियो की पुष्पिकाओ से इनकी परम्परा का स्पष्ट बोध होता है। यहा तक कि जिस कवि नयसुन्दर की रचनाओ का नामोल्लेख त्रिपुटी महाराज ने उसी पृष्ठ पर किया है उन्ही रचनाओ की अन्त्य प्रशस्तियो में धनरत्नसूरि-तेजरत्नसूरि आदि का पट्टक्रम दिया गया है। इतना व्यवस्थित इतिहास मिलने के बावजद भी त्रिपुटी महाराज इतनी बडी भूल कैसे कर बैठे ? इससे भी अधिक आश्चर्यकर बात तो यह है कि जिस विविधगच्छ पट्टावली सग्रह का उल्लेख बार-बार मुनिश्री ने किया है उसी मे वृहत्पोसालिक पट्टावली प्रकाशित है। वहा तेजरत्नसूरि के सम्बन्ध मे विशेष प्रकाश डालते हुए सकेतित किया है कि—

---

१ मुनिश्री ने इस अपरनाम प्राप्ति-स्थान का सकेत नही दिया है, परन्तु अनुशीलन से विदित हुआ कि इसका उल्लेख देवरत्न के प्रशिष्य नयसुन्दर ने स० १६६३ पूर्व मे स्वरचित गुणधर्म कनकवती रास मे किया है—

वडतपगछि गोयम अवतार श्रीधनरत्न हुआ ससारि
तस पटधारक गुणे करी भूरि गछपति श्रीसुररत्नसूरि

जैन गूर्जर कवियो, भाग १ पृष्ठ ४५९

तत्र तेअअओरयणा इति तेजशब्दाद् रत्ना:, तेजरत्ना:/ऽद्यपि तेजस् शब्द: सकारान्तस्तत: तेजरत्ना इति युक्तम् ।

अमररत्न और तेजरत्न के भिन्नत्व समर्थक और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं। यहां केवल नाहर संग्रहस्थ तेजरत्नसूरि के स्वतन्त्र प्रतिष्ठा-लेख की ओर ही संकेत पर्याप्त होगा। लेख है सं० १६६५ का और लेखांक है १३०७ भाग २।

त्रिपुटी महाराज ने अपनी ऐतिहासिक समझी जाने वाली सूचित रचना के उसी पृष्ठ पर धनरत्नसूरि और धनसागर को एक मानते हुए इनका शिष्य भानुमेरु घोषित करने का प्रमाद किया है। उदयसागरसूरि ने जिन पांच महापुरुषों को सूरि पद समर्पित किया था उनमें धनरत्न और धनसागर दो भिन्न व्यक्ति थे, तदर्थ वृहत्पोसालिक पट्टावली द्रष्टव्य है। तत्र स्पष्ट है कि धनरत्न के ही शिष्य भानुमेरु थे—

धणरयणसूरिसीसा विबुहवरा भाणुमेरुगणिववरा

प्रो० हरि दामोदर वेलणकर संकलित जिनरत्नकोश पृष्ठ ३७६ पर नयसुन्दर को धनरत्न का शिष्य बताया है। वह सही नहीं है, कारण कि वह तो भानुमेरु के शिष्य थे, यह स्वयं स्वीकृत सत्य है—

धणरयणसूरिसीसा विबुहवरा भाणुमेरुगणिवरा
माणिक्करयणवायगसीसा लहुभायरा तेसिं
नयसुन्दराभिहाणा उवझाया सुगुरुचरणकमलाइं

उद्‌धृत पद्यों का अर्थ लगाते हुए जैन समाज के सुप्रसिद्ध इतिहास-विद् मुनि कल्याणविजयजी ने पट्टावली पराग पृष्ठ १७३ पर सूचित किया है कि—

"धनरत्नसूरि के शिष्य पण्डितवर भानुमेरु गणि और माणिक्य-रत्न वाचक के शिष्य और भानुमेरु गणी के छोटे भाई नयसुन्दर नामक उपाध्याय गुरु परिपाटी को प्रकाशित करते हुए ।"

ज्ञात होता है कि इतिहासविद् मुनिश्री ने नयसुन्दर रचित साहित्य पर ध्यान नही दिया है, अन्यथा उपर्युक्त तथ्य न निकालते ।

त्रिपुटी महाराज ने नयसुन्दर के गुरु का नया नाम भानुरत्न दिया है जो भ्रामक है । जिनका समृद्ध साहित्य और प्रतिमादिलेख समुपलब्ध हो उनके सम्बन्ध मे कल्पना को अवकाश ही कहा रहता है ? फिर भी त्रिपुटी महाराज ने उसे पख दिये ।

धनरत्नसूरि के स० १५७७ के अतिरिक्त लेख बुद्धिसागरसूरि-सग्रह भाग १, १५७२-७९-८४-८७-८८-९१, भाग २, १५७६, नाहर भाग १, १५७०-८२, मुनि कान्तिसागर १५६२-७६-९१, यतीन्द्रविजय १५९०, विनयसागर १५९१, नाहर १५८२[1] आदि सग्रहो मे पाये जाते हैं । डॉ० चारलोटे क्राउजे ने इनके लेख स० १५७०-९१ तक के प्राप्त होने की सूचना "त्रण प्राचीन गुजराती कृतिओ" की प्रस्तावना पृष्ठ १२ पर दी है परन्तु नव प्राप्त लेखो के आधार पर अब इनके लेख स० १५६०-९२ तक माने जाने चाहिये । कारण स० १५९२ पौष शुक्ला ५ का एक लेख उदयपुर वाडी जी के मन्दिर की धातु प्रतिमा पर अकित है[2] ।

---

१ यह लेख भी धनरत्नसूरि का ही है, सम्पादक ने इसके आगे प्रश्न चिह्न बना दिया है । लेख इस प्रकार है—

सवत् १५२८ वर्षे जे० सुदि १० शुक्रे वडतप धनरत्नसूरि. ।

२ स० १५९२ वर्षे पौष सुदि ५ भोमे हुम्बडज्ञातीय कडिया पद्मा सुत हरण भ्रातृ कहा सा० सुत कमाशा भ्रातृ लाडया सुत कवरावाच्छायुतेन श्रीपार्श्व-नाथबिम्ब कारापित श्रीवृद्धतपापक्षे भट्टारक श्रीधनरत्नसूरिभि प्रतिष्ठितम् स्वश्रेयसे ।

(६५) धनेश्वरसूरि—(लेखांक १७७) वृहत्तपागच्छीय

यह आचार्य पूर्व संकेतित संख्या ४४ वाले जिनरत्नसूरि के शिष्य थे। सं० १५२३ के इस संग्रह में प्रकाशित लेखातिरिक्त अन्यलेख ना०ग्र संग्रह १५३६ और विनयसागर-संग्रह सं० १५१८ में पाये जाते हैं। लेखो में इनकी पूर्व परम्परा जयतिलकसूरि-जयशेखरसूरि और जिनरत्नसूरि तक की मिलती है। सं० १४०६–३६ के धनेश्वरसूरि इनसे भिन्न आचाय थे।

(६६) धनेश्वरसूरि—(लेखांक ३१२) तपागच्छीय

यह आचार्य तपागच्छ की विजयाणंदसूरि शाखा के उन्साठवें आचार्य विजयसूरिन्द के पट्टधर थे। बुद्धिसागरसूरि-संग्रह भाग में सं० १८९३ का लेख मिला है शेष वृत्त ज्ञात नही।

(६७) धर्मतिलकसूरि (लेखांक ४५) पूर्णिमापक्षीय

सं० १४९३ का प्रतिमालेख पूर्णिमापक्षीय धर्मतिलकसूरि से सम्बद्ध है। इस गच्छ या पक्ष की कोई ऐसी पट्टावली उपलब्ध नहीं है जो आचार्यो के सर्वांगपूर्ण जीवन पर मार्मिक प्रकाश डाल सके। सं० १५८० मे उदयसमुद्र द्वारा प्रणीत पूर्णिमागच्छ[1] गुर्वावली भी अपूर्ण रचना ही है। रचना-पूर्वकालिक और समसामयिक आचार्यो तक का उसमें समावेश नहीं है। स्व० मोहनलाल देसाई ने कतिपय गुर्वावली और एतद्गच्छीय आचार्यो के प्राप्त प्रतिमालेखो के आधार पर श्रमपूर्वक स्वतन्त्र आचार्यावली तैयार की थी,[2] परन्तु वह भी नव्य साधन सामने आने पर अब अपूर्ण प्रतीत होतो है।

---

१. पट्टावली समुच्च भाग २ पृष्ठ १४५–४८।

२. जैन गूर्जर कविओ, भाग ३ पृष्ठ २२३३–४१।

प्रकाशित पट्टावलियो मे धर्मतिलकसूरि का नामोल्लेख नही है। देसाई-सकलित नव्य गुरुमालिका मे इनका नाम इस आधार पर सम्मिलित किया है कि बुद्धिसागरसूरि-सग्रह मे इनका एक लेख मिला है।

आलोच्याचार्य पर विचार करने से पूर्व जान लेना आवश्यक है कि पूर्व या परवर्त्ती काल मे समान नामधारी सूरि कितने हुए हैं? कारण कि एक ही शताब्दी मे एकनामा आचार्य इतने समीप समय मे हुए हैं कि समुचित काल-ज्ञान के अभाव मे अनुसन्धित्सु भ्रमित हो जाता है।

१ स० १३५४ के देवकुलिका-लेख से धर्मघोषसूरि के पट्टधर धर्मतिलकसूरि का ज्ञान होता है[1]। यह आचार्य वही ज्ञात होते हैं जिनका स० १३३८ का लेख विनयसागर-सग्रह मे (लेखाक ८८) पाया गया है। इनके शिष्य शीलप्रभसूरि थे, धर्मतिलकसूरि के गुरुबन्धु ज्ञानकलश ने सन्देहसमुच्च नामक ग्रन्थ की रचना की—

श्रीधर्मतिलकसूरेर्गुरुबन्धुज्ञानकलशनामारित
विहितरत्तेन परेपा सन्देहसमुच्चयो ग्रन्थ

२ स० १३९४ देवाचार्यगच्छीय धर्मतिलकसुरि थे, (मुनि जयन्तविजय अर्बुदा० लेखाक ३९)।

३ स० १४०८ मे वृहद्गच्छीय धर्मतिलकसूरि का अस्तित्व था (नाहटा-सग्रह लेखाक ४२०) यह मुनिशेखरसूरि के शिष्य जान पडते हैं जो तिलकसूरि के नाम से वृहद्गच्छ गुर्वावली मे उल्लिखित हुए हैं। इसी तिलकसूरी के पट्टधर दूगड गोत्रीय भद्रेश्वरसूरि ने अपने पूर्व पट्टाधीश के पुण्यार्थ जीरावल्लातीर्थ मे एक देव-कुलिका बनवाई थी, (मुनि जयन्तविजय अर्बु० प्र० लेखाक ११६)।

---

१ मुनि जयन्तविजय अर्बु० प्रद० लेखाक ११५।

४. सं० १४२४ में पिप्पलाचार्य धर्मतिलकसूरि थे (मुनि विशालविजय संग्रह लेखांक ६६)। इनके सं० १४३७[1] और सं० १४४७ के लेख प्राप्त हैं। सारंगदेव के समय धर्मदेवसूरि द्वारा[2] प्रादुर्भूत त्रिभविया-शाखा से इनका सम्बन्ध था। इनका उल्लेख पिप्पल-गच्छ गुर्वावली में इस प्रकार हुआ है—

धरमतिलकसूरि गुरुतिलको को तिहुयणि मोहियो वाणी रसाल[3]

× × × ×

धर्मतिलकसूरि धीरु पींपलगच्छह मण्डणउ
मोह मयण भव वीरु जीतउ लीला बाहुबले

नाहर भाग २ मे सं० १४५७ का लेख (लेखांक १०६१) भी धर्मतिलकसूरि का है, पर वह कौन से ?

५. सं० १४३३ के लेख में देवाचार्य धर्मतिलकसूरिभिः का संकेत है (मुनि विद्याविजय-संग्रह लेखांक ७२)।

६. सं० १४९६ और सं० १५०७ लेखों में बोंकडीयागच्छीय धर्मतिलक-सूरि का अस्तित्व था (नाहर भाग २ लेखांक १२४६ और विनयसागर लेखाक ३१५)। दोनों ही लेख एक ही है, अन्तर केवल यही है कि नाहर में तिथि फागुन सुदि ९ है आर विनय-

---

१. यह लेख बुद्धि० भाग २ में लेखांक ९३१ में प्रकाशित है। परन्तु पूर्णिमा-गच्छाचार्य सूची में इसका समावेश किया है। इसीलिए देसाई की पौर्णमिक-आचार्य-क्रम मे इसको स्थान नही दिया है।

२. धनु धनु धर्मदेवसूरि सारंग रा प्रतिवोधउ
ऊगमतइ नितु सूरि सुहगुरु नितु नितु पणमिए
त्रिनि भव सारंगराय देवाएसिहि गुरि कहीय
—विजयवल्लभसूरि-स्मारक-ग्रन्थ, पृष्ठ २० (हिन्दी विभाग)

३. वही—

सागर मे ८ है। इस सग्रह मे स० १५०७ का लेख है, इसके प्रतिष्ठापकाचार्य हैं धर्मतिलकसूरि, परन्तु गच्छ का सकेत नही है। काल को देखते हुए वाकडीयाका होना कल्पित हैं।

विवक्षित धर्मतिलकसूरि पौर्णमिक धर्मचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इस सग्रह मे प्रकाशित स० १५३९ के अतिरिक्त लेख इन सग्रहो मे द्रष्टव्य है—

बुद्धिसागरसूरि १४३३–३६–५३–५७, मुनि कान्तिसागर १४३८, नाहटा १४२४–२८–२९–३२–३३–३८–५०, नाहटा-सग्रह मे गच्छ रहित आचार्यसूचि मे लेखाक ६७८–६८१ प्रदत्त लेख भी कालिक साम्य के कारण इन्ही के प्रतीत होते है (उपदेशेन शब्द से अनुमित है, हीरानन्दसूरि इनके पट्टधर थे), मुनि विशालविजय १४३०, मुनि जयन्तविजय १४३९–५३, नाहर १४१४ (इस लेख में इनके एक ओर पट्टधर धनतिलकसूरि का नाम है इनका १४४१ का लेख मिला है, लेखाक २२६८), विनयसागर १४३२, मुनि विद्याविजय १४५७–९२, जैन सत्यप्रकाश वर्ष ९ पृष्ठ ३८२, १४४४।

(६८) धर्मदेवसूरि—(लेखाक २६६ अ)

यह आचार्य गुणसुन्दरसूरि के पट्टधर थे। किसी भी लेख सग्रह मे इनका कोई लेख या सकेत नही है। गुणसुन्दरसूरि के शिष्य जयकुजर ने स० १६१० मे वद्धमानदेशना प्रतिलिपित की ओर वह ब्रह्माणगच्छीय थे। सम्भव है यह भा उसी गच्छ के हो।

(६९) धर्म्ममूर्तिसूरि—(लेखाक २९८–२९९) अचलगच्छ

यह आचार्य अचलगच्छीय गुणनिधानसूरि के पट्टधर थे। इनका जन्म स० १५८५ मे हुआ था। मूलत यह खम्भात के निवासी थे। पिता-माता के नाम क्रमश मन्त्री हसराज और हासलदेवी थे। स० १५९९ मे दीक्षा अगोकार की और स० १६०२ मे ही गच्छनायक पद प्राप्त किया। धर्म्मूर्त्तिसूरि केवल अचलगच्छ क ही नही, अपितु, समस्त जैन

समाज के लिए वन्दनीय हैं। उनका समय अत्यन्त विषम था, साम्राज्य-वाद के साथ मुनि समुदाय-शैथिल्य की ओर गतिमान था। इनने स्वयं क्रियोद्धार कर आदर्श उपस्थित किया। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के कारण इन्हें अनेक सिद्धियां सहज प्राप्त थीं। धर्म्ममूर्त्तिसूरि ने जिस सन्तोष, धैर्य और समत्व का सक्रिय परिचय दिया है वह तो आज भी अनु-करणीय है। उनका जीवन त्याग का प्रतीक था। धैर्य इतना था कि कोई कितना ही आक्रमण करे पर क्या मजाल की आचार्य कभी विवेक-विचलित हो जायें। इन पर प्रवचन परीक्षा आदि ग्रन्थों में कटु आक्षेप किये हैं, परन्तु विद्वद् मुनियों का समुदाय होते हुए भी कभी अपनी ओर से किसी के खण्डन में एक भी पंक्ति नहीं लिखवाई। चाहते तो वह उत्तर दे - दिलवा सकते थे, किन्तु वह समत्व के सागर में ही निमज्जन करते रहे। इनका विशद् परिचय भाई पार्श्व लिखित अंचलगच्छ दिग्दर्शन में कराया गया है। सं० १६५८–६३ के नवोपलब्ध लेख के अतिरिक्त लेख भाई पार्श्व द्वारा संकलित अचलगच्छीय लेख-सग्रह में दृष्टव्य है।

(७०) धर्मरत्नसूरि– (२३२–२३४अ–२८१)–वृहत्तपागच्छीय (भृगुकच्छीय)

प्रस्तुत आचार्य विजयतिलकसूरि–विजयधर्मसूरि–विजयरत्नसूरि[1] के पट्टधर थे, और रत्नाकरगच्छ की भडौंच शाखा से सम्बद्ध थे। धनराज के संघ में अर्बुदाचल आदि महातीर्थों की यात्रा कर चित्रकूट के महान् व्यक्ति तोलाशाह ने मनोरथ व्यक्त किया कि म्लेच्छों द्वारा विनष्ट गिरिराज-सिद्धाचल का उद्धार कब और किसके द्वारा सम्पन्न होगा? भक्तिसिक्तवाणी सुन कर तोलाशाह को आश्वस्त करते हुए धर्मरत्नसूरि ने कहा कि तुम्हारे पुत्र कर्माशाह के माध्यम से मनोरथ साकार होगा। रुच्यनुकूल प्रसंग भी कार्यसाधक ही उपस्थित होते गये, क्रमशः गुजरात के बादशाह का बन्धु बहादुरशाह अपने ज्येष्ठानुज सिकन्दर से अप्रसन्न

1. नाहटा–लेखांक १८२२ और बुद्धिसागर सूरि भाग २–लेखांक ३३०,६५८, जैन गूर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ६६७।

होकर चित्तौड गया और कर्माशाह ने यथेष्ठ सहायता देकर उसे अपने अनुकल बनाया। भवितव्यता से वह गुजरात का शासक बना और उद्धार हुआ। धर्मरत्नसूरि के एक शिष्य विद्यामण्डनसूरि ने ऋषभदेव और पुण्डरीक गणधर बिम्बो की स० १५८७ मे प्रतिष्ठा की।

खम्भात निवासी शिवा ने इनके उपदेश से हमीरगढ मे स० १५५० मे दो आले बनवाये। इनके शिष्य और पट्टधर विद्यामण्डनसूरि ने स्वगच्छोत्कर्षार्थ शान्तिनाथप्रभु का बिम्ब स० १५८७ मे बनवाया था[1]। इससे प्रतीत होता है कि शिथिलाचार से ये असपृक्त न थे। इनके प्रतिष्ठा-लेख स० १५४४–८७ तक मिलते हैं। इस सग्रह मे इनके स० १५४३–४४–८७ के तीन लेख प्रकाशित है। स० १५८७ के लख मे गच्छ का सकेत नही है। अन्य लेख नाहटा–१५१८, विद्यासागरसूरि–भाग २–१५४४–४७–५३–६१–६५ तथा नाहर–भाग २–१५५५ प्राप्त हैं।

(७१) धर्मविमल—(लेखाक २८८) तपागच्छीय

प्रतिष्ठालेख से स्पष्ट है कि धर्मविमल ने स० १६१४ मे प्रतिष्ठा करवाई थी। यह विजयदानसूरि के शिष्य थे। इत पूव स० १६१३ मे नन्दरवार मे भी प्रतिष्ठा सम्पन्न कर चुके थे[2]। स० १६१४ मे इनके शिष्य तेजविजय के लिए राजपाल ने कुर्मापुत्रचरित्र प्रतिलिपित किया[3]।

(७२) धर्मसुन्दरसूरि—(लेखाक १६५) पिप्पलगच्छीय

जिस युग का प्रतिमालेख प्रकट किया जा रहा है, उस काल मे इस नाम के ऊकेश, पूर्णिमा आदि गच्छ-पक्षो मे अनेक समाननामा आचार्य विद्यमान थे। यदि किसी लेख मे गच्छ या पूर्व पट्टाधीश का नाम अकित न हो तो उसका स्पष्ट सम्बन्ध किसी भी आचाय के साथ स्थापित नही किया जा सकता।

---

१ नाहटा लेखाक १८२१।

२ बुद्धिसागरसूरि लेखाक ७३७।

३ प्रशस्ति-सग्रह (अहमदावाद) पृष्ट १११।

इस संग्रह में प्रकाशित सं० १५२० में प्रतिष्ठित जिनबिम्ब के प्रतिष्ठापक थे धर्मशेखरसूरि के पट्ट-गौरव धर्मसुन्दरसूरि। लेख में गच्छ संकेतित नहीं है। सं० १४८२ के प्रतिमालेख से ज्ञात होता है कि प्रकृत लेख निर्दिष्ट धर्मशेखरसूरि पिप्पलगच्छीय त्रिभविया-शाखा के धर्मप्रभसूरि के पट्टादित्य थे[1]। एतत्गच्छीय गुर्वावली भी इस तथ्य का समर्थन करती है[2]। धर्मसुन्दरसूरि का नव प्राप्त यह प्रतिमालेख महत्व का है, कारण कि अभी तक उनके जो भी लेख या तत्सम्बन्धी सकेत प्राप्त हुए हैं, उनसे इनका अस्तित्व काल सं० १५१५ तक ही स्वीकार्य था। परन्तु अब सं० १५२० तक माना जाना चाहिए[3]। पिप्पलगच्छीय पट्टावल्यनुसार धर्मशेखरसूरि के अनन्तर धर्मसागरसूरि[4] का नाम आता है, इनका उल्लेख नहीं है। स० १५०६ के एक लेख से ज्ञात है कि धर्मशेखरसूरि के एक और पट्ट-प्रदीप विजयदेवसूरि भी थे[5]। यह सम्भवतः वही व्यक्ति देवचन्द्र वाचक न हों जिनका संवत् १४८७ का लेख प्राप्त है[6]।

---

१. यतीन्द्रविजय-संग्रह, लेखांक ६७।

२. पाल्ह पेथ सौदागरु ए ठविय पाट सिरि धर्मप्रभसूरि

× × × ×

तस तणइ अनुक्रमि श्रीय धर्मसंघसूरि तस पाटि श्रीधर्मप्रभसूरि

× × × ×

तसु पाटि महियलि भाणु धर्मप्रभसूरि गुरु गरुओ गुणि
आगम छंद प्रमाण जाण राउ जयवंतु जगे
सुललित वाणि रसालु धर्मशेखरसूरि गुरु पवरो

—विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ हिन्दी विभाग पृष्ठ १३-२२

३. इसी वर्ष का एक और लेख भी यतीन्द्रविजय-संग्रह (लेखांक १४९) पाया गया है।

४. नाहटा-संग्रह, सं० १५१५ लेखांक १२०८।

५. मुनि यतीन्द्रविजय-संग्रह सं० १५०६ लेखाक १५६।

६. मुनि यतीन्द्रविजय-संग्रह लेखांक ३१६, यह तालगच्छीय शाखा के थे।

धर्मसुन्दरसूरि पिप्पलीय किस स्वतन्त्र शाखा के थे ? कब आचार्य पद प्राप्त किया ? दो प्रश्न इस लिए उठते हैं कि गुरु-पट्ट-क्रम में यह अनुल्लिखित कैसे रहे ? इसमे कोई सन्देह नही है कि उन दिनो गच्छ का प्रभाव, भले ही सीमित क्षेत्र मे रहा हो जनमानस पर था। इन्ही के समय मे तालध्वजीय शाखा का आविर्भाव हुआ। किसी भी गच्छ की शाखा का सूत्रपात तब ही होता है जब कि किसी प्रभावशाली व्यक्ति का समर्थन प्राप्त हो। असम्भव नही कि इनने भी अपना स्वतन्त्र पक्ष स्थापित किया हो अन्यथा कोई कारण नही कि पट्टावली मे अनुल्लिखित रहे। आचार्य पद प्राप्तिकाल भी निश्चित ज्ञात नही। प्राप्त सामग्री से अनुमान ही किया जा सकता है कि स० १५०१ के आसपास मिला हो, कारण कि स० १४८२-१५०१ तक तो धर्मशेखर ही गच्छनायक रहे।

धर्मसुन्दरसूरि कही तो अपना पूरा नाम प्रतिमालेख में अकित करवाते हैं और कही सक्षिप्त अभिधान केवल धमसूरि ही[1]। जैनाचार्यो मे यह परम्परा रही है कि वे न केवल सक्षिप्त नाम का ही प्रयोग करते थे, अपितु कभी-कभी तो तदर्थसूचक अन्य शब्द भी व्यवहृत करते थे। इसके अनेक उदाहरण सम्प्राप्त हैं, हेमकलश के लिए हेमकुम्भ[2], जयतिलक के लिए जयपुण्ड[3], नानससी-ज्ञानचन्द्र[4] मुनिचन्द्र के लिए मुनिन्दु, सागर-चन्द-सागरेन्दु, कल्याणसागर-कल्याणसमुद्र या शिवाब्धि, गुणसागर-गुणाब्धि आदि आदि। इसी प्रकार धम्मंघोषसूरि-धम्मसूरि, नलायनकार माणिक्य-देवसूरि-माणिक्यसूरि इत्यादि। शब्द शिल्पी साहित्यकारो मे

---

१ यतीन्द्रविजय लेखाक १४३।

२ हेमकुम्भगुरु ख्यातो हेमकुम्भ इवोज्जवल,
—मुनि पुण्यविजय प्रशस्यादिसग्रह, पृष्ठ ३७९।

३. चक्षुबाणमनु प्रमेयसमये श्रीस्तम्भतीर्थेपुरे
येन श्री जयपुण्ड्रसूरिगुरुणा विश्वप्रसिद्धोत्सवम्
विविधगच्छीय पट्टावली सग्रह पृष्ठ ३०

४ नाणससी—ज्ञानचन्द्र
विविधगच्छीय पट्टावली सग्रह पृष्ठ २६।

ही नहीं, परन्तु मध्यकाल के सक्षम तक्षकों में भी अपने ढंग से इस प्रथा ने विकास किया है। उदाहरणार्थ मेवाड़ के महाराणा कुँभकर्ण-कालिक एक शिल्पी ने अपनी छाप रेखाओं द्वारा स्थापित की थी उसका नाम था कुम्भा। उसने प्रासाद के जिन विशिष्ट अंगों का निर्माण किया वहाँ या तो उसने अपना नाम लिख दिया है या कुम्भ की आकृति द्वारा अपनत्व संकेतित किया है। एकलिंगजी (उदयपुर) के पास के जैन-प्रासाद के खण्डहरों से ऐसे विपुल अवशेष आज भी दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय शिल्प और मूर्त्तिकला के विशिष्ट अभ्यासियों के लिए इस प्रकार की सामग्री अध्ययन क्षेत्र को विस्तृत कर सकती है। इनके अन्य लेख मुनि विद्याविजय १५०१, मुनि यतीन्द्रविजय १५११-२०, नाहटा-संग्रह १५१५ में पाये जाते हैं।

प

(७५) पण्डगसूरि—(लेखाक ५)

इस आचार्य के सम्बन्ध मे कुछ भी कह सकना सम्भव नही है। लेख स० १२२६ का है।

(७६) पद्मानन्दसूरि—(लेखाक ११५–२००) धर्मघोषगच्छीय

मलयचन्द्रसूरि के पट्टधर पद्मदेवसूरि के पट्टदीप आचार्य पद्मानन्द अपने समय के प्रभावक महापुरुष थे। इनके समय मे धर्मघोषगच्छ साहित्यिक दृष्टि से समुन्नति के शिखरारूढ था। श्रमणो के शैथिल्य निवारणार्थ सदैव कटिबद्ध रहा करते थे। इनके गुरु पद्मशेखरसूरि के सम्बन्ध मे एक प्रशसात्मक पद्य उपलब्ध हुआ है—

विश्वोद्योतियश प्रतापविलसच्चन्द्रार्कसशोभितो ।
गुर्वानन्दनसौमनस्यकलित सद्भद्रशालावनि ।।
भूयान्मेरुरिव क्षमाभरधरो विख्यातनामा सता ।
पूज्य श्रीप्रभुपद्मशेखरगुरु कल्याणद शर्म्मणे ।।[1]

हरिकुशल यति ने मलधारगच्छो हेमचन्द्रसूरि प्रणीत भुवनभानु-केवलि चरित्र के बालावबोध की अन्त्य प्रशस्ति मे इस प्रकार स्मरण किया है—

---

१ विविधगच्छीय पट्टावली सग्रह पृष्ठ ७० ।

तत्पङ्कजसूर्याः सूरि श्रीपद्मशेखरमुनीन्द्राः।
तत्पट्टे विख्यातः सूरयः श्रीजिनचन्द्रख्याः[1] ॥

इससे ज्ञात होता है कि इनके जिनचन्द्रसूरि भी एक और पट्टधर थे। इसके समर्थन में प्रतिमालेख भी उपलब्ध हैं, उनकी सख्या सीमित है। पद्मनन्दसूरि के व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी कोई ज्ञातव्य सामग्री प्राप्त नहीं है, प्राप्त प्रतिमा लेखों से केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनका आचार्यत्व काल सं० १५०५–१५३७ तक था।

इनकी यशोगाथा—संसूचक एक पद्य मेरे संग्रह के हस्तलिखित[2] गुटके में सुरक्षित है—

सौभाग्यकानिधिः सदाशुभमतिश्चारित्रचूड़ामणि-
जैनाज्ञाप्रतिपालनेवपरमख्यातः क्षितौमण्डले।
श्रीमत्संघगणे च सम्प्रग्जिकलौ यः सिद्धहस्तोमतः
श्रीपद्माणंदसूरिश्वरो विजयते कल्याणमालाप्रदः ॥

इनके नवप्राप्त सं० १५०७–१५२९ के अतिरिक्त लेख इन संग्रहों में प्राप्त है—

नाहटा-संग्रह १५०५–९–१२–१३–१७–२०–२१–२४–२९–३३, नाहर भाग १, १५२९–३३, भाग २, १५०७–१२–२९–३५, भाग ३, १५१२–१५–२०, मुनि विद्याविजय १५३५, विनयसागर १५०७–१३–१८–२३–२८– ९–३१–३३, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५१७, भाग २, १५३७, मुनि कान्तिसागर १५२०–२३, यतीन्द्रविजय १५१८–२१।

---

१. प्रशस्त्यादि संग्रह पृष्ठ २४२।

२. यह गुटका प्राचीन साहित्य की दृष्टि से अतीव मूल्यवान् है। धर्मघोष-गच्छीय नयचन्द्रसूरि के समय का लिखित है, एतद्गच्छीय प्रतिक्रमण भी इसमें प्रदत्त है।

(७७) पद्मानन्दसूरि—(लेखाक २३४ ब) पिप्पलगच्छीय

यह आचार्य पिप्पलीय उदयदेवसूरि—रत्नदेवसूरि के पट्टधर थे। इनके स० १५४५ के अतिरिक्त लेख यतीन्द्रविजय १५४८–५३, बुद्धिसागरसूरि भाग २ १५४२–४८, भाग १, १५४२ सग्रहो मे द्रष्टव्य है।

इनके समकालिक अन्य गच्छीय और भी आचार्यो के लेख ऐसे मिले हैं जिनमे गच्छ का उल्लेख नही है अत ऐसे लेखो की सगति किस आचार्य से बैठाई जाय ?

(७८) पुण्यरत्नसूरि—(लेखांक १९०) पूर्णिमापक्षीय

इस आचार्य ने वैराग्यवसित भावनावश न केवल बाल्यकाल मे सयम का कठोर मार्ग ही स्वीकार किया, अपितु, गच्छनायकत्व के सौभाग्य से भी मण्डित किये गये। इसी से इनकी सघटन शक्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। बुद्धिसागरसूरि (लेखाक १७०) और मुनि यतीन्द्रविजय (लेखांक ४३८) से पता चलता है कि यह गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर थे। परन्तु, मुनि विशालविजय सग्रहस्थ (लेखाक १८०) प्रतिमालेख इसके विपरीत तथ्य यह उपस्थित करता है कि यह गुणसागर-गुणसमुद्र-सुमतिप्रभसूरि के पट्टधर थे। अधिकाश लेख जिनदत्तकथा के प्रणता गुणसमुद्रसूरि का ही पट्टधर सूचित करते हैं। इनके स० १५२७ के अतिरिक्त लेख इन सग्रहो मे प्राप्त हैं

बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५१५–१७–१८–२२–२४, भाग २ १८–२२–२४–३१–६०–६१, मुनि विशालविजय १५१२–१५–२० (लेखाक २२९ मे गुणसमुद्र के पट्टधर होने का सकेत है)–३०, नाहर भाग १, १५३१, भाग २ १५१७–१९–३२, नाहटा १५२४, मुनि जयन्तविजय (अर्बु० प्र०) १५१२, यतीन्द्रविजय १५१७–२७।

(७९) पुण्यरत्नसूरि—(लेखाक १३७) कृष्णर्षिगच्छीय

इस गच्छ के आचार्य का केवल यही एक मात्र लेख स० १५१२ का उपलब्ध है। इनके पट्टधर सुमतिरत्न के शिष्य उदयध्वज गणि ने

स्वाध्यायार्थ सं० १५८० में सम्यक्त्वकौमुदी कथा प्रतिलिपित की (प्रशस्ति-संग्रह, पृष्ठ ८७)।

(८०) पुण्यवर्द्धनसूरि—(लेखांक २४६) धर्मघोषगच्छीय

यह धर्मघोपगच्छीय कमलप्रभसूरि के पट्टप्रभाकर थे। सं० १५५१ के अलावा इनके लेख नाहटा, १५५१–५४–५६, विनयसागर १५३१, मुनि कान्तिसागर १५५२, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५२७, भाग २, १५४३, नाहर भाग १, १५५१–५२–५४ संग्रहों में प्राप्त हैं।

(८१) पूर्णचन्द्रसूरि—(लेखांक १०१) सा०पूर्णिमाप०

परिचय-रेखा संख्या दो वाले अभयचन्द्रसूरि-रामचन्द्रसूरि के यह पट्टधर थे, इनके लेख बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५०८–२४ भाग २, १५०६–९, विनयसागर १५२८, मुनि विद्याविजय १५०९, जैन युग वर्ष ५ ४७१, १५०५, में देखे जा सकते हैं।

(८२) प्रसन्नचन्द्रसूरि—(लेखांक १२३) कृष्णर्षिगच्छीय

इस आचार्य का भी केवल सं० १५१० के अतिरिक्त कोई लेख प्राप्त नहीं है। लेख खण्डित है, अतः इसके प्रतिष्ठापक आचार्य और कोई सम्भव हैं। अन्य लेखों से ज्ञात है कि पट्ट-दीपक नयनचन्द्र-सूरि थे।

ब

(८३) बुद्धिसागरसूरि—(लेखांक १२८, १५३) ब्रह्माणगच्छीय

स० १५१०-१७ के दोनो ही लेख ब्रह्माणगच्छीय मुनिचन्द्रसूरि पट्टधर बुद्धिसागरसूरि के हैं। इस परम्परा मे इन दो नामो की पुनरावृत्ति बार-बार हुई है। इस पर आचार्य—परिचय-रेखा मे विचार किया है।

भ

(८४) भावचन्द्रसूरि—(लेखांक ४०) पूर्णिमापक्षीय

इस आचार्य का भी केवल यही एक लेख सं० १४१८ का मिला है। इनका सम्बन्ध पूर्णिमापक्ष से है।

(८५) भावचन्द्रसूरि—(लेखांक २२९) पूर्णिमापक्षीय

सं० १५३५ के गद्यात्मक शान्तिनाथचरित्र के प्रणेता पौर्णमिक भावचन्द्रसूरि भीमपल्लीय जयचन्द्रसूरि के पट्टादित्य थे। एतत्पक्षीय मुनि विद्यारत्न द्वारा सं० १५७७ में प्रणीत कुर्म्मापुत्रचरित्र की अन्त्य प्रशस्ति में इन्हें इन शब्दों में स्मरण किया है—

ततःशशाङ्कोज्ज्वलकीर्त्तिभाजः श्रीभावचन्द्रा गुरवो बभूवुः
रेजुस्तदीयक्रमशो भाव...

मुनि कान्तिसागर संग्रह में इनका सं० १५३० का एक लेख प्राप्त है। भावचन्द्रसूरि का शिष्य परिवार विद्वान् और विद्याव्यासंगी था। विद्यारत्न के अतिरिक्त एक शिष्य जयराज ने लोकभाषा मे सं० १५५३ में मत्स्योदर रास की रचना की (जैन गूर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ ७५)। इसी ने सं० १५७० में उपासकदशांग प्रतिलिपित किया (प्रशस्तिसंग्रह, पृष्ठ ७२)।

(८६) भावसागरसूरि—(लेखाक २६७) अचलगच्छीय

इस आचार्य के जन्म काल और स्थान के सम्बन्ध मे मतैक्य नही है। अन्तत भाई श्री पार्श्व ने स० १५१६ स्वीकार किया है और वह समुचित प्रतीत नही होता, कारण कि स० १५२० मे तो स्तम्भतीर्थ मे इनकी दीक्षा बताई गई है। अत जन्म स० १५१० मानना युक्तिसगत प्रतीत होता है।भावसागर को स० १५६० मे माडल मे आचार्य पद प्राप्त हुआ। यह समन्वयशील आचार्य थे, अत अचलगच्छ के समस्त समुदाय इनकी आज्ञा शिरोधार्य करने मे गौरव का अनुभव करते थे। विनयहस, लाभमेरु, पुण्यरत्न, लाभमण्डल, धनसार आदि विनेय-वृन्दने नव साहित्य सृजन के साथ पुरातन साहित्योद्धार कार्य को भी गति प्रदान की।

तात्कालिक श्रमण-परम्परा के इतिहास से विदित होता है कि भावसागरसूरि का समय वडा विषमय था। साम्प्रदायिक विष से समाज दग्ध था। नव मत सर ऊँचा किए हुए थे। कला और सौन्दर्य की अभिव्यक्तिसम प्रतिमाओ की अचना पर कुठाराघात किया जा रहा था और धर्म तथा सस्कृति के नाम पर, नवमतवादी इस सीमा तक विवेक-शून्य हो चले थे कि सस्कृत मूलाधार साहित्य तक को विकृत बना रहे थे। मन-माने अर्थो द्वारा जनता को वास्तविक तथ्यो से विलग रख रहे थे। हेमविमलसूरि, भावसागरसूरि और आनन्दविमलसूरि जैसे महाश्रमणो ने त्यागमय जीवन का परिचय न दिया होता तो शासन को बहुत सहन करना पडता।

नि सकोच कहना पडगा कि भावसागरसूरि दृष्टिसम्पन्न आचाय थे। जिस प्रकार मुनि सुन्दरसूरि ने तपागच्छीय पट्टावली का प्रणयन कर इतिहास मे अभिरुचि रखने वालो पर उपकार किया है उसी प्रकार आचार्य भावसागरसूरि ने दोसोऽकत्तीस पद्यो मे श्रीवीर वशावली या विविधपक्षगच्छ-पट्टावली का प्रणयन कर अपने गच्छ के आचार्यो का यश सुरक्षित किया। सागर को गागर मे भर कर एक ही स्थान पर प्रमाणभूत सामग्री का सकलन कर महदुपकार किया है। इन्हे अचलगच्छ के प्रथम व्यवस्थित इतिहासकार की सज्ञा से यदि अभिहित किया जाय तो अत्युक्ति न होगी।

इनके सांस्कतिक दायित्व पर रुचिशील गवेषक भाई श्री पार्श्व ने अपने रक्तशोषक श्रम द्वारा आलेखित अंचलगच्छ दिग्दर्शन में प्रकाश डाला है।

इनके सभी प्राप्त लेख भी तद्गच्छीय लेख संग्रह में प्रकाशित है। स० १५६९ का नव्य का लेख इस संकलन में है।

यों तो भावसागरसूरि को उनके अनुयायी वर्ग ने अनेक ग्रन्थ प्रतिलिपित करवा कर समर्पित किये, परन्तु यहा स्थानांगसूत्र लेखन पुष्पिका का विशेष रूप से उल्लेख विवक्षित है। मुनि पुण्यविजय सकलित उनके हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रकाशित विवरणात्मक सूचीपत्र में स० १ १७ में तापीदास के परिवार द्वारा भावसागरसूरि को स्थानाँगसूत्र समर्पण का उल्लेख है[1]। वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है, कारण कि इनकी दीक्षा सं० १५२० में हुई थी और सूरि पद सं० १५६० में प्रदान किया गया था। ऐसो स्थिति में समर्पण संवत् संदिग्ध प्रतीत होता है। प्रति की स्थिति भी अच्छी वताई गई है। अंचलगच्छीय आचार्य क्रमानुसार यह काल जयकेसरीसूरि का है। इस समय में और कोई भावसागरसूरि अंचलगच्छ में नहीं थे। या तो प्रति में संवत् गलत दिया हो अथवा सम्पादक के प्रमाद के कारण अशुद्ध संवत् छपा हो। ऐसे प्रामाणिक सूचीपत्र में इस प्रकार की खलना अक्षम्य है, शोधजगत् में भ्रम फैलने की सम्भावना रहती है।

---

१. केटलोग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स-मुनिराज श्रीपुण्यविजयजी कलैक्शन भाग १ पृष्ठ १७।

म

(८७) मदनसिंहसूरि—(लेखाक ६७)

प्रतिमालेखो मे कभी-कभी ऐसा महत्वपूर्ण अश विलुप्त हो जाता है जिससे अनुसन्धाता के समक्ष विकट समस्या खडी हो जाती है। इस लेख मे दुर्भाग्य से प्रतिष्ठापक आचार्य के पूर्व पट्टाधीश और गच्छ का नाम त्रुटिताश मे नष्ट हो जाने से सदा के लिए एक प्रश्न चिह्न छोड गया। प्रतिमालेखसग्रह और अन्य प्रमाणभूत समझे जाने वाले ऐतिहासिक साधन सूत्रो से इस आचार्य के अस्तित्व का ज्ञान नही होता। जो नाम प्राप्त हैं वे परवर्त्ती हैं या पूर्ववर्त्ती।

स० १३६२ मे वृहद्गच्छीय मदनसूरि का अस्तित्व था[1]। स० १३६८ मे भी मदनसूरि का उल्लेख भी मिलता है[2]। स० १३७६ के प्रतिष्ठालेख मे मदनसूरि दृष्टिगोचर होते हैं[3]। स० १३८८ के लेख मे चैत्रगच्छीय मदनसिंहसूरि का सकेत मिलता है[4]।

---

१ बुद्धिसागरसूरि—सग्रह भाग १ लेखाक ५७४।
२ नाहटा—सग्रह लेखाक २४१।
३ बुद्धिसागरसूरि—सग्रह भाग १ लेखाक ३७९।
४ नाहटा—सग्रह लेखाक ३३६।

प्रतिमालेखानुसन्धान से अनुभव किया गया है कि कभी-कभ आचार्य अपना संक्षिप्त नाम भी लेखों में दिया करते थे (एतदर्थ द्रष्टव है आचार्य-परिचय-रेखा सं० ७२)। इस सिद्धान्त के आधार पर यदि सं० १३६१ के लेख संकेतित आचार्य से यदि इनकी संगति बैठाई जा तो एक कठिनाई है कि बृहद्गच्छीय आचार्य से या चैत्रगच्छीय से क्योंकि कालिक दृष्टि से दोनों में साम्य है। निर्णय पर तो तब ही पहुँच जा सकता है कि जब इनका और ऐसा लेख प्राप्त हो जाय जिसमें गच्छ और पूर्व-पट्टाधीश का नाम स्पष्ट हो।

(८८) महेन्द्रसूरि—(लेखांक १२०) बृहद्गच्छीय

सं० १६०४ में प्रतिलिपित गिर्वाण और देश्यभाषामय कल्पान्तर्वाच्य के अन्तिम भाग में प्रदत्त बृहद्गच्छाचार्य गुर्वावली और मुनि मालदेव प्रणीत एतद्गच्छ-गुर्वावली में महेन्द्रसूरि को रत्नप्रभसूरि का पट्टधर बताया है। दोनों ही कृतिकारों ने किसी का काल-निर्देश नहीं किया है, परन्तु तात्कालिक साहित्य-रचना[1] और प्रतिमालेख ऐसे उपलब्ध हैं जो समय की समस्या सुलझाने में सहायता करते हैं। प्रतिष्ठापक आचार्य के सं० १५०१ के लेख में (नाहटा संग्रह लेखांक २१५२) पूर्वाचार्य के नाम—जिनरत्नसूरि–(मुनिजी सं० पट्टावली में मुनिरत्नसूरि नाम दिया है) मुनि शेखरसूरि[2]–तिलकसूरि–भद्रेश्वरसूरि (दूगड़-गोत्रीय)—

---

१. श्रीमत्वृद्धगणे गुणेशगणभृद् भद्रेश्वरः सूरिराट्
तत्पट्टेऽथमुनीश्वर समभवत् सूरिमहेन्द्रभिधः
—जैन सत्य प्रकाश वर्ष ८ पृष्ठ ३१०

इस पद्य मे प्रशस्तिकार ने रत्नप्रभसूरि का नाम छोड़ दिया है।

२. इनके लिए पट्टावली में विशेष उल्लेख है—
यैः पूज्यैर्भट्टीद्रङ्गस्यैर्व्याचियानावसरे मुदा
श्रीशत्रुंजयगिरेरग्निर्हस्ताभ्यामुपशामितः
—विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह, पृष्ठ ५४

मुनिश्वरसूरि[1]–रत्नप्रभसूरि[2] और महेन्द्रसूरि। इनके विषय मे अविकल रूप से कुछ भी कहा जा सके वैसे साधन उपलब्ध नही है। इनके अस्तित्व काल मे रत्नप्रभसूरि के शिष्य लक्ष्मीनिवास ने स० १५१४ मे मेघदूत महाकाव्य पर वृत्ति रची थी।

महेन्द्रसूरि के पट्टधर के विषय मे दोनो गुर्वावलियो मे मतैक्य नही है। मुनि मलील इनके पट्टधर रत्नाकरसूरि बताते हैं और इस कथन का समर्थन विनयसागर सग्रह के स० १५११ के (लेखांक ४७१) से होता है। जब कि इसके विपरीत मुनिजो वाली पट्टावली मुनि निधानसूरि की ओर सकेत करती है। परन्तु किसी भी प्रतिमालेख मे इनका नाम दृष्टिगोचर नही हुआ। दानोपदेश-विनयधरचरितकार तो महेन्द्रसूरि के अनन्तर मेरुप्रभसूरि का ही नामोल्लेख करता है, अर्थात् इसने तो एक पट्ट ही विलुप्त कर दिया, आश्चर्य है कि एक ही गच्छ की समसामयिक पट्टावलियो मे इतना वैषम्य क्यो ?

महेन्द्रसूरि के अन्य लेख नाहटा—१५००–१८–१०, नाहर भाग १, १५१९ मे पाये जाते हैं।

---

१ इनके मस्तक मे मणि थी। कहा जाता है कि यह सत्रहवी शती तक पूजी जाती थी। वाद विवाद मे इनका प्राविण्य कितना प्रसिद्ध था इसका अनुभव तात्कालिक साहित्य एवम् स्फुटोपलब्ध पद्यो से होता है—

श्रीवृद्धगच्छे वादीन्द्रा श्रीमुनीश्वरसूरय
तेषा विनेयो व्यलिखिन्मुनिहृपधी-

पैरोजसाह सुलतान ने इन्हे वाद की प्रबल शक्ति के कारण ही वादीगजाकुश का मानभरा बिरुद प्रदानकर सम्मानित किया था। ये स०१३८८ मे आचार्य बने थे। मुनि जिनविजय-सम्पादित पट्टावली सग्रह मे इनके सम्बन्ध के तात्कालिक रचित पद्य पाद टिप्पण मे दिये गये हैं, पृष्ठ ५४।

२ इनको आचार्य पद स० १४५५ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को सरस्वतीपत्तन मे प्राप्त हुआ।

(८९) महेश्वरसूरि—(लेखांक ९८) हारीजगच्छीय

हारीजगच्छीय महेश्वरसूरि के किसी भी लेख में पूर्व-पट्टाधीश का नाम उल्लिखित नहीं है। परन्तु इनके प्रतिमा लेख सं० १४९४ से १५२८ तक प्राप्त होते हैं। सं० १५०८ का लेख इस संकलन में हैं अन्य मुनि विशालविजय १५२८, मुनि विद्याविजय १४९४–१५०१–११, बुद्धिसागरसूरि भाग २, १५१७, नाहटा १५२३, जन सत्यप्रकाश वर्ष ९ पृष्ठ ३८३।

(९०) माणिक्यसुन्दरसूरि—(लेखांक १९६) बृहद्गच्छीय

बृहद्गच्छीय किसी भी गुर्वावली में यह अनुल्लिखित हैं। इनका और कोई लेख देखने में नहीं आया। सं० १५२८ के लेख द्वारा ही यह आचार्य ऐतिहासिक जगत में अवतीर्ण हो रहे है। इस गच्छ की परम्परानुसार यह काल तो महेन्द्र-रत्नाकर या मेरुप्रभसूरि का पड़ता है। अतः यह मणिक्यसुन्दर संशोध्य हैं।

(९१) मुणिचन्द्रसूरि—(लेखांक १८)

यह लेख खण्डित दशा में प्राप्त है। सार तत्त्व केवल यही है कि धर्मसूरि आचार्य (पट्टे ?) मुणिचन्द्रसूरि। गच्छ का संकेत नही है। धर्मसूरि आचार्य का यह सक्षिप्त नाम है या क्या ? यह नही कहा जा सकता। इस नाम के अनेक आचार्यो का अस्तित्व रहा है, परन्तु यह सूरि वही होने चाहिएं जिनका सं० १३११ का एक लेख प्राप्त है और मुणिचन्द्रसूरि के पट्टधर गुणचन्द्रसूरि का भी प्रतिमालेख सं० १३०८ का मिला है।

विवक्षित आचार्य धर्मघोषीय तो नहीं हो सकते, कारण कि राजगच्छीय पट्टावली में मुणिचन्द्रसूरि अनुल्लिखित है।

(९२) मुनिचन्द्रसूरि—(लेखांक ३१७) ब्रह्माणगच्छीय

जिस गच्छ या शाखा की पट्टावली अनुपलब्ध हो, उसमें एक हो शताब्दी में काल-सामीप्य रखने वाले समाननामा आचार्यो की बहुलता

और पूर्व और उत्तर पट्टधर भी एक ही नाम के आचार्य की पुनरावृत्ति रही हो, ऐसे सूरिवरो के प्रतिमालेखो का विभाजन अनुसन्धित्सु के लिए प्रश्न चिह्न बन जाता है। विवक्षित आचार्य की परिगणना ऐसे ही सूरियो मे की जा सकती है। ब्रह्माणगच्छ मे बुद्धिसागर और विमलसूरि की पुनरावृत्ति के समान मुनिचन्द्रसूरि और वीरसूरि की स्थिति रही है। स० १४३३–१५७० के प्रतिमालेखो मे पुन-पुन एक दूसरे के पट्ट पर होते आये हैं। प्रकाशित प्रतिमालेखो के सम्पादको ने भी उन्हे कालिक दृष्टि से विभक्त करने का श्रम नही किया है। यदि सकेतित नाम वाले महापुरुषो की असवतीय रचना प्राप्त हो जाय तो किस आचार्य की कृति मानना ? यह उलझन खडी हो सकती है।

पन्द्रहवी शती के प्रथम मुनिचन्द्रसूरि के १४३३[1]–३४[2]–४७[3]–५८[4] लेख प्राप्त हैं, परन्तु किसी मे भी पूर्व-पट्टाधीश का सकेत नही है। यह आचार्य सलखणपुरीय थे[5]।

स० १४७१ का लेख मुनिचन्द्रसूरि के पट्टधर वीरसूरि का है[6]। यह पट्टपरिवर्तन कब हुआ ? कहना कठिन है, परन्तु इनके प्राप्त प्रतिमालेखो से अनुमित है कि स० १४६२ के पूर्व पदासीन हो चुके थे। स० १४६२[8]–६६[9]–६६[10]–७१[11]–७६[12] तक के लेख मिल हैं। इस वीरसूरि के पट्ट पर पुन मुनिचन्द्रसूरि—स० १४८३ के पूर्व प्रतिष्ठित हो जाते हैं[13]। इस सग्रह मे प्रकाशित स० १४९७ का लेख इसी सूरि का है,

१ बुद्धिसागरसूरि–सग्रह भाग १ लेखाक ३४१।
२ मुनि जयन्तविजय अबु दा० सन्दोह लेखाक ५९३।
३ बुद्धिसागरसूरि भाग १ लेखाक २६९।
४, मुनि विद्याविजय–सग्रह लेखाक ९८।
५ देखिये टिप्पण
६-९ बुद्धिसागरसूरि भाग १ लेखाक ४१८।
१० नाहर–सग्रह लेखाक १३९४।
११ बुद्धिसागरसूरि भाग २ लेखाक ४१८।
१२ मुनि विशालविजय–सग्रह ९९।
१३ मुनि यतीन्द्रविजय–सग्रह लेखाक १३।

कारण कि इस अन्तराल में वीरसूरि का और कोई पट्टधर ऐतिहासिक साधनों से प्रमाणित नहीं है। मेरा निश्चित अभिमत है कि सं० १४८३–१५१३ के मध्यवर्त्ती कालिक सभी लेख इसी आचार्य मुनिचन्द्रसूरि के हैं। इनके लेख इन संग्रहों मे प्राप्त है स० १४८३ (यतीन्द्र), १४९३ (विद्याविजय), १४९७ (वही), १४९८ (बुद्धिसागरसूरि-संग्रह), स० १५०१–५ (विद्या०), सं० १५०६ (भोगीलाल भाई सांडेसरा), सं० १५०७ (यतीन्द्र०), सं० १५०९ (बुद्धिसागर भाग १), सं० १५११ (इस संवत् के लेख नाहर, विनयसागर, विद्याविजय और बुद्धिसागरसूरि आदि के संग्रहों में मिलते है), सं० १५१२-१३ (बुद्धि० भाग १), सं० १५१३ (यतीन्द्र)। इनका अस्तित्व कब तक रहा? नहीं कहा जा सकता है, किन्तु सं० १५१६ के लेख से प्रमाणित है कि सं० १५१३–१६ के मध्य पुनः वीरसूरि पद प्रतिष्ठित हुए।

इनके लेख सं० १५३६ तक मिलते है। इसी वीरसूरि के पट्ट पर सं० १५४२ के लगभग पुनः मुनिचन्द्रसूरि आरूढ़ हुए। स० १५७९ तक के लेखों का सम्बन्ध इनसे है। इन्हीं के पारम्परिक शिवसुन्दर ने सिद्ध नित्यनाथ प्रणीत रसरत्नाकर की प्रति सं० १५९८ मे प्रतिलिपित की।

इसी संग्रह में संख्या ३१७ का लेख भी मुनिचन्द्रसूरि का है, परन्तु संवत् के अभाव में किसी के साथ इसका सम्बन्ध स्थापित करते संकोच होता है।

(६३) मुनितिलकसूरि—(लेखांक ५५) पूर्णिमापक्षीय

इन आचार्य के पूर्व-पट्टाधीश का नाम ज्ञात न हो सका। अन्य लेखों सं० १४६२ (बुद्धिसागरसूरि भाग १ लेखांक ४८५), सं० १४७२ (मुनि जयन्त० अर्बु०, लेखांक ६१२) में भी पूर्व आचार्य का नाम नहीं मिलता, न एतद्गच्छीय गुर्वावलियों में दोनों का पता चलता है। इनके पट्टधर राजतिलकसूरि के पर्याप्त लेख प्राप्त है।

(६४) मुनिरत्नसूरि—(लेखाक २२५–३६) आगमगच्छीय

आगमिक आचार्य मुनिरत्नसूरि किसके शिष्य रहे होंगे ? इस तथ्य का स्पष्टीकरण किसी प्रतिमालेख मे दृष्टिगोचर नही होता, परन्तु इनमे किसी अनामधारी विनेय प्रणीत आगमगच्छ-पटटावली मे आणद-प्रभसूरि के अनन्तर इनके यशोगान प्रस्तुत किये हैं। जिससे सिद्ध है कि यह आणदप्रभसूरि के पटटधर थे और इस तथ्य का समर्थन स० १५४२ के प्रतिमालेख से भी होता है (विद्याविजय सग्रह लेखाक ४८२)। इस लेख मे प्रतिष्ठापक आचार्य मुनि रत्नसूरि हैं और उपदेशक आणदप्रभसूरि, यह आगमगच्छ को विडालबीय शाखा के थे[1]।

सूचित पट्टावली मे मुनि रत्नसूरि का व्यक्तित्व इन शब्दो मे प्रदर्शित है—

सालकारावच सुधारसलसद्धारा (   ) पर प्रणीत
प्रत्येकाऽऽस्तिकचातका सुविहिता विज्ञाततत्वश्रिय
गम्भीरा जलराशिवद्विजययिन श्रीमृण्यपुण्योदया
नित्य श्रीमुनिरत्नसूरिगुरव कुर्व्वन्तु वो मगलम्

×   ×   ×   ×

तेउ आगमगणहर सधर सोह नित नवरस वरसइ सरस जीह
गुरु वन्दु भवियण हर्षपूरि जिइवन्ता श्रीमुनिरत्नसूरि

स० ६५४६ का नव्योपलब्ध तथा एक खण्डित लेख प्रकाशित है। प्रतिमा के परिकर का ऊर्द्ध्वभाग त्रुटित होने से महत्व का ऐतिहासिक अश विनष्ट हो गया। इनके अन्य लेख मुनि विद्याविजय १५४२, डॉ० भोगीलाल साडसरा १५२०, सग्रहो मे प्राप्त हैं। यो तो मुनि कान्तिसागर-सग्रह मे भी एक लेख पाया गया है, परन्तु उसका काल

१, स्व० मोहनलाल देसाई, जैन गुजर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२३३।

सं० १५०७ है। बहुत वर्ष पूर्व लिए जाने के कारण स्मरण नहीं परन्तु इसमें प्रमाद परिलक्षित होता है।

मुनिरत्नसूरि के पट्टधर आचार्य आणंदरत्न थे (बुद्धिसागरसूरि-संग्रह लेखांक १९५)।

(९५) मुनिसागरसूरि—(लेखांक ४९)

मुनि सागरसूरि का एक मात्र यही सं० १४५४ का लेख उपलब्ध है। शेष वृत्त अज्ञात है।

(९६) मुनिसुन्दरसूरि—(लेखांक ८१–९०–९२) तपागच्छीय

व्यक्ति स्वातन्त्र्यमूलक श्रमण-संस्कृति की प्रेरणा, प्रकाश और प्राणवान् पुरुषार्थ के प्रतीक थे मुनि सुन्दरसूरि, जिन्होने न केवल विशाल व्यक्तित्व एवम् निर्मल कृतित्व द्वारा मानव समाज को आध्यात्मिक आलोक की ओर गतिमान् किया, शम, सम और श्रम को दैनिक जीवन मे साकार किया, अपितु, कठोर संयम-साधना के माध्यम से जो आदर्श उपस्थित किया है, उस पर शताब्दियों तक मानवता गर्व कर सकती है, अनुप्राणित हो सकती है।

ऐतिहासिक तथ्य यह है कि शान्तिकाल में विलास और वैभव प्रोत्साहित होते है और संघर्षकाल में सस्कृति का विकास होता है। परन्तु मुनि सुन्दरसूरि का युग इसका अपवाद है। वह युग सभी दृष्टियों से समुन्नत था। उच्चकोटि का विद्वत्श्रमण-समुदाय एक ओर रचनात्मक साहित्य की साधना-अराधना और समुपासना में तन्मय था तो दूसरी ओर जीर्ण-जर्जरित पत्रों में व्याप्त वाङ्मय-राशि के उद्धारार्थ प्रयत्न-शील था। संस्कार सम्पन्न अनुयायीवर्ग मुनियों के अमृतोपमवचनामृतों का श्रद्धासहित पानकर उन्हें जीवन में उतारने को व्याकुल था। भारतीय-शिल्प-स्थापत्य और मूर्त्तिकला के मुख को समुज्ज्वल करने वाली सौन्दर्य सम्पन्न कृति निर्माणनार्थ उद्धृत था। इतना ही नहीं

सस्कृति की आत्मा को सभ्यता के किसी उपादान द्वारा विस्तृत करना चाहता था, हमारा तात्पर्य ग्रन्थस्थ चित्रकला से है। उनको रेखाए और रगो मे जो दीप्तिमयी आभा, रूप-राशि ज्योतित है, शताब्दिया व्यतीत हो जाने के वावजूद भी आज क्या हम उनसे प्रतिविम्बित नही हो रहे हैं ? भारतीय समाज, लोकव्यवस्था, दर्शन और धम के चिराचरित मौलिक सिद्धान्तो का शब्द शिल्पी कथा-साहित्यकारो ने अपनी सशक्त चिर-सगिनी लेखनी के सहारे जन-समक्ष उपस्थित किया तो रूपप्रदाताओ ने उन्हे चित्रित कर सस्कृति का अभिन्न अग वना दिया। श्रमणो का इसमे विशेष योग था, वे सदा से कलोपासक और परमोन्नायक रहे हैं, परन्तु आज तक इन कलात्मक रचनाओ का समुचित मूल्याकन नही हुआ है। अस्तु

व्यक्तित्व

यह सचमुच आश्चर्य ही है कि सोमसुन्दरसूरि-युग की सामान्य या नगण्य घटनाओ को एक ओर जहाँ साहित्य मे स्थायित्व प्रदान किया गया है वहा दूसरी ओर आचार्य मुनि सुन्दरसूरि जैसे प्रकाण्ड विद्वान् के जन्मस्थान और परिवारिको तक का पता नही चलता। तात्कालिक लेखको ने इन्हे क्यो उपेक्षित रखा ? एक प्रश्न है।

धर्मसागरगणि ने इनका जन्म काल स० १४३६ दिया है और लघुपौसालिक पट्टावली मे[1] १४२६ सकेतित है। दीक्षा काल की दृष्टि से यह सवत् अधिक तर्कसगत ह। स० १४४३ मे देवसुन्दरसूरि के कर कमलो द्वारा दीक्षा अगीकार की, सोमसुन्दरसूरि के प्रथम शिष्य बने।

तच्छिष्य प्रथम समर्थमहिमा त्रैवेद्यगोष्ठीगुरु
सुरि श्रीमुनिसुन्दर सुरुगुरु ख्यात क्षितौ प्रज्ञया[2]

---

१ विविधगच्छीय पट्टावली-सग्रह पृष्ठ ४१

२ विशतिस्थानकविचारामृतसार सग्रह–प्रशस्ति

सं० १४६६ में वाचक पद अब तक यह बौद्धिक परिचय से श्रमण-समुदाय को चमत्कृत कर चुके थे। इसी वर्ष में न्याय, व्याकरण और काव्य के लाक्षणिक सिद्धान्तों के आधार पर त्रवेद्यगोष्ठी का प्रणयन किया, साथ ही त्रिदशतरंगिणी नामक महाविज्ञप्ति पत्र (एक सौ आठ हाथ लम्बा) देवसुन्दरसूरि की सेवा में प्रेषित किया। भारतीय साहित्य को इस अमरनिधि से आज हम वंचित हैं। केवल गुर्वावली वाला स्वल्पांश ही सुरक्षित रह सका है। साहित्यिक और लाक्षणिक रचनाओं पर इनका कितना अधिकार था, इसके प्रमाण स्वरूप इनका साहित्य और विशेषकर स्तोत्रात्मक रचनाएं आज भी उक्त पंक्ति की सच्चाई सिद्ध करती हैं। संकेतित पत्र में प्रासाद, चक्र, सिंहासन, भेरी, अशोक-वृक्षादि अष्टप्रातिहार्यादिक अनेक चित्रमय पद्य गुम्फित थे।

आनन्दपुर/वृद्धनगर सांस्कृतिक दृष्टि से शताब्दियों से विख्यात रहा है। यहां का श्रीसंघ देवसुन्दरसूरि के श्रमण-समुदाय के प्रति आस्थावान् था। मुनिसुन्दर की प्रतिमा चतुर्दिक् व्याप्त हो चुका थी। संघाग्रणी देवराज, हेमराम और घटसिंह/गड़सिंह बन्धुत्रय की प्रबल प्रेरणा के परिणाम स्वरूप आलोच्य विद्वान् को सं० १४७८ में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। इसी वर्ष बन्धुत्रय ने संघपति बन नव्याचार्य के साथ विमलगिरि की यात्रा की। वर्षों की श्रद्धासिक्त प्रतीक्षा के अनन्तर मानव आराध्य के प्रति समुपस्थित होता है, और वह भी यदि संवेदनशील हो तो उसके हृदयोल्लास-आत्मानन्द को शब्दों की सीमा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। आचार्यश्री ने उपास्य के समक्ष भक्ति की सुर-सरिता बहा दी। वही स्तुति-स्तोत्र साहित्य की अमर निधि बन गई। इस समय के रचित स्तुति-स्तोत्र इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में सुरक्षित हैं, इनमें बन्धुत्रय के नाम भी है।

साहित्य-साधना

यह सर्वस्वीकृत सत्य है कि अनाकांक्षी साहित्य प्रणेता की वाणी ही हृत्तंत्री के तारों को झंकृत कर सकती है। शताब्दियों तक जन-मन

मे जीवित रहती है। मस्तिष्क के विचार स्वल्प क्षणो के लिए चमत्कार भले ही उत्पन्न कर दें, परन्तु हृदय मे शाश्वत स्थान नही बना सकते। विशिष्ट चित्तवृत्ति का निर्माण कर केवल लिखने के लिए लिखा जाने वाला साहित्य अपनी मौलिक सज्ञा ही खो बैठता है। सवेग-रसपूर्ण जीवन के अनवद्यानुभव, ज्ञानग भीर्य एवम् स्वान्त सुखाय अभिव्यक्त साहित्यानुभूति अमरता प्राप्त करती है। कृतित्व की पृष्ठभूमि जितनी निर्दोष पूर्ण और बलिष्ट होगी, साहित्य उतना ही सर्वभोग्य होगा। आचार्य मुनि सुन्दरसूरि ने जीवन मे सम्यक् ज्ञान के प्रकाश मे, पूज्य स्थविरो की सेवा-सुश्रुषा द्वारा अनुभवमूलक तथ्य प्राप्त किये, इसी से स्व और पर जैसे भेदो से वे परे थे। उनका स्व लोककल्याणार्थ पर मे विलीन हो गया था। श्रमण-परम्परा के समन्वय-साधक मार्गावलम्बन ने उन्हें महामानव बना दिया था। उनकी स्पदनशील वृत्ति सशक्त माध्यम द्वारा समय-समय पर प्रवाहित होती रही। वही कालान्तर मे श्रेष्ठ साहित्य बन गया। वे केवल शब्द शिल्पी न होकर जीवन के सक्षम कलाकार थे। मानवता सम्पोषण ही उनके जीवन का अविव्रत था। पाडित्य समन्वित इनकी अक्षर-देन के प्रतीक हैं—कुछ पुष्प जिनका सौरभ आज भी महकता है—

स० १४५५ मे चतुर्विंशतिस्तोत्ररत्नकोश, त्रैवेद्यगोष्ठी, स० १४८३ मे जयानन्दचरित्र-महाकाव्य[1], स० १४८४ मे मित्रचतुष्ककथा और आध्यात्मकल्पद्रुम, स० १४९३ मे उपदेशरत्नाकर स्वोपज्ञ वृत्ति, पाक्षिकसत्तरी, अगुलसत्तरी, योगशास्त्र-चतुर्थ प्रकाश का बालावबोध सतिकर स्तोत्र, दर्जनो अन्य स्तुति-स्तोत्रादि।

विज्ञप्तिपत्र स्त्रोत

आचार्यश्री के अनेक समकालिक और पारिवारिक श्रमणो ने सूचित किया है कि बाल्यकाल से ही माता भारती की इन पर महती

---

१ इस चरित्र के आधार पर स० १५५८ पद्मविजय ने लीबडी जयानन्दरास रचा, इसकी अन्त्य प्रशस्ति मे कवि ने ऋण स्वीकार किया है।

अनुकम्पा थी। त्रैवेद्यगोष्ठी इसका परिणाम है। अनन्तर इनकी भारतीय पत्र साहित्य की मूल्यवान् रचना का उल्लेख प्राप्त है, जो आज हमारे सम्मुख नहीं है। मानव स्वभावानुसार अज्ञात के प्रति उसका आकर्षण रहता ही है, ज्ञात से अज्ञात की कल्पना वसे भी कम सुखद नहीं रहती। इस कृति में कवि का साहित्यिक उन्मेष, युवावस्था की उमंगें तरंगें, वैदुश्य और सद्यःप्राप्त आलंकारिक ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई होगी। प्रश्न हो सकता है कि इस प्रकार का पत्र लिखने की प्रेरणा इन्हें कहां से प्राप्त हुई? त्रिपुटी महाराज ने अपने जैन परम्परा के इतिहास (भाग ३ पृष्ठ ४६७) में इस रचना को जयसागर उपाध्याय की विज्ञप्तित्रिवेणी का स्रोत बताया है। तो यह भी किसी पूर्ववर्त्ती १ विकृति से प्रभावित रचना हो सकती है।

भारतीय पत्र लेखन कला में जैन श्रमणों का दान अपूर्व रहा है। कई पत्रों को तो खण्ड-काव्य की सज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। ऐस महापत्रों में सर्वप्रथम स्थान उस विज्ञप्ति पत्र का मिला है जो स० १४४१ में पाटन चातुर्मास स्थित जिनोदयसूरि ने लोकहिताचार्य को साकेत प्रेषित किया[1] था। मुनि जिनविजयजी के शब्दों में—

"यह पत्र वहुत ही सुन्दर एवं प्रौढ़ साहित्यिक भाषा मे लिखा गया है। वाण, दण्डी और धनपाल जैसे महाकवियों द्वारा प्रयुक्त गद्य शैली के अनुकरण रूप में यह एक आदर्श रचना है। आलका-

---

१. इसे खोज निकालने का यश मुनि श्रीमंगलसागरजी महाराज को प्राप्त है। सं० १९९५ के चातुर्मास में आचार्य जिनचन्द्रसूरि के समीप यह देखा गया था। इसे प्रकाशित करने के लिए तत्काल छायाचित्र उतरवा कर पाण्डुलिपि तैयार कर ली गई। वाद में मुनि जिनविजयजी को वताने पर उन्हें, अपनी सिन्धीग्रन्थमाला में प्रकट करने की इच्छा होने पर, आवश्यक सामग्री सौंप दी गई जो ग्रन्थमाला के ५१वें पुष्प मे प्रकट हो चुकी है। उसकी भूमिका मे मुनिजी ने इसकी मूल प्रति कागज पर लिखी होने की वात कही है वह सही नहीं है, वह तो वस्त्र पर अंकित है।

रिक भाषा की शब्दच्छटा के साथ, इसमे ऐतिहासिक घटना के निदर्शक वर्णनो का भी सुन्दर पुट सम्मिश्रित है[1]।"

इसी पत्र से उत्प्रेरित होकर मुनि सुन्दरसूरि ने अपने ढग से त्रिदशतरगिणी की रचना की। इसका गुर्वावली का अश सुरक्षित रह सका है, वह शोधको के लिए बडे महत्व का है। इसमे तपागच्छ के आचार्यो का इतिहास वर्णित है। जिन दिनो यह पत्र लिखा गया उन दिनो मेवाड पर महाराणा लाखा का शासन था। मेवाड के इतिहास के प्रति शासक सचिन्त था। आगे चल कर मोकल और कुम्भकर्ण ने शोध के क्षेत्र को प्रशस्त किया। इन सब बातो का प्रभाव आचार्य पर न पडा हो यह नही माना जा सकता। असम्भव नही कि स० १३०५ मे निर्मित जिनपालोपाध्याय की बृहद्गुर्वावली भी इनने देखी हो।

स्त्रोत साहित्य

स्तुति-विद्या के क्षेत्र मे सफल स्तोता आचार्य जिनप्रभसूरि के अनन्तर मुनिसुन्दरसूरि का स्थान आता है इनमे स्तुत्य के गुणो को जीवन मे उतारने की प्रबल तितिक्षा थी। पापो को जीतना ही स्तुति का एक मात्र फल है। विशुद्ध भाव से अनाकाक्षी की प्रार्थना से पूर्व के पाप नष्ट हो जाते हैं। स्तुति अराध्य की उपासना का ऐसा अग है कि जहा भक्त तन्मय होकर स्वल्प क्षणो के लिए अपने आपको विस्मृत कर देता है। जिस प्रकार जिनप्रभसूरि का नियम था कि जब तक एक नया स्तोत्र निर्मित न कर लें तब तक मुख मे पानी नही डालते थे, इसी प्रकार मुनि सुन्दरसूरि के विभिन्न स्थानो के स्तोत्रो से अनुभूति होती है कि वे जहाँ भी दर्शनार्थ या यात्रार्थ पधारते वहा बनी बनाई पुरातन स्तुति की अपेक्षा तत्काल नव्य स्तोत्र बनाकर अपनी भावपूर्ण तीर्थाजलि अर्पित किया करते थे। सद्य जात इनकी स्तुतिमूलक रचनाओ मे भाव, भाषा और आलकारिक पाण्डित्य का सफल प्रदर्शन सर्वत्र परिलक्षित होता है। इन

---

१ मुनि जिनविजय–विज्ञप्तिलेखसग्रह, प्रास्ताविक पृष्ठ २

पंक्तियों के लेखक के संग्रह में मुनिसुन्दरसूरि के लगभग सभी स्तोत्र-संग्रह की एक प्रति सुरक्षित है जो उनके किसी शिष्य या पारिवारिक ने स्वाध्यायार्थ तयार की है। इसमें कौन सा स्तोत्र कहां ? किस संवत् में ? और किसकी प्रेरणा से बना और यात्रा में कौन प्रमुख व्यक्ति साथ थे आदि अनेक ऐतिहासिक सूत्रों का निर्देश है। प्रति परिचय की अपेक्षा स्तोत्र संकेत देना ही पर्याप्त होगा—

१. चतुर्विंशतिजिनकल्याणक स्तवग, पद्य २६,२–जीरापल्लीपार्श्वनाथ स्तवन पद्य ३२, (रचना सं० १४७३), ३–शत्रुंजयश्रीआदिनाथ स्तोत्र, पद्य २६, (रचना काल १४७६), ४–गिरनारमौलिमण्डन-श्रोनेमिनाथस्तवनम्, पद्य २४ (सं० १४७६), इस यात्रा मे बडनगर के देवराज, स० हेमा और धड़सिंह साथ थे, इनने छत्र, चामर आदि पूजा के समस्त स्वर्णनिर्मित उपकरण समर्पित किये थ, ५–शत्रुंजय आदिनाथस्तवनम्, पद्य २६, (रचना स० १ ७६), ६–वृद्धनगरस्थ आदिनाथस्तवनम्, षद्य २६, (रचना स० १४····), ७–सारणदुर्ग–अजितनाथस्तोत्रमं पद्य २५, (रचना काल १४····) इस कृति में तारगा के इतिहास पर संकेत है, ८–इलादुर्गालंकार-श्रीऋषभदेव स्तवनम् पद्य २४, (संवत् १४····) सीरोहीस्थः····
यहां से भाग विलुप्त है, परन्तु यह स्तोत्र एकलिंगजी के समीपस्थ नागदा से सम्बद्ध है, ९–सीमंधरस्वामि स्तवनम् पद्य २५, (स० १४८२ वर्शे सीराह्यां), १०–वर्द्धमान जिनस्तवनम्, पद्य २८, अजाहरीस्थः, ११–वर्द्धमानजिनस्वतनम् पद्य २८, केवलाक्षरपद, १२–श्रीजिनपतिद्वात्रिंशिका पद्य ३२, (सवत् १४८३ वष देवकुलपाट के चातुर्मासिसकमवस्थितः) यह भी खण्डित है, प्रति क इतन ही पत्र प्राप्त हैं। प्रत्येक स्तोत्र मे मात्राओं के भिन्न-भिन्न चिह्न बने है। लिपि अतीव सुन्दर और नयनप्रिय है।

स्तम्भ/खम्भात के जफरखान ने इन्हें वादिगोकुलसंढ का तथा दक्षिण के विद्वानों ने कालीसरस्वती विरुद देकर सम्मानित किया था। आचार्य का शिष्य-प्राशिष्यादिक परिवार विद्वान् और

विद्याव्यासंगी था। इनका परिचय तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का ही विषय है।

आचार्य सोमसुन्दरसूरि के पट्टधर इन आचार्य के प्रतिष्ठालेख व्यापक प्रभाव को देखते हुए सीमित प्रतीत होते हैं। इसका एक मात्र कारण यही जान पडता है कि गुरुवर की विद्यमानता मे इन्हे कार्य सम्पादन के अवसर कम ही मिले, सामूहिक प्रतिष्ठालेखो मे इनका नाम अनेक आचार्यो के साथ दृष्टिगोचर होता है। इस सग्रह मे इनके तीन प्रतिष्ठा लेख दिये है, शेष के लिए निम्न दृष्टव्य हैं—

नाहटा—१५०१, नाहर भाग १, १५०१, भाग २ १४८८–१५००-१, बुद्धिसागरसूरि भाग २, १४८६–९६–१५०१, भाग १, १४९७-९९–१५००–१, विद्याविजय १५०१, मुनि कान्तिसागर १५०१, मुनि विशालविजय १४९७–१५००–२।

(९७) मेरुप्रभसूरि—(लेखांक ३१९) बृहद्गच्छीय

प्रतिमा का परिकर खण्डित होने से लेख का पूर्वांश नष्ट हो गया है। प्रतिष्ठापक आचार्य बृहद्गच्छीय प्रभाकरसूरि के पट्टधर हैं, इतने सकेत से आचार्य के समय की समस्या हल हो जाती है। मुनि माल ने बृहद्गच्छ गुर्वावली मे इन्हे रत्नाकरसूरि के बाद का आचार्य बताया है और मुनि जिनविजय सम्पादित गुर्वावली मे इनका स्थान गुणनिधानसूरि के अनन्तर है। विनयसागर सग्रह मे १५२८–१५४२ (क्रमश लेखांक ७०३–८२८) के लेख उपलब्ध है जिनमे बृहद्गच्छीय मेरुप्रभसूरि का नाम है। नाहटा सग्रह के स० १५३६ (लेखांक २७२१) के लेख मे रत्नाकरसूरिपट्टे मेरुप्रभसूरि का सकेत मिलता है। अत्र प्रकाशित लेख मे मेरुप्रभसूरि को प्रभाकरसूरि-पट्धर बताया है। रत्नाकर और प्रभाकर मे अर्थानुसन्धान की दृष्टि से कोई अन्तर नही है। अन्त साक्ष्य से प्रमाणित है कि मेरुप्रभसूरि बृहद्गच्छीय रत्नाकरसूरि के पट्टधर थे।

इनके अन्य लेख सं० १५२४ और सं० १५४२ विद्याविजय-संग्रह मे (लेखांक ३८०-४८५), नाहटा-संग्रह सं० १८५७ (लेखांक १८३०) (यह संवत् गलत छपा है, सम्भवतः १५३० हो) पाये जाते है। मुनि जयन्तविजय-अर्बुद० प० में भी लेखांक ७२ में खण्डित लेख प्रकाशित है, पर वह इनका है या क्या? कारण कि वहां उपदेशक आचार्य हैं, जबकि यह तो प्रतिष्ठापक कोटि के आचार्य हैं।

य

(६८) यशप्रदेवसूरि—(लेखांक १६) निवृत्तिगच्छीय

समुचित आचार्य का केवल यही एक मात्र लेख है। विशेष परिचय ज्ञात नही। यह मूर्त्ति प्रतिमाविधान की दृष्टि से अध्ययन की वस्तु है।

र

(९९) रत्नप्रभसूरि—(लेखांक ५२) नगेन्द्रगच्छीय

नागेन्द्रगच्छीय आचार्य का केवल यही लेख उपलब्ध हुआ है। इस नाम के सूरिवर के लेख तो और भी समुपलब्ध हैं, पर गच्छ का उल्लेख न होने से उनका सम्बन्ध इनसे कैसे स्थापित किया जाय? नाहर संग्रह में सं० १४३७ का (लेखांक ११३६) एक लेख प्राप्त है, किन्तु वह आचार्य उपदेष्टा हैं।

(१००) रत्नशेखरसूरि—(लेखांक ६८) धर्मघोषगच्छीय

मलयचन्द्रशेखरसूरि के पट्टधर इन रत्नशेखरसूरि का केवल यही लेख मिला है। आचार्य नाम और संवत् देखकर मैं स्वयं चकित था कि मलयचन्द्रसूरि-शिष्य तो पद्मशेखरसूरि या विजयचन्द्रसूरि थे, रत्नशेखर का नाम कहीं देखने में नहीं आया। अतः पुनः प्रतिमाजी निकलवा कर जांच की गई कि कहीं लेख में मुझसे प्रमाद तो नहीं हुआ है? परन्तु नाम रत्नशेखरसूरि का ही पाया गया, अभी तक की प्राप्त एतद्गच्छीय पट्टावली में इस नाम के किसी आचार्य का उल्लेख नहीं है। कालिक दृष्टि से मलयचन्द्रसूरि का साम्य असंदिग्ध है।

(१०२) रत्नसिंहसूरि—(लेखाक ६४–८८–११५–१३९–१४८)
बृहत्तपागच्छीय

प्रस्तुत रत्नसिंहसूरि रत्नाकर या वृहत्तपागच्छीय जयपुण्ड्र-जयतिलकसूरि के पट्टगौरव थे। आचार्य रत्नाकरसूरि से तपागच्छ ने रत्नाकरगच्छ सज्ञा प्राप्त की, यथा—

ततो रत्नाकर सूरिर्ज्ञानरत्नमहोदधि
यतो रत्नाकराभिश लेभे वृद्धतपागण [1]

समरसिंह द्वारा समुद्धृत शत्रुजय की प्रतिष्ठा मे आचार्य सम्मिलित थे। यद्यपि यह प्रश्न सर्वथा निर्विवाद नही है तथापि इतना तो सत्य है कि तत्सघ मे रत्नाकरसूरि[2] भी थे। स० १५८७ मे विवेकधीर द्वारा प्रणीत शत्रुजय तीर्थोद्धार[3] प्रबन्ध, नयसुन्दर कृत शत्रुजय रास[4] एव

---

१ विविधगच्छीय पट्टावली सग्रह, पृष्ठ २६।
यही पद्य नयसुन्दर ने सारस्वत टीका मे उद्धृत किया है।

२ बृहद्गच्छीयवियच्चन्द्राश्चारुचारित्रधारिण
अचलन् सह सघेन श्रीरत्नाकरसूरय
—नाभिनन्दनजिनोद्धार प्रबध, प्रस्ताव ४, पद्य २७८, पृष्ठ १५०

३ आसन् वृद्धतपागणे सुगुरवो रत्नाकराह्वा पुरा
ऽय रत्नाकरनामभृत् प्रववृते येभ्यो गणो निर्मल
तैश्चक्रे समराख्यसाधुरचितोद्धारे प्रतिष्ठा शशि-
द्वीपव्येमितेपु विक्रमनृपादब्देष्वतीतेपु च
—उल्लास। पद्य ६३

४ सवत् तेर एकोत्तरे श्रीओसवश-शणगार हो
शाह समरो द्रव्य-व्यय करे पञ्चदशमो उद्धार रे
श्रीरत्नाकरसूरीवरु वडतपगच्छ-शणगार हो
स्वामी ऋषभ ज थपीआ समराशाहे उदार रे
—ढाल ९, पद्य ९३–९४

ऐसा ही उल्लेख स० १५२४ की प्रशस्ति मे भी आता है—
ज्ञानादिरत्नोकरभूपिताणा रत्नाकरा सूरिवरा अभासन्
प्रतिष्ठपद् वे समराधु साधुर्नाभिबिम्ब विमलाद्रिशृगे
—जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७ पृष्ठ ४८५

तदनुवर्त्ती लेखकों ने इन्हें प्रतिष्ठापक आचार्य स्वीकार किया है। बृहत्पोसालिक[1] पट्टावली में उद्धृत गिरनार-प्रशस्ति के पद्य भी इस कथन के समर्थन में उपस्थित किये जा सकते हैं।

इनकी कीर्त्ति-गाथा गिरनार-प्रशस्ति के आधार पर पट्टावली में इस प्रकार समुद्धृत है—

तेषामन्वयशालिनस्त्वभिनवश्रीगौतमश्रीधराः
श्रीरत्नाकरसूरयस्त्रिभजगतीविख्यातसत्कीर्त्तयः। ६६
यतो धर्मं लब्ध्वा द्विनवतिविहारानरचयत्
सुधीः श्रद्धः पृथ्वीधर उरुवरालंकृतिधरान्
तथा सिद्धद्रो श्रीवृषभीभुवनं हेमघटिकै-
र्कविंशत्या मेरोः शिखरमिव गांगेयकलितम्। ७०
किंवर्ण्यते झंझणदेवनाम्नः सूनोस्तदीयस्य यशः प्रशस्तिम्
शत्रुँजयादागिरिनारशृंग यो दाद् ध्वजं हेममयं किलैकम्। ६१

रत्नाकरसूरि अत्यन्त निस्पृह प्रकृति के महापुरुष थे। समत्व उनके जीवन में साकार था। गिरनार-यात्रार्थ पधारते हुए अम्बिका ने परीक्षार्थ एक मणि मार्ग में रख दी। समस्त शिष्य परिवार का उस पर ध्यान जाना आवश्यक था, इस सुन्दर प्रभावपूर्ण मणि को देखते ही शिष्यों ने जिज्ञासा की कि यह क्या है? पूज्यश्री ने कहा चिन्तामणिरत्न। रत्न की वास्तविक परीक्षा लेने के लिए गुरु ने कहा कि हे मणि

---

१. वर्षे विक्रमतः कुसप्तदहनैकस्मिन् युगादिप्रभुः
श्रीशत्रुंजयमूलनायकमतिप्रौढप्रतिष्ठोत्सवम्
साधुश्रीसमराभिधस्त्रिभुवनीमान्यो वदान्यः क्षितौ
श्रीरत्नाकरसूरिभिर्गणधरैर्यै स्थापयामासिवान्
—विविधगच्छीय पट्टावलीसंग्रह, पृष्ठ २६

२. विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह पृष्ठ २६।

स्तम्भतीर्थ-खम्भात के ज्ञानागार से सटीक पचमाग ले आ। तत्काल भवगतीसूत्र उपस्थित किया गया। परीक्षण पूण हुआ। सयम के समक्ष इस मणि का कोई मूल्य न था, यथास्थान वह रख दी गई, अदृश्य हुई। आध्यात्मिक विकास के क्षेत्र मे अष्टसिद्धि और नव निधि का कोई महत्व नही होता, ऐसे अपूर्व त्याग के कारण ही रत्नाकरगच्छ ने जैन सस्कृति की शताब्दियो तक महती सेवा की।

जयतिलकसूरि भी इसी परम्परा के प्रभावक, उदारचेता और परम सयमी साधु थे। न केवल इनने इक्कीस बार गिरिराज यात्रा ही की थी, अपितु श्रद्धालुओं को सघपतित्व के गौरव से मण्डित कर सुविख्यात आचार्य सघतिलकसूरि, जो सूरिमन्त्र के सफल प्रणेता थे, को आपने ही आचार्य पद समर्पित किया था।

जिनशासन रूपी मण्डन के स्तम्भ, अतिशय धारी, समर विजेता मिथ्यात्वांधकार रूपी मतग के लिए मृगेन्द्रसम और अनेक पदवी-धारी विशाल परिवार के अनुशास्ता जयतिलक ने धमशेखरसूरि, माणिक्यसूरि और रत्नसागरसूरि आदि को सूरि पद प्रदान किये थे। स० १४४९ मे गिरनार का जो उद्धार हुआ था उसके प्रेरक यही थे।[1]

---

१ प्रबोध्य प्राप्य श्रीविजयतिलकसूरिप्रभुगुरो
व्यधात् प्रासादस्योत्धृतिमतिकला रैवतगिरौ (१४४९)
विभोर्नेमे सर्वाद्भुतविरचितोत्तुङ्ग शिखरा
—विविधगच्छीय पट्टावली सग्रह पृष्ठ ३०

नयसुन्दर ने गिरनार उद्धार रास में भी इस प्रकार उल्लेख किया है—

श्रीजयतिलकसूरीद जसउपदेशे आणद
श्रीश्रीमाली विभूषण हरपति शाह विचक्षण
विक्रमराय थी वरसें चौदसें ओगणपचासे
रैवत प्रासादे नेम उधरियो अति प्रेम

आचार्य रत्नसिंहसूरि का पूर्व जीवन अन्धकार में है। केवल इतना ही संकेत प्राप्त है कि इन्हें सं० १४५२ में स्तम्भतीर्थ में जयतिलकसूरि ने आचार्य पद प्रदान किया था[1], इसी अवसर पर साध्वी रत्नमूला को महत्तरा पद से अलंकृत किया था[2]।

गिरिपुर/डूंगरपुर नगर के घीआविहार-जिनप्रासाद में पित्तलमयी एक सौ पच्चीस मन से भी अधिक वजन की जिन मूर्त्तियाँ रत्नसिंहसूरि ने प्रतिष्ठित कीं। इस ऋषभजिनप्रासादस्थ प्रतिष्ठा के समय आरती, मंगलदीप और चँवर पट्टावली प्रणयन काल तक विद्यमान रहने की सूचना मिलतो है[3]। कोटनगर/गलियाकोट का उल्लेख देवसुन्दरसूरि (संख्या ६२) प्रसंग में आ चुका है। उस संभवनाथ-प्रासाद की प्रतिष्ठा का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त था. कालान्तर में इसी प्रासाद में सं० १६३७ में देवकुलिकाओं का निर्माण हुआ और इसी परम्परा के सूरियों द्वारा उनमें प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा हुई। जीरावला तीर्थस्थ देवकुलिकात्रय का निर्माण

---

१. चतुर्वाणमनु प्रमेयसमये श्री स्तम्भतीर्थेपुरे
येन श्रीजयपुण्ड्रसूरिगुरुणा विश्वप्रसिद्धोत्सवम्
श्रीमत्सूरिपदं गणोदयपदं श्री रत्नसिंहप्रभो-
रद्यापि प्रसरत्प्रतापयशसः संविन्निधेः कारितम्। २६

२. लक्ष्मीकल्पलतानिदानविकसद्दानप्ररोहत्फलैः
संप्रीणन् जगतीगताखिलजनानन्दप्रदीप्यन्मनाः
तत्रैवोह् सदार्हदोक्तिचतुरां श्रीरत्नचूलाभिधां
साध्वी साधुगुणा महत्तरपदे य- स्थापयामासिवान्।

गुर्वावली में भी रत्नचूला का गौरव के साथ उल्लेख किया है—

मेरुचूला महुत्तर सपाट धर्मगणी अजूयाली वाट
रतनचूला अच्छमहत्तर वांदिउं जयवंता सउवरस

—मुनि पुण्यविजय—प्रशस्यादिसंग्रह पृष्ठ ३६१

—विविधगच्छीय पट्टावली संग्रह पृष्ठ ३०

३. वही पृष्ठ ३१

इनके उपदेश से स १४८१ मे प्राग्वाटकुनीन खेता के परिवार ने करवाया था[1]।

अहमदशाह-प्रतिबोध

पुरातन काल मे राजा-महाराजा या अन्य सत्ताधीशो को आकृष्ट करने के लिए आचार्यगण विशेष रूप से प्रयत्नशील नही थे, अपितु वे स्वय उनके सयमादि विशिष्ट गुणो से खिंच आते थे। अहमदाबाद की नीव पड़ चुकी थी। विशाल दुर्ग मे कोष्ठक थे। प्रत्येक मे यागिनी का वास था। तदर्थ शताधिक प्रयत्न करने पर भी शान्ति का अनुभव न हुआ। इस कष्ट के सम्मुख शाह को अपना साम्पत्तिक वैभव नगण्य प्रतीत होने लगा। अहमदाबाद में ही फत्ता नामक एक गुरुभक्त था, उसे बुलवाया गया और उपद्रवोपशमनार्थ वह क्या कर सकता है ? पूछा गया, इन्हे गुरु प्रयत्न पर पूरा विश्वास था।

समयज्ञ सत को परखते समय न लगा। प्रत्युपन्नमति ने आकृति निरीक्षण से ही अनुमान लगा लिया कि यह यागनियो के उपद्रव का परिणाम हैं। आद्रोनेमिजिन नौमी स्तोत्र एव सवतोभद्रयन्त्र द्वारा अहमदशाह का कष्ट दूर किया और वह सदा के लिए सूरिजी का अनुरागी बन गया[2]। जीणदुर्ग का अधिपति रा' मागलिक भी इनका परमभक्त

---

१. यतीन्द्रविजय-लेखाक २७४–५–७६

२ तत्पट्टे सूरय शग्वद्रत्नसिहा दिदीपिरे
सद्भ्य स्वेष्टप्रदानेन यैर्व्वा गौतमायितम्
जायते स्मा ह्म्मदावादाधिप शाहिरहम्मद
त प्रवोध्य महीपीठे चक्रिरे शासनोन्नतिम्।

नयसुन्दर आदि एतत्परम्परा के मुनिवरो ने अपनी रचनाओ की अन्त्य प्रशस्तियो मे इस घटना का स्मरण किया है। पट्टावली में इसका विस्तार है।

था। सं० १५०७ में अमारिका आदेश निकाला था[1], सं० १५०९ माघ शुक्ला ५ को रैवताचल/गिरनार पर विमल/प्रासाद की प्रतिष्ठा की[2]।

धनराज प्राग्वाट्

रत्नसिंहसूरि का विहार प्रदेश-व्यापक था। उनके अनुयायियों की विशाल संख्या रही होगी। इनमे अ क राजकीय और सत्ता सम्पन्न व्यक्ति भी सम्मिलित थे। यहां सूरिवर के एक अनन्य उपासक का परिचय दिया जा रहा है। वह उपासक था मन्त्री धनराज। इसकी जाति पोरवाड़ थी और ये रणथम्भोर के शासक अलाउद्दीन खिलजी का मन्त्री था। इसका शासन काल सन् १५१०–३१ का मध्यवर्त्ती काल रहा है। यह मालव का सुलतान और महमूद द्वितीय के नाम से इतिहास में विख्यात रहा है। प्रबोधमाला में रत्नसिंहसूरि विषयक उल्लेख इन पद्यों में आया है—

खलचीवंशविभूपणसालेरल्लावदीनभपस्य
विश्वासपात्रमनघं धनराजो मन्त्रनायको जीयात् १२
स द्रव्यतः प्रवरभावत आददे यः सम्यक्तवरत्न-
मितिदुर्लभमत्र वृतौ
शंकादिदोषरहीतं धनदः स जीयाद् श्रीरत्नसिंह-
सुगुरौः पदपद्ममूले १३
श्रीचैत्रगणे गणनातिगुणगणैकनिधिरासीत्
श्रीरत्नाकरसूरिः यन्नाम्न्या रत्नाकरातपागच्छः
श्रीवद्धशालीयगणे भदन्ताः श्रीजैत्रपूर्वाज्ञितलका बभूवुः
तत्पट्टपूर्वाचलचन्द्ररोचिः सूरिर्बभूवाथ श्रीरत्नसिंहः[3]।

---

१. मोहनलालभाई देसाई—जैन माहित्य नो इतिहास पृष्ठ ४३८

२. प्रासाद विमलार्हदादिसकलश्रीतीर्थकृन्मण्डलीम्
प्रत्यष्ठाददतिशायिलब्धिनिलयः श्रीरत्नसिंहप्रभुः
नन्दाकाशतिथिप्रमेय समये श्रीविक्रमाद् वासरे
पंचम्या सितमाघमासिवसुधाधीशाच्चिर्वतह्लिद्वयः ७९

३. जैन सत्यप्रकाश वर्ष १९, पृष्ठ २४

ससार मे वही महान् है जो भौतिक देह का विसर्जन करने के अनन्तर भी शताब्दियो तक जन-मन मे जीवित रहता है। रत्नसिंहसूरि ऐसे ही महापुरुषो मे थे। इनने न केवल तात्कालिक समाज को मानवता-पोषक वीतराग-वाणी का अमृतोपम उपदेश ही दिया, अपितु, उच्चकोटि के विद्वान और ग्रन्थप्रणेता शिष्य परिवार भी तयार किये। इसीलिए वे साहित्य ससार मे सदैव स्मरणीय रहेगे। इनके प्रथम शिष्य चारित्र-सुन्दर ने स्तम्भतीर्थ मे शीलदूत नामक अध्यात्मिक रस सम्पोषक काव्य की रचना की जिसमे काम विजेता स्थूलिभद्र के महान् व्यक्तित्व का भावपूर्ण चित्रण है। मेघदूत एक ओर जहां शृगारिक भावना को प्रोत्साहित कर मानव को पाप-पक की ओर ले जाता है वहा कवि ने इसी काव्य का चतुर्थ चरण ग्रहण कर वैराग्य रस की स्रोतस्विनी प्रवाहित कर अन्तश्चेतना को जागत करने का सफल प्रयत्न किया है। कुमार-पालचरित्र और आचारोपदेश कृतकर्मचरित्र[1] जैसी रचनाए उनके पाण्डित्य को प्रकट कर रहा हैं। इनके गुरुबन्धु दयासिंह गणि ने क्षेत्र-समास, सग्रहणीसूत्र आदि पर बालावबोध प्रस्तुत कर कठिन विषय को बोधगम्य बनाया। शिष्य माणिक्यसुन्दर ने हेमचन्द्र मलधार प्रणीत भवभावना पर बाला० स० १५०५ मे देवकुलपाटक मे रहकर प्रस्तुत किया। जम्बू रास (स० १५१६) अज्ञात शिष्य द्वारा निर्मित प्राप्त है। सूरिवर के शिष्य उदयधर्म ने स० १५०७ मे सिद्धपुर मे १२८ पद्यो मे वाक्यप्रकाश की रचना की। इसके अतिरिक्त इनके चित्रकाव्य भी पाये

---

१ सो य श्रीमान् विनिर्विदिति (?) रत्नसिंहाख्यासूरि-

ऊर्जीयाश्चित्य नृपतिमहित सत्तमो गच्छनेता ४०

दुर्गे (ग्रें) प (म) ण्डपनाम्नि शकर-शि (श) र-क्ष्मामानवर्षे (१५११)

स्फुरद्वर्षा (द्वर्षे) श्रीयजितप्रसादत इद विध्वस्तसादजत्

(स्तपापाग्रह)

शिष्यो मुख्य गुरोश्चकार (चरित) चारित्ररम्याह्वय

—मुनि पुण्यविजय—प्रशस्त्यादिसग्रह, पृष्ठ २२४

जाते हैं। उदयधर्म ने सं० १५२४ में स्तम्भतीर्थ/खम्भात में कल्पसूत्र की पद्यात्मक पुष्पिका का प्रणयन किया था—

> श्रीमद्विक्रमतः युगाह्निशरभूवर्षे (१५२४) मधै मासि च
> स्तम्भनपार्श्वपवित्रितपोऽत्र सोमाख्यालिपिकृता लिखिते
> चक्रिवान् प्रशस्तचेताः प्रशस्तिमेतामुदयधर्मः
>
> —जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७, अंक १० पृष्ठ ४८६

यह आश्चर्य है कि रत्नसिंहसूरि का परिवार विद्वान् और ग्रन्थकार था, परन्तु इनकी कोई रचना ऐसी उपलब्ध नहीं जो वैदुष्य-परिचायिका हो।

धर्मलक्ष्मी महत्तरा

लोकमंगलमूलक श्रमण-परम्परा के इतिहास में श्रमण के अनन्तर दूसरा स्थान आता है श्रमणियों का। श्वेताम्बर सिद्धान्त के अनुसार वे भी चारित्रधर्म की परमाराधिका मानी गई हैं। यह भी संस्कृति मूलक समाज का ऐसा महत्वपूर्ण अंश रहा है कि जिसका शासन की कीर्त्ति-पताका चतुर्दिक फहराने में कभी पश्चात्पद नहीं रहा। साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस वर्ग ने भी सरस्वती की सक्रिय सेवा कर जैन साहित्य को परिपुष्ट किया है। एक समय था जब साध्वियों की भी प्रतिमाएं बनती थीं। दमतिगणिनि पद्मसिरि की प्रतिमाए प्राप्त है और वे तेरहवीं शती की कृतियां हैं। यहां सम्पूर्ण जैन श्रमणियों के समीक्षात्मक इतिवृत्त पर विचार नहीं करना है, न यह उपयुक्त स्थान ही है, यहां इन पंक्तियों में इतना ही ही सूचित करना चाहता हूँ कि रत्नसिंह-सूरि के समय में समाज को इस महती आवश्यकता का अनुभ । श्रीसंघ किए हुए था। जिस धर्मलक्ष्मी का उल्लेख किया जा रहा है उन्हें सात वर्ष की लघु वय में सं० १४६१ में दीक्षित किया गया था। आचार्य श्री ने ही इनमें उच्च संस्कार प्र वष्ट कराये। प्रत्येक प्रकार से योग्य बनाकर रत्नचूला के स्थान पर स्थापित की। देवकुलपाटक और माण्डवगढ़ के

'व्हार मे यह भी सम्मिलित थो[1]। इन्ही के लिए उत्तराध्ययन मूल प्रतिलिपित किया और मुनि तिलक और उदयसागर गणि ने स० १५१६ मे सशोधन किया[2]।

एक भ्रान्ति परिमार्जन

जैन इतिहासविदो मे त्रिपुटी महाराज नव्य उद्भावनाओ के लिए प्रसिद्ध रहे हैं, जैन परम्परा के इतिहास भाग ३ पृष्ठ ५३० पर आपने सूचित किया है कि—

> आचार्य रत्नसिंहसूरि
>
> ते तपागच्छनी वृद्धपौपाळना ५७ मा भट्टारक हता, तेमनं लोकप्रिय नाम आ० रत्नागर पण मळे छे, तेमनाथी रत्नाकर गच्छ नीकळयो

आगे आपने सूचित किया कि—

> तेमणे स० १५०८ मा अहमदावादमा गुजराती भाषामा वसन्त-विलास अने आदिनाथजन्माभिषेक बनाव्या।

अच्छा होता मुनिश्रीने रत्नाकरसूरि के अपरनाम रत्नसिंहसूरि होने का अकाट्य प्रमाण दिया होता। आलोच्य रत्नसिंहसूरि से रत्नाकरगच्छ की स्थापना का मुनिश्री का उल्लेख तो अत्यन्त हास्यास्पद है। एक ओर तो मुनिजी स्वय अपने इसी भाग के पृष्ठ १५ पर रत्नाकरगच्छ की स्थापना स०१३८४ में होना बताते है और उसी आचार्य को स० १५०८ मे विद्यमान घोषित करते हैं। वस्तुत रत्नाकरगच्छ की स्थापना से विवेच्य रत्नसिंहसूरि का कोई सम्बन्ध नही है। यह तथ्य तो इतना साफ है कि

---

१ मुनि जिनविजय—जैन ऐतिहासिक गूजर काव्य-सचय, पृष्ठ २१५–२०

२ डिस्क्रिप्टिव केटलोग ऑफ मेन्युस्क्रिप्ट्स् इन दि जैन भण्डार्स एट पाटन, पृष्ठ ३६१

इतिहास का सामान्य विद्यार्थी भी इससे अपरिचित नहीं है। यहां इतना कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि पूरे इतिहास में मुनिजी ने कहीं भी एक-रूपता जैसे कोई सगति नहीं बैठाई है, स्वयं जिस तथ्य को स्थापित करते है, दूसरे ही पृष्ठ पर उत्थापना भी। सर्व ऐतिहासिक ऐतिह्य तथ्यों की समीक्षा की जाय तो इतना बड़ा एक भाग केवल आलोचना का ही तैयार किया जा सकता है।

इनके पट्टधर उदयवल्लभसूरि थे। बाल्यकाल से ही इनकी प्रचण्ड प्रतिभा का परिचय सूरिजी को मिल चुका था, इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि १८ वर्ष की अल्पायु में आचार्य पद प्राप्त कर चुके थ, परन्तु इनका विस्तृत वृत्तान्त प्राप्त नहीं है।

आचार्य रत्नसिंहसूरि के सं० १५१०-१०-१३-१६ चार नवप्राप्त प्रतिमालेख इस संग्रह मे प्रकाशित है शेष के लिए निम्न संग्रहावलोकन अपेक्षित है :

नाहर भाग १, १४८१-८९-१५१३, भाग २, १४८९-१५१०-११-१२-१३, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १४८४-८५-८७-८८-९३-१५००-३-४-८-९-१०-११-१४-१५-१७, भाग २, १४८१-८६-८८-१५०३-७-९-१०-११-१३-१६-१७, मुनि जयन्तविजय (अर्बु० प्र०) १०८१, विशालविजय १४९५-१५१६, नाहटा १४८१-१५१६, मुनि कान्तिसागर १४९९-१५०९-१६, विनयसागर १५०४-१६, मुनि विद्याविजय १४८७-१५०१-३-०-५-६-९-१०-१२, यतीन्द्रविजय १५१५, डा० भोगीलाल सांडेसरा १४८८ जैन सत्य प्रकाश वर्ष ११ पृष्ठ १०२, १५०६, वर्ष ६ पृष्ठ ४६१, १४८१।

कहा जाता है कि इनके और महत्तरा रत्नचूला के चरण शत्रुंजय पर स्थापित किये थे।

(१०२) रत्नाकरसूरि—(लेखांक ३१) चन्द्रगच्छीय (?)

प्रतिमालेख मे गुणाकरसूरि शिष्य रत्नाकरसूरि ने गच्छ का सकेत नही दिया है, अतः साधारण आनुमानिक प्रमाणो से काम लेना पड़ रहा

ल

(१०७) लक्ष्मीदेवसूरि—(लेखाक १५१) चैत्रगच्छीय

यह सूरिरत्न धारणापद्रीय किसके पट्टधर थे ? नही कहा जा सकता। इनके स० १५१७ के दो लेख मुनि विशालविजय सग्रह मे (लेखाक २०७-११) प्राप्त हैं। प्रथम लेख मे पाठ धारणऐन्द्रिय दिया गया है, और दूसरे मे धारण (धारा)-पद्रीय अनुवाद मे भी इन्हें धारापद्रीय बता गया है। वस्तुत धारणापद्रीय पाठ ही उपयुक्त है। इस शाखा के अनेक चैत्रगच्छीय आचार्यों के लेख मिले है। इनके अन्य लेख बुद्धिसागरसूरि-सग्रह भाग १ १५०४, भाग २, १५१७-२८, यतीन्द्रविजय १५११-१५-१८-१३-२४, मुनि विद्याविजय १५०७-९-१३-१७-१७-२२, मुनि विशालविजय (इस सग्रह मे लक्ष्मीसागरसूरि सूची मे ही इनके लेखो का अन्तर्भाव कर दिया है, अत शोधको को चाहिए कि पूरी सूची देखें), १५१७-२०-२०-३२। इनके पट्टधर ज्ञानदेवसूरि थे, (मुनि विशाल-विजय-सग्रह लेखाक २६८)।

(१०८) लक्ष्मीसागरसूरि—(लेखाक २१६) चैत्रगच्छीय

यह आचार्य चैत्रगच्छीय चान्द्रसमीयशाखा के मलयचन्द्रसूरि के पाटवी थे। विशेष परिचय अज्ञात है। स० १५३४ का लेख प्रकट किया जा रहा है। अन्य लेख बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५२०-२२, भाग२,१५१८, मुनि विद्याविजय १५२०-२२, मुनि कान्तिसागर १५२९, मुनि विशाल-विजय १५१०, नाहर भाग २-१५३४-३६, भाग ३, १५३०, जैन सत्यप्रकाश पृष्ठ ३८२), १५४९, मे देखे जा सकते हैं।

(१०९) लक्ष्मीसागरसूरि—(लेखांक १६६–१६९–७१–७२–७५–७६–८९–१९३—१९५–१९७) तपागच्छीय

रत्नशेखरसूरि के पट्टधर और तपागच्छ के तिरपनवें आचार्य लक्ष्मीसागरसूरि का परिचय स्व० मोहनलाल देसाई के जैन साहित्य के इतिहास से (पृष्ठ ४९६) उद्धृत किया जा रहा है—

"सं० १४७० में छः वर्ष की लघुवय में मुनिसुन्दरसूरि के समीप दीक्षा ली। सिद्धान्तों का अध्ययन किया और दुर्वादियों का मानमर्दन कर बाल्यावस्था होने के बावजूद भी जीर्णदुर्ग/जूनागढ़ में महिपाल राजा का मनोरंजन किया। देवगिरि से आगत महादेव द्वारा सोल्लास कृत महोत्सव पर आचार्य सोमसुन्दरसूरि ने सं० १४९३ में पण्डित पद प्रदान किया (पट्टावली के अनुसार महादेव लाटापल्ली/लाडोल का संघवी था)। सं० १५०२ में मुनि सुन्दरसूरि द्वारा वाचक पदालंकत हुए। सं० १५१७ में आचार्य पद प्राप्त हुआ। मालवभूमि का स्पर्श कर पुनः गुजरात पधारे और रत्नमण्डन एवं सोमदेवसूरि का मनोमालिन्य खम्भात में दूर किया। सं० १५२२ में गच्छपरिधापनिका द्वारा अनेक को आचार्य, वाचक आदि पद दिये (इसकी नाम सूची दूसरे सर्ग में है)।"

"गुर्जर, मरु और मालव प्रदेश के प्रसिद्ध श्रावकों द्वारा सोत्साह निर्मित जिन-बिम्बों की प्रतिष्ठाएं करवाई (द्वितीय सर्ग में इसका परिचय है) गिरिपुर/डूंगरपुर मे सोमदास (राज्यकाल स० १५०४–३७)

नरेश के मन्त्री उकेशीय साल्ह[1] द्वारा विनिर्मित एक सौ वीस मन की

---

१ साल्ह – साल्हराव डूगरपुर नरेश गइपालदेव गोपीनाथ (राज्य काल स० १४८०–१५०६) और सोमदास के मन्त्री थे। सोमदास के राज्य काल मे वहा के आदिवासी भीलों ने राजनैतिक उपद्रव मचाया था। उन्हें दवाने के लिए अहिंसा प्रेमी साल्हशाह को नियुक्त किया और उत्पात समाप्त हुआ। राज्य की सुख, शान्ति, समृद्धि की अभिवृद्धि मे साल्हशाह का उल्लेखनीय योगदान रहा है। गइपालदेव के समय मे वहा जैन साहित्य प्रतिलिपित हुआ। भाटो ने साल्हशाह की एक कथा जोड रखी है कि इसकी एक लावण्यवती कन्या को देख डूगरिया भील उस पर अनुरक्त हो गया। विवाह की प्रार्थना करने पर शाह ने अस्वीकार किया। क्रमश वीरसिंहदेव ने (यद्यपि साल्हशाह के समय से इसका मेल नही बैठता, तथापि जनश्रुति-पाठ की रक्षा के लिए नाम रहने दिया है) कष्ट निवारण किया। अस्तु साल्हशाह तपागच्छ का परमानुयायी था। मूर्ति और शिल्पकलोन्नयनार्थ प्रभूत धनव्यय किया था। डूगरपुर के समीप आतरी (ग्वालियर की आन्तरी इससे भिन्न है जहा अबुल फ़जल का वीरसिंहदेव द्वारा वध किया गया था) पार्श्वनाथ प्रासाद का इनने जीर्णोद्वार करवाया था। आज भी वहा दृष्टव्य लिपि मे एक लेख खुदा है, उसके उन्नचासवें पद्य मे साल्हशाह विषयक ससूचन है—

श्रीसाल्हाभिध साधुरेप सचिवोत्तमश्चतुर्बुद्धिमान
चैत्योद्धारमकारयद् गिरिपुरे श्रीपार्श्वनाथ प्रभो

साल्हशाह ने अर्बुदाचल पर स० १५१८ वैशाख कृष्णा ४ को पित्तलमय प्रतिमाए स्थापित करवाई थी जिनकी प्रतिष्ठा लक्ष्मीसागरसूरि ने की (मुनि जयन्तविजय लेखाक ४६७)। उदयपुर, दिल्ली द्वार के समीपस्थ ऋषभदेव मन्दिरस्थ प्रतिमा पर –

गिरिपुरे श्री आदिनाथबिम्ब सा साल्हा कारित,

अकित है। इनके अतिरिक्त और भी लेख प्राप्त हैं। सभी के प्रतिष्ठाता लक्ष्मीसागरसूरि थे।

पित्तलमय[1] प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित किया। दक्षिणात्य देव गिरिवासी महादेव के साथ शत्रुंजय महातीर्थ को यात्रा की। लाटापत्ती/लाडोल में प्रचुर द्रव्य व्यय कर उत्सव किया जिसमें अनेक श्रमण-श्रमणियों को वाचक और महत्तरा पद प्रदान किये। हाड़ावटी/मालवा के प्रजाप्रिय अहमद के प्रध.नमन्त्री माण्डवगढ निवासी संघपति चन्द्र/चांदा साह ने बहत्तर काष्टमय जिनालय और चोबीस जिन के पट्ट तैयार करवाये थे उन्हें प्रतिष्ठित किया। अहमदावादवासी गजराज/गदा द्वारा सोभींत्रक/सोजींत्रा में तीस सहस्त्र द्रम खर्च कर निर्मित प्रासाद की प्रतिष्ठा सोमदेवसूरि से करवा, शुभरत्न को वाचक पद दिया। आशापल्लीपुर में सोमलब्धि को गणिनी पद दिया। मालवदेश के ग्यासदीन के शासन काल में माण्डवगढ़ निवासी पोरवाड सूरा और खीरा ने सुधानन्दसूरि के साथ सिद्धाचल की यात्रा को। मार्ग में शुभरत्न वाचक को सूरि पद दिया। अनन्तर बादशाह से आज्ञापत्र लेकर सिद्धाचल की यात्रा की। दक्षिणदेशस्थ देवगिरि निवासी धनराज और नगराज-बन्धुद्वय ने गुजरात के शासक महमूद को प्रसन्न कर राजकीय सम्मान प्राप्त किया। विमलाचल की यात्रा कर पाटन में जाकर तत्रस्थ श्रीसघ की भक्ति कर उसे तुष्ट किया। सोमजय वाचक को सूरि पद, जिनसोम पण्डित को उपाध्याय पद पाटन में दिये गये। उपर्युक्त गौर्जरीय वणिक् सुलतान के मन्त्री सघवो गदाने एकसौ बीस मनकी ऋषभदेव की पित्तलमयमूर्त्ति (४० अगुल प्रमाण) अर्बुदाचल के भीम विहार मे प्रतिष्ठित करवाने हेतु संघ लेकर

---

१. डूंगरपुर प्रदेश शिल्पियों का शताब्दियों से केन्द्र रहा है। राजस्थान में आज जितनी भी ढली हुई, क्या विशाल क्या लघु, सर्वधात की प्रतिमाए प्राप्त हैं उनमे से अधिक का निर्माण इसी प्रदेश मे हुआ है। धातु उद्योग के लिए डूंगरपुर का स्थान उल्लेख्य रहा है। सोमसुन्दरसूरि के युग मे सर्वधात की असंख्य प्रतिमाएं यही पर ढली थी, और साल्हाशाह ने भी विशाल मूर्तियां ढलवा कर आबू में लक्ष्मीसागरसूरि द्वारा प्रतिष्ठित करवाईं। एकलिंगजी का विशाल नन्दि भी डूंगरपुर के कलाकारो की देन है। मूर्त्तियां भरने का काम करने वालों की जाति ही भरावा कही जाती है। आज भी इसी व्यवसाय से वे लोग उदरपूर्त्ति करते हैं।

ईडर के भाण और मेवाड के लक्षसिह/लाखा[1] शासको से सत्कृत होकर सोमजयसूरि द्वारा स० १५२५ मे अन्य प्रतिमाओ के साथ इसे भी प्रतिष्ठित करवाया। अनन्तर उनके आग्रह से सुधानन्दसूरि ने जिनसोम वाचक को स्वहस्त से आचार्य पद समर्पित किया[2]।"

लक्ष्मीसागरसूरि और सोमजयसूरि ने सामूहिक प्रयत्न कर स० १५१८-१५२९ और १५३८ मे क्रमश देवाश्रीमाली, गदराज/गदा और पोरवाड खीमसिंह/खीमजी को सदुपदेश देकर नव्य पुस्तकें लिखवा स्वतन्त्र ज्ञानागारो की स्थापना की, जैसा कि तात्कालिक प्रतिलिपित प्रतियो की लेखन प्रशस्तियो से सिद्ध है। सोमजयसूरि, जयमन्दिर और उपा० जिनमाणिक्य प्रतियो के सशोधक थे। इनमे से सोमजयसूरि, जिनमाणिक्य-शिष्य सुमतिसार और सुन्दरतिलक द्वारा प्रतिलिपित प्रतियाँ इन पक्तियो के लेखक के सग्रह मे विद्यमान हैं।

सूरिवरो के समय मे जन सस्कृति उत्कर्ष की सीमा पर थी। पाच सौ से अधिक दीक्षाए तो स्वय आचार्य दे चुके थे और साध्वियो मे

---

१ गुरु गुणरत्नाकर काव्यकार का यह कथन कि मेवाड के महाराणा लाखा द्वारा भी सघ सत्कृत हुआ, सवथा असत्य है। कारण कि इन दिनो मेवाड का शासक महाराणा लक्षसिह/लाखा न होकर उनका पौत्र महाराणा कुम्भकण था। इस सग मे अन्यत्र भी तीन-चार स्थानो पर लाखा का उल्लेख किया है, वह भी भ्रामक ही है। इसी काव्य मे लेखक आगे लिखता है कि धरणाशा कुम्भकर्ण द्वारा सत्कृत हुआ था। एक ही रचना और उसी सर्ग मे इस प्रकार की अनैतिहासिक बात लिखकर न जाने क्यो विरोधाभास उत्पन्न किया? तथ्य तो यह है कि महाराणा लाखा स० १४३९ मे आरूढ हुआ और स० १४७८ तक शासन करता रहा। अनन्तर उसका पुत्र मोकल सिहासनारूढ होकर स० १४९० तक राज्य करता रहा। स० १४९० मे भारतीय सगीत और साहित्य के अनन्य उपासक महाराणा कुम्भकण गद्दी पर आये जो स० १५२५ तक राज्य करते रहे ससूचित काव्य का प्रणयन कुम्भकर्ण के पुत्र महाराणा रायमल्ल के शासनकाल मे स० १५४७ हुआ।

२ स्व० मोहनलालभाई देसाई—जैन साहित्यनो इतिहास पृष्ठ ४९६-९८

उदयचूला को महत्तरा पद प्रदान कर शिवचूला के स्थान पर स्थापित किया था। और श्रमणियाँ भी अपनी मधुर वाणी से व्याख्यान द्वारा जिन-वाणी का प्रचार-प्रसार कर समाज के प्रति कर्त्तव्यों के परिपालनार्थ तत्पर थीं। इस युग में यों तो अनेक विद्वान् हुए जिनका परिचय देना सम्भव नही, परन्तु इस समय की महत्वपूण उपलब्धि है गुजराती साहित्य के महाकवि लावण्यमय। यह एक ही ऐसे कवि है जिनकी रचनाओ में इतिहास, धर्म, दर्शन और तात्कालिक साम्प्रदायिक सघर्ष सभो का विशद् विवेचन प्राप्त है। कवि को सूरिवर ने हो स० १५३० में दीक्षित किया था।

सं० १५१८–२१–२१–२२–२३–२३–२६–२८–२८–२८ तक के लेख सर्वप्रथम प्रकाशित किये जा रहे है, अन्य प्रतिष्ठा लेखों के लिए निम्न संग्रह दृष्टव्य है—

जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७ पृष्ठ४७९ में स० १५६२ के लेख में रत्नसिह-सूरि पट्टे लक्ष्मीसागरसूरि का उल्लेख है, वह विचारणीय है।

नाहटा–१५११ (?)–१७–१८–१९–२१–२२–२३–२४–२५–२६–२७–२९–३०–३१–३२–३३–३४–३५–३६–३७–३९, मुनि कान्तिसागर १५१८–१९–२१–२२–२४–२६–२७–२८–३३–३४–४२–४३, नाहर भाग १, १५१७–१९–२१–२२–२३–२५–२६–२७–२९–३०–३२–३३–३४–३५–३६–३७–३९, भाग २, १५१८–१९–२०–२१–२२–२३–२४–२५–२७–२९–३०–३४–३५–३६–४१–४२[1], बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५१७–१८–१९–२०–२१–२२–२३–२४–२५–२७–२८–२९–३०–३१–३२–३३–३४–३५–३६–३७–३९–४०–४२, भाग २, १५१८–२१–२२–२७–२८–२९–३०–३१–४२–४३, मुनि जिनविजय भाग २, १५१८–२५, नाहर भाग ३, १५१८–३३–३४–३५–३७, डा० भोगीलाल सांडेसरा १५२७ (इस संकलन में इसी आचार्य का स० १५५: का लेख

---

१. नाहर भाग २ में स० १५५७ का एक लेख (लेखांक १७७३) है वह या तो लब्धिसागरसूरि का होना चाहिये या सं. गलत पढा गया है. इन लक्ष्मीसागर-सूरि का नही हो सकता।

रूपचन्द्रसूरि-पद्मशेखरसूरि-विजयचन्द्रसूरि और पद्मानन्दसूरि।

प्राप्त पट्टावली और प्रतिमालेखो के प्रकाश मे यह परम्परा दोषपूर्ण प्रतीत होती है। रूपचन्द्र नामक कोई आचार्य धर्मघोपगच्छ मे नही हुए। पद्मशेखरसूरि के पूव मलयच द्रसूरि का नाम आना चाहिए था, और इनके पूर्व सागरचन्द्राचार्य का। इन दोनो का न जाने क्या समझकर उल्लेख नही किया होगा? जबकि कालिक अन्तर भी अधिक नही है। विजयचन्द्रसूरि का उल्लेख तो लेखो मे मलयचन्द्रसूरि और पद्मशेखरसूरि के पट्टधर के रूप मे मिलता है। स्मरणाय है कि पद्मशेखरसूरि के एक और पट्टधर जिनचन्द्रसूरि भी थे—

तेपा नाम्ना प्रकटो जयति श्रीधर्मघोपगच्छोऽयम्
श्रीमलयचन्द्रसूरिसूत्रा (मा) ऽभूद् विश्रुत सुगुण
तत्पदपकजसूर्या सूरिश्रीपद्मशेखरमुनीन्द्रा
तत्पट्टे विख्याता सूरय श्रीजिनचन्द्राख्या।

सापेक्षत पद्मशेखरसूरि वरिष्ठ थे। इनका आचार्यत्व का उल्लेख सर्वप्रथम स० १४७४ का विनयसागर सग्रह मे मिलता है (लेखाक २१३)। एक लेख स० १४३८ का (लेख १२७८) सग्रहीत है, पर वह सदिग्ध है। वस्तुत १४७८ होना चाहिए, कारण कि स० १४६५ तक तो इनके प्रगुरु सागरचन्द्रसूरि विद्यमान थे।

विजयचन्द्रसूरि के अन्य लेखो पर विचार करने के लिए एक अज्ञात देवकुलिका लेख समुद्धत करना चाहता हूँ जो नागह्रद/नागदा के ध्वस्त चतुर्विशति जिनालय की एक देवकुलिका के भारपट्टक पर उत्कीर्णित है।

'॥ (१४?) ६५ वर्षे आपाढ सुदि ६ सोमे श्रीमाल-
वशे फोफलिया गोत्रे सा० केल्हा, पुत्र सा० कर्मण दे
पुत्र सा सोमण पुत्र सा० श्री देवकुलिकाकारिता प्र०
श्रीधर्मघोपगच्छे श्री (पद्म?) शेखरसूरिपट्टे श्रीविजय-
चन्द्रसूरिभि ॥"

इसी पक्ति के ऊपर निम्न भाग अकित है—

श्रीप्रमितिजिन हरिकलसोपाध्यायो नित्यं प्रणमंति……सा० तोल्हा भार्या त्रिपुरादे पुण्यार्थं एस कुलिका।

विजयचन्द्रसूरि का लेखानुक्रम इस प्रकार है—

संग्रह	संवत्	संख्या	पट्ट	
यतीन्द्र वि०	१४८३	२९०	मलयचन्द्रसूरिपट्टे	विजयचन्द्रसूरि
,,	१४९३	९८	पद्मशेखरसूरि पट्टे	विजयचन्द्रसूरि
नाहटा	१४९३	१८२९	,,	,,
,,	१४९४	७७४	,,	,,
,,	१४९५	१३५१	,,	,,
,,	१४९५	१०७७	,,	,,
,,	१४९५	१३३८	,,	,,
,,	१४९५	२५१३	धर्मघोषगच्छेपट्टे	विजयचन्द्रसूरि
विद्या वि०	१४९५	१६९	पद्मशेखरपट्टे	विजयचन्द्रसूरि
नाहटा	१४९६	७९१	,,	,,
,,	१४९७	७९९	,,	,,
विनय सा०	१४९८	३२६	,,	,,
नाहर	१४९८	१२४७	,,	,,
नाहटा	१५०१	८५६	,,	,,
विद्या वि०	१५०१	१८३	,,	,,
विनय सा०	१५०१	३५३	,,	,,
नाहर	१५०१	१०७९	,,	,,

सग्रह	सवत्	सख्या	पट्ट	
नाहटा	१५०३	८९६	"	"
नाहर	१५०३	१०४७	"	"
"	१५०३[1]	५८७	"	"
"	१५०४	१२९९	"	"

(११४) विजयदानसूरि—(लेखांक २८६–८८–८९) तपागच्छीय

परमसहिष्णु विजयदानसूरि आनन्दविमलसूरि के पट्टधर थे। स० १६०२ और १६०८ के नवप्राप्त लेख प्रकाशित किये जा रहे हैं। इनका जन्म स० १५५३ मे हिम्मतनगर से ६ मील दूर जामला मे हुआ था। स० १५६२ मे ९ वर्ष की लघु वय में दीक्षा अगीकार की। श्रमण-परम्परा उन दिनो विषम स्थिति का सामना कर रही थी। आगमानु-मोदित साध्वाचार मे शैथिल्य प्रविष्ट कर चुका था। आनन्दविमलसूरि ने क्रियोद्धार कर मुनि मार्ग प्रशस्त किया। स० १५८७ मे आलोच्य व्यक्ति को सूरि पद से सम्मानित किया।

समाजशास्त्र का यह सामान्य नियम है कि मानवसमाज मे शिथिलता आने पर पूर्वाचरित मान्यताए सन्देहात्मक दृष्टि से देखी जाती हैं। व्यक्ति में स्वार्थ और अह प्रबलतर हो जाते है। वह अतुल पुरुषार्थ और व्यक्तित्व के बल पर अपनी बात मनवाने को समाज को विवश

---

१ इस लेख मे पद्मशेखरसूरि पट्टे और धर्मघोषगच्छे 'विजयचन्द्रसूरि' पाठ है। यह पठन दोष का ही परिणाम ज्ञात होता है। धर्मघोषगच्छ मे इस नाम के आचार्य का कभी अस्तित्व ही नही रहा।

करता है। इनके समय में उपाध्याय धर्मसागर ने सभी गच्छों की अशिष्टोचित आलोचना कर असन्तोष का वातावरण बना रखा था। शासन का सन्तुलन सन्दिग्ध था। पारस्परिक सौमनस्य समाप्त हुआ जाता देख विजयदानसूरि ने समन्वयशील वृत्तिद्वारा समाज को आश्वस्त किया और अवांछनीय तत्व को निकाल बाहर किया। सं० १६२२ वडावली/वडली में इनका देहोत्सर्ग हुआ।

इनका शिष्य-प्रशिष्यादि परिवार विस्तृत था। साहित्य, संस्कृति और कला के विकास में आपने उल्लेखनीय योग दिया था।

इनके अन्य प्रतिष्ठालेख मुनि यतीन्द्रविजय—सं० १६१७–१८, विनयसागर १५९६–९८–१६०--४–५–१३–२०, नाहटा १६०५–१०–१६, डा० भोगीलालभाई सांडेसरा १६१७, नाहर–भाग २, १५९५–१६०१–१६–१७, भाग ३, १६१०–१८, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५९०–९५, भाग २, १५९५, मुनि विशालविजय १६१६, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प्र०) १६०३–६–१२–१७ प्राप्त होते है।

(११५) विजयदेवसूरि—(लेखांक २८५) चैत्रगच्छीय

चैत्रगच्छानुयायी धारणपद्रीय विजयदेवसूरि का सं० १५९२ का लेख प्रकाशित है। विशेष ज्ञातव्य अप्राप्त है। इनका सं० १५८२ का एक प्रतिष्ठालेख मुनि यतीन्द्रविजय-संग्रह में (लेखांक ३६७) उपलब्ध है। इसमें धारणपद्रीय संज्ञा के साथ भिलोड़ावास्तव्य सकेत है। सम्भव है कि इस शाखा का एक स्थान इस नगर में भी रहा हो और उसी स्थान का दायित्व वे वहन करते रहे हों। क्योंकि जैन समाज में वहुत से गच्छों की प्रादेशिक शाखाओं के स्वामी अपना पार्थक्य इस प्रकार प्रदर्शित करते रहे हैं।

(११६) विजयदेवसूरि—(लेखांक ३००–३०१–३०२–३०३–३०७–३२५) तपागच्छीय

तपागच्छ के प्रभावसम्पन्न आचार्यो मे इनकी परिगणना की जाती है। ये प्रोज्ज्वल व्यक्तित्व के कारण ही जैन सघ पर दूरगामी प्रभाव डाल सके। बादशाह जहांगीर के हृदय मे इनके प्रति असीम आदर भाव था। तेजोमय सयम-साधना और तपोमय जीवन पर मुग्ध होकर स० १६७४ मे इन्हे महातपा विरद से अलकृत भी किया था[1]। इसका उल्लेख तात्कालिक स्फुट प्रशस्ति और प्रतिमालेखो मे भी मिलता है।

उदयपुर के महाराणा जगत्सिंह (राज्य काल १६८४–१७०९) भी विजयदेवसूरि से प्रभावित थे। तपागच्छ का अपने प्रादुर्भाव काल से ही मेवाड से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। मेवाड के इतिहास से विदित होता है कि राजकीय उच्च कर्मचारी प्राय जैन ही होते थे। इसी से विगत कुछ शताब्दियो से मेवाड मे जैन धर्म लोकधर्म के रूप मे प्रतिष्ठित था। समदर्शी आचार्य हरिभद्रसूरि द्वारा वपित बीज पल्लवित-पुष्पित हो चुके थे।

जब विजयदेवसूरि का उदयपुर पधारना हुआ उन दिनो मेवाड का शासन-सूत्र जगत्सिंह प्रथम के हाथो मे था। उदयपुर की सुषमा और रूपराशि की अभिवृद्धि मे स्थानीय सरोवरो का महत्वपूर्ण योग रहा है। पीछोला झील तो इतिहास और सौन्दर्य का अन्यतम प्रतीक ही है, उसमे और उदयसागर झील मे से मत्स्य पकडने की निषेधाज्ञा जगत्सिंह ने जारी की[2]। नवानगर का नरेश लाखा जाम और ईडर का कल्याणमल्ल सूरि जी के सेवक थे।

---

१ देवानन्दमहाकाव्य, सर्ग दो, पद्य संख्या १२३–२७

२ वही, सर्ग तीन, पद्य संख्या १४४,

महोपाध्याय कविवर श्रीमेघविजयजी ने[1] देवानन्दमहाकाव्य और

1, यह महोपाध्याय अठारहवीं शती के उद्भट विद्वान् और बहुमुखीप्रतिभा के धनी थे। महाकाव्य, कथासाहित्य, पादपूर्त्ति, विज्ञप्तिसाहित्य, व्याकरण, न्याय, मन्त्र, इतिहास, आध्यात्म, स्तुति-स्तोत्रसाहित्य और सिद्धान्त-समर्थिकादि अनेक कृतियों मे इनकी सारस्वतोपासना का भव्य परिचय मिलता है। ज्योतिष और रमलशास्त्र पर तो इनका असाधारण अधिकार था। इनके पूर्व जीवन पर प्रकाश डाल सके वैसे साधन प्राप्त नही है, परन्तु साहित्यिक रचनाओं के कृतिकाल सं० १७०९–१७६० असदिग्ध है। मेघविजयजी के जीवन के बहुमूल्य क्षण किशनगढ़ मे ही व्यतीत हुए थे। इस अनुमान का कारण यह है कि किशनगढ का राजपरिवार परम विद्योपासक और सदा से कलोत्तेजक रहा है। मेघविजयजी के तत्वावधान में उस काल मे किशनगढ़ मे ही दर्जनों ग्रन्थ प्रतिलिपित किये गये जो आज भी तत्रस्थ राजकीय सरस्वतीभण्डार मे सुरक्षित है। विशुद्ध किशनगढ़ शैली के चित्रों की दृष्टि से इन पत्रों का विशिष्ट महत्व है। इन सांस्कृतिक कार्यो में तात्कालिक मुणोत परिवार के मोहनसिंह का उल्लेखनीय योग था जो उन दिनों उच्च राजकीय पद पर आसीन थे। अवतार चरित्र (नरहरि बारहट कृत) जैसी कृतियो को भी मेघविजयजी ने सचित्र प्रतिलिपित्त करवा कर परम औदार्य का सुपरिचय दिया। किशनगढ राजकीय सग्रह मे एक राजसभा का चित्र मैने सन् १९५५ में देखा था। इसमे प्रमुख व्यक्तियो के नाम अकित थे, उनमे 'जती मेघविजय' शब्द भी महोपाध्याय का परिचायक है।

मेरे संग्रह में 'मेघीयपद्धति' नामक एक जन्मपत्रिका विपयक रचना है। इसमें भगवान आदिनाथ, उनके गणधर, दशावतारी भगवान् पार्श्वनाथ आदि जैन तीर्थकरों की स्तुति प्रारम्भ की गई है। मूल रचना मे कृतिकार का नाम सूचित नही है' परन्तु कृति नाम से अनुमित है कि यह भी महोपाध्याय की रचना है। ११३ पत्रात्मक प्रति की लेखन पुष्पिका इस प्रकार है—

सकलपंडितसामतसार्वभौमपंडित्त श्री १५१ पद्मसागरगणिशिष्य सकल-पाठक वृन्द-वृन्दारकवृन्दारकपतिमहोपाध्याय श्री ५० श्रीश्रीकुशल-सागरगणित्तच्छिष्य सकलविद्वज्जनधोरणीधुरीपडित्त श्री १९ श्रीश्री-हीरसागरगणिशिष्य सकलपडितोत्तम् पडितश्री ५ श्रीगंगासागरगणि शिष्येणगणिना जीवसागरेण श्रीपत्तननगरे सवत् १७५७ वर्पे माधवार्जुन एकादशी तिथौ वुधवासरे श्रीपार्श्व-जिनप्रासादे ॥

मेघविजयजी के जीवित काल की प्रतिलिपित प्रति मे कई स्थानों पर पाठ छूआ हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि उन दिनो इस पद्धति का अच्छा प्रचार हो चला था। विनयसागर की सूचनानुसार (मिश्रीमल अभिनन्दन ग्रन्थ. पृष्ठ ३८३) इसकी एक प्रति अनूपसंस्कृत लायब्रेरी. बीकानेर में भी है।

श्रीवल्लभोपाध्याय प्रवर्त्त दिग्विजयमहाकाव्य विवरण मे विजयदेवसूरि के प्रेरक चरित्र का विस्तृत वर्णन किया है। तात्कालिक राजस्थान और गुजरात के इतिहास की दृष्टि से दोनो ही काव्यो का विशेष महत्व है। आचार्य का जन्म स० १६३४ मे ईडर निवासी थिरा की पत्नी लाडिमदे की रत्नकुक्षि से हुआ था (कही इनकी माता का नाम रूपाई भी मिलता है), बाल्यावस्था का नाम वासुदेव था। स० १६४३ मे विजयसेनसूरि के समीप भागवती दीक्षा अहमदाबाद मे ग्रहण की, स० १६५६ मे सभी प्रकार योग्य हो जाने पर आचार्य पदासीन हुए। स० १६५८ मे गणानुज्ञा और स० १६७१ मे भट्टारक बने।

'स्व' के प्रति अतिनिष्ठा आदर्श की दृष्टि से उपयुक्त हो सकती है, परन्तु 'स्व' पर मे समाविष्ट होने को सक्षम हो तो, अन्यथा वह मौलिक सज्ञा खो बैठेगा। 'स्व' को सवत्र अग्रिम पद देने का परिणाम है सघर्ष। आचार्य के अस्तित्व की स्थिति पर उपर्युक्त पक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। आन्तरिक तथ्यहीन सघर्ष के कारण गच्छ पूर्वर्जित गौरव से च्युत हुआ जा रहा था। विस्फोट की कगार पर खडा समण-समुदाय केवल विजयसेनसूरि और प्रस्तुत आचाय के पारस्परिक स्नेह-सौजन्य के कारण ही सुरक्षित रह सका था। स० १६७२ मे प्रथम आचाय काल कवलित हुए, भरापूरा समुदाय दो भागो मे विभक्त हो गया। सोम-विजय, सिद्धिचन्द्र और भानुचन्द्र जैसे प्रखर प्रतिभासम्पन्न मुनियो ने विजयदेव-सूरि को चुनौती दी। रामविजय नामक मुनि को न केवल आचार्य पद देकर विजयसेनसूरि का उत्तराधिकारी ही घोषित किया, अपितु, स्वतन्त्र शाखा का भी सूत्रपात किया। इसके बीज तो स० १६२२ मे ही वपित हो चके थे, परन्तु महान् व्यक्तित्व के कारण पल्लवित-पुष्पित न हो सके थे। विशद परिज्ञानार्थ आचार्य विजयधर्मसूरि-सम्पादित ऐतिहासिक रास-सग्रह भाग चतुर्थ द्रष्टव्य है।

जहागीर द्वारा महातपा विरुद प्राप्त होने से विजयदेवसूरि सर्वत्र समादृत हुए। वे सघर्ष-काल मे भी समन्वय के मार्ग पर गतिमान होने को समुत्सुक थे। तदर्थ प्राणवान् पुरुपार्थ और प्रयत्न भी किये कि सभी मुनि परिवार एक ही शासन-सूत्र मे आवद्ध हो, पर विधि का विधान

कुछ और ही था। इधर नवपक्ष द्वारा प्रस्थापित विजयतिलकसूरि का स्वर्गवास सं० १६७६ में हुआ और उनके पट्टधर सोमविजय वाचक के अन्तेवासी कमलविजय को नियुक्त कर विजयानन्दसूरि के नाम से घोषित किया। अब तो विजयदेवसूरि और आणन्दसूरि स्पष्टतः दो शाखाएं हो गई। कालान्तर में स्वतन्त्र गच्छ का रूप ले लिया, आज भी इनका प्रभाव है।

विजयदेवसूरि के जीवन से परिज्ञात है कि वे शासन रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहते थे। जहां भी इस प्रकार की आवश्यकता का आभास मिलता, तुरन्त कोई न कोई प्रबन्ध साकार होता ही। उन दिनों यों तो राजस्थान में जिनाज्ञापालक सुविहित परम्परा शासन सेवा के कार्यों में संलग्न थी, तथापि मूर्ति विरोधी सम्प्रदाय का प्रसार उल्लेखनीय गति पर था। राणकपुर-सन्निकट साप्तच्छदिकपुर/सादड़ी इनका केन्द्र हो चला था। तत्रस्थ श्रीसघ ने आचार्य-श्री का ध्यान इस पर आकृष्ट किया। तत्काल सुयोग्य मुनियों का उस आर विहार की आज्ञा हुई ताकि वे सम्यग्दर्शन विहीन मानवों को सन्मार्ग को ओर प्रवृत्त कर सकें। श्रमण-परम्परा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसने प्रत्येक युग में युगानुकूल साहित्य-साधना के माध्यम से गौरव अर्जित किया है। विजयदेवसूरि का युग सघर्षात्मक होने के बावजूद भो, साहित्यिक रचनाओं में मुनिवृन्द पश्चात्पद न था। विजयदानसूरि से विजयप्रभसूरि तक प्रभूत जैन साहित्य का निर्माण होता रहा। जन संस्कृति का विशद् व्याख्या परक साहित्य इस युग को विशेष देन है। खण्डन-मण्डनात्मक कृतियां भी पर्याप्त सृजित हुई। सभो को समीक्षा अत्र अप्रस्तुत है।

विजयदेवसूरि की अनुज्ञा से धर्मविजय ने काव्यकल्पलतामकरन्द और देवेन्द्रसूरि प्रणीत दानादिकुलकों पर धर्मरत्नमंजूषा का प्रणयन किया। विजयसेनसूरि शिष्य सघविजय ने सं० १६७४ में कल्पसूत्र-प्रदीपिका, श्रीवल्लभ ने विजयदेवमहात्म्य, देवतिलक ने हीरसौभाग्य (१६७२-८५) विजयप्रशस्ति के अतिरिक्त अनेक विद्वद्भोग्य रचनाएं हुई। एतत्युगीन लोकभाषा में ग्रथित ग्रन्थों की विशाल राशि तो स्वतन्त्र निबन्ध का ही विषय है।

लोकहिताचार्य और जिनोदयसूरि के पाण्डित्य द्वारा प्रादुर्भूत विज्ञप्ति-पत्र-साहित्य परम्परा इस युग में विशेष रूप से पल्लवित-पुष्पित हुई। विजयदेवसूरि और विजयसिंहसूरि (जो विजयदेवसूरि की विद्यमानता में ही स्वर्गस्थ हो चुके थे) को विद्वान शिष्यों द्वारा अनेक विज्ञप्तिपत्र प्रेषित किये गये। उनमें प्रवासयात्राओं में आगत स्थान, गिरिशृंग, नगर-ग्रामों का अति भव्य-नव्य वर्णन सुग्रथित है। धार्मिक भावनामय प्रेषित ऐसे पत्रों का ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टियों से विशिष्ट महत्व है। इस प्रकार साधन-सामग्री को तात्कालिक संक्षिप्त सर्वसंग्रह की संज्ञा से अभिहित किया जाय तो लेश मात्र भी अत्युक्ति न होगी। ऐसे पत्रों का सामूहिक प्रकाशन मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित होकर सिन्धीग्रन्थमाला में हो चुका है और अनेक अप्रकाशित मूल्यवान पत्र इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में सुरक्षित हैं। नगरवर्णनात्मक साहित्य-गजल के प्रेरक ऐसे ही पत्र थे। आचार्य विजयदेवसूरि का देहोत्सर्ग सं० १७१३ दीवपत्तन में हुआ।

इनके सं० १६८३-९३-९४-९५ के नव्य प्रतिष्ठालेख इस संग्रह में प्रकाशित हैं शेष लेख इन प्रकाशनों में देखे जा सकते हैं—

नाहर भाग १, १६५८-६८-७८-७७-८३-८४-८५-८६-८७-९४-१७००-३,

भाग २, १६५१ (?) ६७-७८-७७-८५-८६-८७-९४-९७-१७०१-५-७,

भाग ३, १६८५, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १६६३-७०-७२-७४-७५-७७-७८-८१-८२-८३-९६-१७०१-५, भाग २, १६६६-७७-८३-९३-९७-१७००, जिनविजय भाग २, १६६५-६६-७४-७५-८१-८७, गैरे—१६७६-८९-९६, नाहटा—१६७४-७७-८४-८५-८७-१७०१-३, मुनि विशालविजय—इनके राधनपुर-लेखसंग्रह में (लेखांक ३५०) सं० १६१० के लेख में विजयदेवसूरि का नाम संशोध्य है, कारण कि इनका जन्म ही सं० १६३४ में हुआ था, विनयसागर—१६५७—७२-७४-७७-७८-७९-८३-८४-८६-८७—९०-९७-१७००, जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १२ पृष्ठ २२९-१६६३,

जैन सत्य प्रकाश वर्ष १८ पृष्ठ ९३ पर प्रकाशित सं० १६०९ के प्रतिष्ठा लेख में राणा अमरसिंहराज्ये और विजयदेवसूरि के नाम अंकित हैं मेवाड़ के सिंहासन पर इस नाम के दो महाराणा हुए हैं। परन्तु कालि दृष्ट्या दोनों ही आचार्य के काल से मेल नही रखते। अतः प्रकाशि लेख का सं० ही अशुद्ध छपा है। पुनर्निरीक्षण अपेक्षित है। मुनि कान्ति सागर—१६५८–७८–९३–९४–९६[1]–९७–१७०१–२, निज दैनन्दिनी से स० १६८०, उदयपुर।

(११७) विजयदेवेन्द्रसूरि—(लेखांक ३१०) तपागच्छीय

यह आचार्य विजयजिनेन्द्रसूरि के पट्टधर थे। राजस्थान प्रदेशान्तर्गत सेत्रावा में इनका जन्म हुआ था। सं० १८७७ मे शत्रुंजय-विमल-धाम में दीक्षा अगीकार की। स० १८८४ माघ शुक्ला प्रतिपदा को सीरोही में आचार्य पद ग्रहण किया। तपागच्छीय परम्परा का मूलस्थान उदयपुर (मेवाड़) रहा है, अतः मेवाड़ के महाराणा श्रीपूज्यों के प्रति आदरभाव रखते रहे है। उस समय महाराणा भीमसिंह राज्य सिहासनासीन थे। कुल-पृथानुसार इनके आचार्यत्व ग्रहणावसर पर चॅवर चगीर, छड़ी, दुशाल और सुखासन भेज कर राज्योचित सम्मान प्रदर्शित किया गया।

इनका सं० १८९३ का प्रतिष्ठा लेख प्रकट किया जा रहा है। शेष लेख मुनि विशालविजय १८९८, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १८९२, गैरे—१८९७–१९०५–११–२४ और नाहटा १८९३ सग्रहो में पाये जाते है।

---

१. फागुन सुदि तृतीय वड़ौदा निवासी खीमजी के पुत्र माणकजी ने अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ स्वामी का स्फटिकरत्न का बिम्ब भरवाया। इसके रजतमय परिकर पर सं० १६९७ वै० व० द्वितीया का लेख उत्कीर्णित है, और प्रतिष्ठापक आचार्य है विजयसिंहसूरि। परिकर का निर्माण भी राघणगोत्रीय खीमजी के पुत्र माणिक जी मेघजी द्वारा किया गया है। परन्तु इसमें उसे नाडियादवास्तव्य बताया है। सम्भव है कि व्यवसायार्थ वहा भी अस्थिर निवास हो। यह सपरिकर प्रतिमा नासिक के जैन मन्दिर में वर्तमान है।

(११८) विजयरत्नसूरि—(लेखाक २०५) बृहत्तपागच्छीय

इन बृहत्तपागच्छीय आचार्य ने अपने पूर्वपट्टाधीश का लेख मे उल्लेख नही किया है, परन्तु अन्यान्य प्रतिमालेख[1] एव ग्रन्थ-पुष्पिकाओ[2] से प्रमाणित है कि वे विजयधर्मसूरि के पट्टगौरव थे। आप सवत् १५१४ के पूर्व आचार्य पद प्राप्त कर चुके थे[3]।

विजयधर्मसूरि के प्रतिष्ठालेख स० १५०८-१० और १२ के उपलब्ध है[4]। इनकी पूर्व आचार्यावली इस प्रकार ज्ञात की जा सकती है—जिनतिलकसूरि-ज्ञानकलशसूरि[5] और विजयधमसूरि[6] या विजयसूरि[7]-विजयरत्नसूरि। इनके पट्टधर थे धर्म्मरत्नसूरि, जिन्होने शत्रुजयोद्धार

---

२ नाहर—भाग ३, लेखाक २४६८।

३ श्रीमत्पणहिल्लनाम्नि पत्तने सज्जनान्विते
श्रीमद्वृद्धतपागणनाथा श्रीविज (य) धर्म्मसूरयो जगति
संवत् १५३६ वर्षे प० विजयकीर्त्तिगणिनाऽलेखि

—मुनि पुण्यविजय—प्रशस्त्यादि सग्रह, पृष्ठ २७८

३ ज्ञानाजलि पृष्ठ २९।

४ बुद्धिसागरसूरि भाग २, लेखाक ३१९-२५-६२१-७२२-७९७-८०२-१०३१, नाहर भाग १, लेखाक ७९७।

५ ज्ञानकलशाचार्य का नाम स० १५१४ के प्रतिलिपित कल्पसूत्र-पुष्पिका मे इस प्रकार आता है—

वृत्त (? द्ध) शाखातपागच्छे श्रीज्ञानकलशगुरौ,
विद्यागुरोरुपाध्याय चरणकीर्त्ति पाघक्षुवा
श्री पूज्य भ० श्रीविजयरत्नसूरीश्र गच्छाधिप
पं० विजयसमुद्रगणीद्रणा दत्तं श्रीकल्पपुस्तकम् ॥

—प्रशस्ति संग्रह, पृष्ठ १८

६ बुद्धिसागरसूरि भाग-२, लेखाक ३१८, इसमें जिनतिलकसूरि से विजयधर्म्मसूरि तक के आचार्यों के नाम हैं।

७ नाहर लेखाक २४६८।

की भविष्यवाणी चित्रकूट में तोलाशाह के समक्ष की थी (देखें आचार्य परिचय सख्या ७२)।

सं॰ १५३० के अतिरिक्त प्रतिष्ठालेख इन सग्रहों में दृष्टव्य है: बुद्धिसागरसूरि—भाग १, १५२७; भाग २–१५१३–२९–३७, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प्र०) १५२१–२३–३०, मुनि विद्याविजय १५२७।

(११९) विजयराजसूरि—(लेखांक ३०६–३०६ अ) आणन्दसूरगच्छीय

तपागच्छीय आणन्दसूरि के राज्य में सं० १७०६ स्तम्भतीर्थनिवासी प्राग्वाट् श्रीमनजी और पासवीर ने श्रीश्रेयांसनाथजी का बिम्ब भरवाया और प्रतिष्ठा विजयराजसूरि के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुई।

स० १६७९ कड़ीग्राम में श्रीमाली खीमाशाह की धर्मपत्नी गमतादे की रत्नकुक्षि से जन्म होकर कुंवरजी नाम पाया। यह परिवार संस्कारी और धर्म के प्रति विशिष्ट रुचि रखता था। सं० १६८९ में अहमदाबाद में पिता-पुत्र ने सयम स्वीकार किया। कुंवर जी अब कुशलविजय बने। गच्छाधिपति विजयाणन्दसूरि इनकी संयममूलक तत्परता और समन्वय-शील स्वभाव से बहुत प्रभावित हुए। स० १७०४ में आचार्य पद प्रदान किया और विजयराजसूरि नाम से यशर्जित हुए। खम्भात के प्रमुख श्रावकों—श्रीमाली पारेख वाजीया ने[1] धन व्यय कर स० १७०६ में महोत्सव द्वारा भट्टारक पद पर अभिषिक्त किया। इस नवोदित शाखा का खम्भात में विशेष प्रभाव था। सं० १७१० में इन्हीं के तत्वावधान में विराट् प्रतिष्ठोत्सव सम्पन्न हुआ था।

मानव समाज की सुख शान्ति और समृद्धि एक ओर जहां उसके प्रयत्नों पर अवलम्बित है, वहां दूसरी ओर प्रकृति भी उनमें सहायक

---

1. कविवर ऋषभदास और मुनि शीलविजय जी ने अपनी रचनाओ में वजीया और राजीआ का स्मरण किया है। मूलतः गंधार के निवासी थे और व्यापारार्थ खम्भात वस गये थे। दुष्काल मे हजारो मन खाद्यान्न वितरण कर जन सेवा का आदर्श उपस्थित किया था। चिन्तामणी पार्श्वनाथ प्रासाद का भूमिगृह (खम्भात में ही) बनवाया और प्रतिष्ठाएं करवाई।

होती है। विजयराजसूरि के समय मे इनका अनुयायी श्राद्धवृन्द सम्पन्न था। उस समय अनावृष्टि के कारण मानव जीवन अकथित कष्टपूण यातनाए अनुभव कर रहा था। धनाभाव मुख्य था। इस समय विजयराजसूरि के सदुपदेशो से अनुयायियो ने पीडित मानव समाज को महायता प्रदान की। इम पुनीत कार्य मे मनियाशाह और उनके पुत्र शान्तिदास (नगरसेठ परिवार स्थापक से भिन्न) ने उल्लेखनीय सहयोग दिया था। स० १७२१ मे सीरोही नरेश महाराजा अक्षयसिह द्वितोय (जिनका अवसान स० १७३० मे हुआ था) के राज्य मे अभिनन्दनविम्ब की प्रतिष्ठा सूरिवर ने की[1]। विजयराजसूरि के शिष्य दानविजय ने स० १७५० मे कल्पसूत्र पर दानदीपिका वृत्ति रची। आचाय के अन्य लेख इस प्रकार है—नाहर भाग २–१७०६–१०–११, जिनविजय भाग २, १७२१, मुनि विशालविजय १७२२, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प्र०) १७२१, जन सत्यप्रकाश वर्प ९ पृष्ठ ४०३ मे दानसूरि शिष्य राजविजयसूरि का स० १६०१ का लेख प्रकाशित है। इनका स्वर्गवास स० १७४२ में खम्भात मे हुआ।

(१२०) विजयसिहसूरि—(लेखांक ३०१) तपागच्छीय

स० १६९३ वैशाख, गुरुवार को पत्तनवासी सोनी तेजपाल, विद्याधर, रामजी भार्या बाई अजाई, पुत्र सोनी विमलदास, धर्मदास और रूपचन्द की पुत्री शाति ने श्रीपार्श्वनाथविम्ब भरवाया और विजयसेनसूरि के अनुशासन मे विजयसिहसूरि ने प्रतिष्ठित किया। प्रतिमालेख सोनी तेजपाल के परिवार से सम्बद्ध है। परिवार ने महातीर्थ शखेश्वर जी मे भी द्रव्य व्यय कर सम्यक्त्व का सम्पोषण किया था। इनकी पत्नी ने स्वकल्याणार्थ भ्रामणी के पोछे का मूलद्वार बनवाया था। इनकी कल्याणो कामा ने तथा पुत्र विजयवर (जिसका प्रस्तुत प्रकाशित लेख मे विद्याधर नाम आता है) की दोनो पत्निया एव पुत्री वछाई ने एक एक देवकुलिका बनवाई थी (महातीर्थ शखेश्वर, तृतीया वृत्ति, पृष्ठ २००–१०१)।

---

१ मुनिजिनविजय—संग्रह भाग २ लेखाक २६९।

विजयसिंहसूरि का जन्म मेदिनीपुर/मेड़ता में नाथू/नथमल की पत्नी नायकदेवी से हुआ था। जन्माभिधान था कर्मचन्द। विजयदेव-सूरि के पास संयम ग्रहणान्तर कनकविजय नाम रखा। सं० १६८१ में ईडर में संकेतित आचार्य द्वारा आचार्य पद प्रदान किया।

इन आचार्यद्वय के समय में जैन संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में एक ऐसे उत्कर्षसाधक व्यक्तित्व का उदय हो रहा था जिसकी प्रतिभा का लोहा तात्कालिक विज्ञ मानते थे। सं० १६९९ में अवधान प्रयोगों द्वारा उसने चकित कर सबके हृदय में विश्वास उत्पन्न कर दिया कि यदि उन्हें शिक्षा प्राप्ति के साधन और समय प्राप्त हो तो एक दिन जन धर्म का महान् प्रचारक एवं मानव-संस्कृति का प्रकाश स्तम्भ होगा। श्रावक धनजी सूरा ने सम्पूर्ण दायित्व स्वीकार कर लिया और एक दिन जो विश्वास था वह सत्य होकर सामने आया, इन पंक्तियों का तात्पर्य उपाध्याय यशोविजयजी से है।

ऐसा ही दूसरा समुज्जवल व्यक्तित्व है उपाध्याय विनयविजयजी, जिनका परिचय संख्या १२१ में दिया गया है।

विजयसिंहसूरि के शिष्य उदयरुचि ने[1] सं० १६९९ में षडावश्यक व्या० प्रणयन किया। एक और अन्तेवासी उत्तमविजय ने सं० १७२९ में

१. प्रो० हीरालाल रसिक दास कापड़िया ने जैन संस्कृत साहित्य के इतिहास (पृष्ठ २५०) में इसी उदयरुचि के शिष्य हितरुचि को वद्यवल्लभ के प्रणेता हस्तिरुचि का गुरु मानने की सम्भावना प्रकट की है। परन्तु यहां स्पष्टता अपेक्षित है कि श्रीकापड़िया ससूचित उदयरुचि वाछित उदयरुचि से भिन्न व्यक्ति है। कारण की हस्तिरुचि ने चित्रसेन पद्मावतीरास (जैन गुर्जर कविओ भाग २ पृष्ठ १८४–८५) में अपनी परम्परा इस प्रकार दी है—हीरविजयसूरि-विजयसेनसूरि-विजयदेवसूरि-लक्ष्मीरुचि-विजयकुशल–उदयरुचि हितरुचि और हस्तिरुचि। रुचिशाखा का उल्लेख मेघविजय ने देवानन्द-काव्य में किया है। मेवाड के भींडर में इस शाखा के यतियों का निवास था। श्रीकापड़िया ने वैद्य वल्लभ की सं०१७१० प्रतिलिपित प्रति का उल्लेख किया है, परन्तु इसका रचना काल सं० १७२६ रहा है (गोंडलसूची), यह प्रति आजकल आयुर्वेद विश्वविद्यालय जामनगर में सुरक्षित बताई जाती है।

किशनगढ मे श्रीपाल रास रचा। इसकी अन्त्य प्रशस्ति मे आचार्य श्री के सुकृत्यो का सकेतात्मक उल्लेख किया है।

आचार्य विजयदेवसूरि और विजयसिंहसूरि मे बडा स्नेह था। लगभग साथ ही विचरते थे। बहुत से प्रतिष्ठा लेख भी समन्वित ही पाये जाते है। उदयपुराधीश महाराणा जगतसिंह प्रथम दोनो पर समान आस्था रखते थे। वह परमशैव होने के बावजूद भी सदाचार प्रेमी थे। इनके दैनिक जीवन पर श्रमणसंस्कृति का भारी प्रभाव था। इसका एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा।

मेवाड के स्वामी महादेव एकलिंग जी माने जाते थे और महाराणा दीवान के रूप मे राज-कार्य चलाते थे। एकलिंग जी स्थान उदयपुर से तेरहवे मील पर अवस्थित है। बापा रावल के समय मे महामना हारीतराशिद्वारा इसकी सस्थापना स० ७९१–८१० मे हुई थी। कुशिकशाखीय पाशुपत—परम्परा के आचार्यो ने प्रकृति के प्रागण मे सस्कृति का विकास किया। शिल्प-स्थापत्य और मूर्त्तिकला के मुख को समुज्ज्वल करने वाले अनेक प्रतीको का सर्जन किया-करवाया। पाशुपत ही यहा के मुख्य अर्चक थे। सम्प्रदाय के मध्यकालोत्तर इतिहास से स्पष्ट है कि ये लोग नाथ समुदाय मे, यौगिक साम्य के कारण, विलीन हो गये थे। स्वभावत पाशुपत साधना से पतित हो रहे थे। वज्रोलीमुद्रा की साधना ने इन्हे और भी अर्जित गौरव से गिरा दिया। ब्रह्मचर्य का लोप हो गया और कालान्तर मे तो सभी ग्रहस्थी जैसे हो गये। जनता और महाराणाओ की आस्था हिल गई। कहने की आवश्यकता नही कि कोई भी दार्शनिक परम्परा उसके धार्मिक स्वच्छता के बल पर ही जीवित रह सकती है। वैयक्तिक सयमिक पतन परम्परा को कलकित कर देता है।

एकलिंग जी के प्रधान अर्चको के पतन का आदि काल अज्ञात है, परन्तु एकलिंग-महात्म्य से फलित होता है कि महाराणा कुम्भकर्ण के समय मे पतन का सूत्रपात हो चुका था। महाराणा ने उस समय के महन्त शम्भुनारायण का उपहास किया था, जिससे वह अप्रसन्न होकर

बनारस प्रस्थित हुए। अनन्तर पुनः वापस आये, परन्तु राजाओं की वह श्रद्धा न रह गई थी। महाराणा कुम्भकर्ण कौलिक परम्परानुसार शैवधर्म में आस्थावान होने के बावजूद वैष्णव धारा के प्रति अधिक आकृष्ट थे, जैसा कि उनके द्वारा एकलिंग जी मे ही बनवाये कुम्भश्याम प्रसाद से प्रतीत होता है। महाराणा द्वारा निर्मित साहित्य भी उनके वैष्णवत्व पर मुद्रा लगाता है।

महाराणा जगतसिंह प्रथम जैन और वैष्णव सदाचारी साधुओ के सम्पर्क में रहा करते थे। एकलिंग जी में वहा के अर्चकों द्वारा जो कुछ भी हो रहा था, उससे असन्तुष्ट थे। वह मानते थे कि सार्वजनिक जीवन यापन करने वाले सन्तों का आचार और आदर्श प्रेरक, और निर्मल होना चाहिए। नैतिक दृष्ट्या पतित जीवन आदर्श स्थापना के लिए अनुपयुक्त है। परन्तु शताब्दियो से जमे हुए एकलिंग जी से कथित पाशुपत्त अर्चकों को उखाड़ फैकना सरल न था। जैनाचार्यो के अधिक संसर्ग के कारण महाराणा में नैतिकता इतनी विकसित हो चुकी थी कि सं० १६८४-१७०० के मध्यकाल में भ्रष्ट पाशुपतों को विदा कर बनारस से आहूत रामानन्द को एकलिंग का मुख्यार्चक नियुक्त किया। तभी से वहां के पूजक संन्यासी हुए। एकलिंग जी के प्राचीन हस्तलिखित्त ज्ञानभण्डार में सुरक्षित और प्रतिलिपित साहित्य से ज्ञात होता है कि इस परम्परा ने साहित्यिक और सास्कृतिक संरक्षण में उल्लेखनीय योग दिया है।

आचार्यश्री के अन्य प्रतिष्ठा लेख इन संग्रहों में प्राप्त होते हैं—

नाहर भाग १, १६८४-८६-८७-८८-९३-९७-१७०१, भाग २, १६८६-९३-९९-१७०१-३, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १६९३-१७०५, भाग २, १६९३-१७०५, जिनविजय भाग २, १७००, गैरे १६८९-९६-१७१०, विनयसागर १६८६-८७-९९, नाहटा १६८६-८७ मुनि विशाल विजय १७०१।

(१२१) विजयसेनसूरि—(लेखांक २९५-२९६) :

यह हीरविजयसूरि के पट्टधर थे। परम तपस्वी, निस्पृही और समन्वयवादी आचार्य का जन्म सं० १६०४ नारदपुरी-नाडलाई में

क्माशाह की धर्मपत्नी कोडमदेवी की कुक्षि मे हुआ था। स० १६१३ मे विजयदानसूरि के समीप दीक्षा अंगीकार की। स० १६२८ मे सूरि बने। इनकी व्याख्या-शक्ति बलवान् थी। योगशास्त्र के प्रथम पद्य के सात सौ अर्थ किये। स० १६४७ मे सूक्तरत्नावली का सकलन किया। बादशाह अकबर इनकी वाक्शक्ति से प्रभावित था। विद्वत्समुदाय के धनी आचार्य का स्वर्गवास खभात मे स० १६७२ मे हुआ। गुरु भक्तिवश सोमजी शाह ने दाहस्थान पर स्तूप बनवाया था। इस सग्रह मे प्रकाशित लेखो के अतिरिक्त अन्य लेख इन सग्रहो मे प्राप्त हैं—

नाहर भाग १, १६४३–५२–५३–५८–६७, भाग २, १६३३–४२–५२–५६–६१–६७–७०, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १६४२–४३–५४–५५–६३, भाग २, १६३२–४२–४३–५४–५६–५८–५९–६१–६२–६८, गैरे १६५०–५२, मुनि कान्तिसागर १५६०, नाहटा १६५३–५४–७०, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प्र०) १६३४–४४–५३–६०, जैन सत्यप्रकाश वर्ष ६ पृष्ठ १७६–१६४३–४६, वर्ष १८ पृष्ठ १६२, १६६६, वर्ष १२ पृष्ठ १२९–१६५६, जै०स०प्र० वर्ष २ पृष्ठ ३३ पर स० १६२५ का लेख विजयसेनसूरि का सूचित है, वह अन्वेषणीय है कारण कि इन्हे आचार्य पद ही स० १६२८ मे मिला था।

(१२२) विनयविजय उपाध्याय (लेखाक ३२५) तपागच्छीय

प्रतिष्ठालेख किसी दुराग्रही का भोग बन चुका है, कारण कि सवत् १७ २ ही पढा जाता है। मध्याक इरादतन छैनी से मिटाया गया है, परन्तु उपाध्याय के अति विख्यात ग्रन्थकार होने से काल निर्णय मे कठिनता न होगी। इनका जन्म स्थान अज्ञात है, स० १६८४ से ही इनकी सारस्वतोपासना प्रारम्भ हो चुकी थी। इस सवत् की इनके द्वारा प्रतिलिपित नैषधीयचरित की प्रति प्राप्त है। प्रस्तुत लेख मे विजयदेवसूरि रूपदेशात् शब्द से अनुमित है कि उनकी विद्यमानता मे प्रतिष्ठा सम्पन्न हो चुकी थी। विजयदेवसूरि का स्वर्गवास स० १७१३ मे हुआ था। अत निर्विवाद रूपेण लेख का प्रतिष्ठापन काल स० १७०२ या १७१२ होना चाहिए।

उपाध्याय विनयविजय हीरसूरि के अन्तेवासी कीर्त्तिविजय के शिष्य थे। लोकप्रकाश की अन्त्य प्रशस्ति से विदित होता है कि इनके माता-पिता का नाम राजश्री और तेजपाल था। न्याय, व्याकरण, साहित्य, धर्म, दर्शन और आगमिक साहित्य का इनने गम्भीर पारायण किया था। प्रचण्ड वैदुष्य के कारण ही तात्कालिक विद्वान् उपाध्याय यशोविजय इनका समादर करते थे। बल्कि कहना यों चाहिए कि इनके अनुभव का उपयोग भी करते थे। उनकी धर्मपरीक्षा की अन्त्य प्रशस्ति में वे स्वयं स्वीकार करते है, यथा—

महामहोपाध्यायश्रीविनयविजयैश्चारमतिभिः
प्रचक्रे साहाय्यं तदिह धटनासौष्ठवमभूत्
प्रसर्पत् कस्तूरीपरिस्मलविशेषाद् भवति हि
प्रसिद्ध श्रृंगारस्त्रिभुवनजनानन्दजननः ॥

कला और कलाकार की परिभाषा को शव्दो की सीमा में वाधना कठिन है। वह अन्तर के अमूर्त्त भावों को उपादान द्वारा अभिव्यक्त कर सौन्दर्य की सृष्ठि करता है। स्वयं आनन्दविभोर हो जगत् को आत्मानन्द में सम्मिलित कर लेता है। वह छैनी, तूलिका और शव्दों के माध्यम से रस के शतधार झरने प्रवाहित करता है, परन्तु उन्हे आत्मसात् कर पाते हैं संवेदनशील हृदयी ही। विनयविजय यों तो सक्षम जीवनशिल्पी कलाकार थे, और उच्चकोटि की भावभूमि मे विचरण करने वाले शव्द सम्राट भी। यथार्थ की अनुभूति तो सवको हो सकती है, किन्तु, अभिव्यक्ति का सौभाग्य स्वल्प लोग ही प्राप्त कर सकते है। उपाध्याय में दोनों का समन्वय था। जहां सांस्कृतिक पत्रलेखन का प्रश्न है वह इस कला में निपुण थे। आनन्दलेख (सं० १६६४) और इन्दुदूत भारतीय उत्कृष्ट पत्रों का सर्वांग सुन्दर परिपाक है। भारतीय गीतिकाव्यों में अमर कवि जयदेव ने कृष्णलीलाओं का भावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत कर वैष्णव-परम्परा को जीवित रखा है। परन्तु जैन संस्कृति तो वैराग्य मे सदा से विश्वस्त रही है। त्याग ही उसकी आत्मा है। वासना, वैभव और विकृति संस्कृति के प्रवल शत्रु हैं। विनयविजय ने शान्तसुधारस-गीतिकाव्य का प्रणयन ठीक गीतगोविन्द की शैली के अनुसार संगीतवद्ध

किया है। गीतगोविन्द जीवन में वासना और वैभव (पौद्गलिक) को प्रतिष्ठित करता है या वैसा अनुभव करता है तो उसके विपरीत शान्त-सुधारस भावना निवृत्तिमय जीवन का समर्थन करती है। इसमें लौकिक सम्पदा को निरर्थक बताते हुए मानवीय कर्त्तव्यों पर बल दिया है। आध्यात्मिक रस से परिपूर्ण यह रचना मानव संस्कृति का प्रकाश है।

विनयविजय के साहित्य को लोकभोग्य और विद्वद्भोग्य दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, द्वितीय कोटि की रचनाओं में हैमलघु-प्रक्रिया स्वपज्ञ (राधनपुर सं० १७१०), शान्तसुधारसभावना (गन्धपुर-गधार सं० १७२३), कल्पसूत्र सुबोधिका व्याख्या (सं० १६९६ विजयाणदसूरिराज्ये), लोकप्रकाश और नयकर्णिका (जूनागढ़), जिन-सहस्रनाम, षड्त्रिंशज्जल्प प्रभृति लोकभाषा की रचनाओं का परिचय जैन गुर्जर कविओ में दिया है।

इस लेख के अतिरिक्त इनका एक और प्रतिष्ठा लेख मुनि जिनविजय संग्रह भाग २ में सं० १७१० का प्रकाशित है।

(१२३) विमलकीर्त्ति—(लेखांक १८४) सरस्वती गच्छीय

यह मूलसंघीय सरस्वती गच्छीय पद्मनंदि-सकलकीर्त्ति के पट्टधर थे। राजस्थान प्रदेशान्तर्गत वाग्जड/वागड़ में इनका विशेष प्रभाव था। विमलकीर्त्ति विशिष्ट विद्वान् वक्ता और सुलेखक थे।

(१२४) विमलसूरि—(लेखांक १२८) ब्रह्माणगच्छीय

ब्रह्माणगच्छीय आचार्यों के प्रतिष्ठालेखों से परिज्ञात है कि इस परम्परा में दो-दो समान नामधारी आचार्य एक-दूसरे के पट्ट पर हैं। इसका विवेचन मुनिचन्द्रसूरि (संख्या ९०) के परिचय में किया गया है। यही स्थिति विमलसूरि और बुद्धिसागरसूरि की है। तेरहवीं शती में ये दोनों ही नाम व्यहृत होते आये हैं। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में तो इतने समीप काल में इन आचार्यों के लेख मिलते हैं कि यदि किसी में पूर्व-पट्टाधीश का नाम या संकेत न हो तो किसका सम्बन्ध किससे स्थापित

किया जाय ?[1] प्रश्नचिह्न बन जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि ब्रह्माणीय आचार्यों की प्रतिमालेखो के आधार पर एक स्वतन्त्र परंपरा बना दी जाय ताकि शोधक भ्रमित न हो सके।

वांछित विमलसूरि सं० १५०६ लेख वाले बुद्धिसागरसूरि (बुद्धि-सागरसूरि : लेखाक ८०८) के पट्टधर है। इनके लेख सं० १५२८ तक ही माने जाने चाहिये। बाद में इन्ही के पट्ट पर पुनः बुद्धिसागरसूरि आ जाते है, उनके लेखों पर विचार यहां अपेक्षित नही है। इस संग्रह में सं० १५१० और सं० १५१७ के लेख प्रकाशित है। अन्य लेख विनय-सागर १५१६, मुनि कान्तिसागर १५१५, नाहर भाग १, १५११–१७, मुनि विशालविजय १५११, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प्र०) १५२४, नाहर भाग २, १५००–१८–१६–२४, भाग ३, १५१६, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५१७–२४, भाग २, १५०८–१३–२३, मुनि विद्याविजय १५१५–१६ आदि संग्रहों में द्दष्टव्य है। इसी सकलन में लेखांक १४४ विमलसूरि से सम्बन्ध रखता है, परन्तु गच्छ ब्रह्मपि है।

(१२५) विमलसूरि—(लेखांक १५३) ब्रह्माणगच्छीय

पूर्व सूचित विमलसूरि से भिन्न आचार्य भी संकेतित बुद्धिसागरसूरि के पट्टधर थे। इस संग्रह में सं० १५७६ का लेख प्रकट किया गया है। इनके अन्य लेख बुद्धिसागरसूरि भाग ३, १५८६, मुनि विशालविजय १५७७, नाहर भाग ३, १५७३–७७ में पाये जाते है। सं० १५६८ की रसरत्नाकर की एक प्रति पाई गई है जो इन्ही विमलसूरि के पारिवारिक मुनियों से संबद्ध जान पड़ती है, (श्री पुण्यविजय-प्रशस्त्यादि संग्रह पृष्ठ २७०)।

(१२६) विवेकरत्नसूरि—(लेखांक ३२० अ) खरतरगच्छीय

यह प्रतिष्ठालेख खण्डित है। परन्तु नाहर संग्रह भाग २ (लेखांक १७५५) में इनका सं० १५१७ का एक लेख संग्रहीत है, अतः प्रकाशित

---

१. विमलसूरि के प्रशिष्य भावकृत हरिश्चन्द्ररास उपलब्ध है, रचनाकाल अज्ञात है। इसका सम्बन्ध किस विमलसूरि के साथ स्थापित किया जाय ? देसाई महोदय ने सं० १६२६ की प्राप्त प्रति के आधार पर सत्रहवी शताब्दी अनुमित किया है। —जैन गूर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ६३२

खण्डित लेख का समय भी लगभग इसी काल के आसपास का होना सहज कल्प्य है। इनके प्रशिष्य राजरत्नसूरि ने स० १५९९ मे हरिबल माछी चौ० की रचना की जिसमे इन्हे इस प्रकार स्मरण किया है—

खरतरगच्छि गोयम समवड्ढि विवेकरत्नसूरीद[1]

(१२७) वीरसिंहसूरि—(लेखाक ३५)

प्रतिमालेख मे गच्छ या पूर्व आचार्य का सकेत नहीं है। जैन सत्यप्रकाश वर्ष ९ पृष्ठ ३८२ पर स० १३६८ का वीरसिंहसूरि से सबद्ध एक लेख प्रकाशित है। यह उपदेशक कोटि के आचार्य है। प्रस्तुत सूरि प्रतिष्ठापक आचार्य हैं, लेख का काल स० ११९४ है, अत भिन्नत्व स्पष्ट है। यद्यपि प्रतिष्ठापक आचार्य-लेखो मे भी उपदेशेन शब्द का एकान्तिक बहिष्कार नही किया गया है, पर ऐसा विशेष परिस्थितियो मे ही सम्भव हुआ है। पिप्पलीय वीरसिंह का भी अस्तित्व रहा है, पर कालिक वैषम्य है।

(१२८) वीरसूरि—(लेखाक ३१७) ब्रह्माणगच्छीय

इस गच्छ मे इस नाम के कई मुनिचन्द्रसूरि और वीरसूरि हुए हैं और वह भी एक-दूसरे के पट्ट पर ही, निश्चित अस्तित्व काल के अभाव मे किससे सगति बैठाई जाय ?

---

१ जैन गूर्जर कविओ भाग २ पृष्ठ ६३२।

श

(१२६) शयंदेवसूरि—(लेखांक ६४) षंडेरगच्छीय

इस आचार्य का परिचय अज्ञात के गर्भ में है। नाम ही संदेहात्मक प्रतीत होता है।

(१३०) शान्तिसागरसूरि—(लेखांक ३०६–११) सागरगच्छीय

सूरिवर आणंदसागरसूरि के पट्टधर अर्थात् तपागच्छ की सागर शाखा के छासठवे आचार्य थे। इनके दोनों ही प्रतिमा लेख सापेक्षतः कालिक दृष्टि से प्राचीन न होते हुए भी तात्कालिक जैन इतिहास के लिए विशिष्ट महत्व के है। इनमें से प्रथम लेख अद्यावधि अन्यत्र अनुल्लिखित रहा है। लेख संकेतित संवत् में आचार्य शान्तिसागरसूरि द्वारा वहुत प्रतिष्ठाएं हुई हैं। लेख का सार है कि सं० १८६३ में तदनुसार शाके १७५८ माघ शुक्ला दशमी बुधवार को अहमदाबाद निवासी ओसवालवृद्धशाखीय सिसोदिया वंश के कुकुंमलोलगोत्रीय सेठ शान्तिदास-लक्ष्मीचन्द्र-खुशालचन्द्र-वखतचन्द्र तद्भार्या जड़ावबाई कुक्षीसम्भूत सेठ हेमाभाई ने स्वकल्याणार्थ श्रीपार्श्वनाथस्वामी का बिम्ब भरवाया और शान्तिसागरसूरि ने प्रतिष्ठित किया। मुनि चन्द्रविजय ने प्रतिमा पर लिपित किया। आगे का अंश चूने के पलस्तर में दब गया है, परन्तु उस भाग में उत्कीर्णक का नाम कल्प्य है।

सूचित शान्तिदास सेठ अहमदाबाद के नगर सेठ परिवार के स्थापक महापुरुष थे। मूलतः वे कहां के निवासी थे? पुष्ट प्रमाण के अभाव में निश्चिततया कहना कठिन है। किंवदन्त्यनुसार सूरत के गौरव थे और

वही इन्हे समुन्नतिमूलक आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। भारत मे अनुभव किया गया है कि विशिष्ट व्यक्तियो के विकास के साथ उनके जीवनक्रम पर लोकश्रुतियो का इतना अम्बार लग जाता है कि उसमे सत्यशोधन समस्या हो जाती है। शान्तिदास का जीवन इन पक्तियो का अपवाद नही है। जैन कवियो ने रासादि द्वारा इनका यश प्रसारित किया है, परन्तु मूलभूत तथ्यो की ओर उनका ध्यान नही गया। मिरातेअहमदी मे इनका नाम सतीदास उल्लिखित है। कहा जाता है कि जहागीर इन्हे मामा कहा करते थे। शाहजहा के राज दरबार मे इनकी प्रतिष्ठा थी। तात्कालिक राजपरिवार से घनिष्ठ सम्बन्ध बताया जाता है। इन्हे उनकी ओर से समय-समय पर तीर्थरक्षा आदि के विशिष्ट प्रमाण-अधिकार पत्र भी मिलते रहे। तात्कालिक विजय और सागर के भयकर सघर्ष मे इनने सागरो का पक्ष लिया था। इस प्रकार की स्थापना, विस्तार और अन्य सफलताओ का प्रधान कारण शान्तिदास ही थे। अहमदाबाद-सरसपुर मे चिन्तामणि पार्श्वनाथ का शिल्प-भास्कर्ययुक्त भव्य जिनभवन प्रासाद बनवाया था, इसमे छ मण्डप थे। स० १६७८ मे निर्माण का विचार हुआ और १६८१ मे प्रतिष्ठा हुई। स० १६९७ मे प्रशस्ति बनी, झवेरीवाड-जौहरियो का मुहल्ला इन्होने बसाया था। स० १७१५ मे अवसान हुआ।

जैन रासमाला के समालोचक का मन्तव्य है कि जहागीर ने शान्तिदास को नगरसेठ का पद दिया था। परन्तु इसकी पुष्टि का कोई भी तात्कालिक अकाट्य प्रमाण उपलब्ध नही है। इस पर स्व० रत्नमणिराव ने अभिमत व्यक्त किया है कि—

'शान्तिदास सेठ को औरगजेब के समय मे नगरसेठाई मिली हो ऐसा प्रतीत होता है[1]। वही इनका स्वर्गवास स० १७१५ मे सूचित करते

---

१ गुजरातनु पाटनगर अहमदाबाद, पृष्ठ ७३४।

हुं,[1] इसी वर्ष तो औरंगजेब तख्तेनशीन हुआ था। यह समय मुगलशासन के लिए महान् संघर्ष का था, चतुर्दिक् अशान्ति छाई हुई थी।

शान्तिदास की चतुर्थ पत्नी से लक्ष्मीचन्द्र का जन्म हुआ। इनने बौद्धिक कौशल से शाहजादा मुराद को अपने पक्ष में कर लिया था।

खुशालचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र के पुत्र और राजमान्य व्यक्ति थे। इनके समय का राजनयिक क्षितिज अशान्त था। औरगजेब संसार से विदा हो चुका था। मराठों के आक्रमण से प्रजा त्रस्त थी, अहमदाबाद का वैभव उनकी आंखों में खटक रहा था। स० १७८६ में इसे लूटने का मराठों ने उपक्रम बनाया, नगर को चारों ओर से घेर लिया, परन्तु वखतचन्द्र ने अपने पास से समुचित आर्थिक भेट देकर उन्हे विदा किया और इस प्रकार शहर विपत्ति से बच गया। इसी शालीनता के कारण ही जन मन में इस परिवार का स्थान सदा के लिए अमिट हो गया। नागरिकों ने कृतज्ञता परिज्ञापनार्थ कुछ आर्थिक अधिकार पारम्परिक रूप से इस परिवार को प्रदान किए और नगरसेठ बिरुद से अलकृत किया। तत्सम्बन्धी एक आज्ञापत्र भी जारी किया। गायकवाड़ भी इन्हे सुखासन छत्र और एक सहस्र मुद्रा का हक देकर प्रसन्न हुए।

इसके पुत्र वखतचन्द्र भी परोपकार परायण और प्रतापी पुरुप थे। पिता के चरण-चिह्नों पर चलकर जनरल गोडार्ड के अहमदाबाद लूटने के आदेश को वापस करवाया था। सं० १८६४ में शत्रुंजय पर संघ निकाला और सं० १८६८ में प्रतिष्ठाएं करवाई। गायकवाड़ सरकार की ओर से इन्हें भी पितृवत् सम्मान प्राप्त था। सं० १८७० में इनका देहोत्सर्ग हुआ। चार वर्ष के अनन्तर अहमदाबाद पर पूर्णतया आंग्ल-शासन स्थापित हो गया। इन्हीं के पुत्र थे हेमभाई जिनने सार्वजनिक

---

१. गुजरातनू पाटनगर अहमदावाद, पृष्ठ ७३७,
राजसागरसूरि रास से भी इसका समर्थन होता है—

संवत् सतरसि वरस पनरोतरि अम्हारइ प्राण आधार
साह शान्तिदास रे सुरलोकि गयो तिहां अम्हें जावुं निरधार

—जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य संचय, पृष्ठ ५८

सस्थाओ को मुक्त हस्त से दान देकर पारिवारिक गरिमा का सुरक्षित रखा। शत्रुजय-गिरिश्रृग पर तीन लाख रुपयो के व्यय मे नदीश्वर टूंक वनवा कर स० १८८६ मे प्रतिष्ठा करवाई। जिस प्रतिमालेख का सर्व-प्रथम इस सग्रह मे प्रकाशन हो रहा है वह मूर्त्ति भी इन्ही के कल्याणार्थ वनवाई थी। सर्वधातुमिश्रित सकेतित प्रतिमा कला की दृष्टि से नव्य होकर भी कम आकर्षक नही। स० १९१४ मे हेमाभाई परलोक प्रस्थित हुए। अनन्तर प्रेमाभाई ने परिवार को ज्योतित किया। हेमाभाई के एक पुत्र लेमाभाई ने स० १९२१ मे विमलनाथ विम्ब भरवा कर इसी शान्ति-सागरसूरि से प्रतिष्ठित करवाया[1]।

राजनयिक स्वातन्त्र्योत्तर युग मे पर्याप्त परिवर्त्तन अनन्तर भी नगरसेठ परिवार का सम्मान आज भी यथापूर्व सुरक्षित है।

इतने विवेचनानन्तर इस परिवार के वश-स्थापक के सम्वन्ध मे प्रसारित भ्रम का परिमार्जन भी अपेक्षित है। स्व० मोहनलालभाई देसाई ने 'सीसोदिया राजपूत, क्षत्रीय बीज, काकोलाशाखा तथा सामतसिह और कुमारपाल सीसोदिया वश' परिचय दिया है।

मुनि श्रीज्ञानविजयजी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कविवहादुर दीपविजय कृत सोहमकुल पट्टावली रास मे उल्लिखित सीसोदिया ओसवाल कुलोत्पत्ति को आधारभूत मानकर सूचित किया है कि—

> "रावल करणसिह के महीपतिसिह और धीरजसिह तीन पुत्र थे। धीरजसिह कुष्ट पीडित था। पडेरगच्छ के जैनाचार्य ने रोग निवारण किया, परिणाम स्वरूप वह गुरु के चरणो मे सदा के लिए समर्पित हो गया। राजपरिवार मे इसकी विपरीत प्रतिक्रिया हुई। वह नही चाहता था कि धीरजसिह दीक्षा-अगीकार कर द्वार-द्वार भिक्षाटन करें। निर्णय लिया गया कि प्रत्युपकार स्वरूप कुछ ग्राम सौप कर धीरजसिह को आचार्य से पुन प्राप्त कर लिया जाय। करणसिह को (अस्तित्वकाल स० १२११—२९)

---

१ नाहटा सग्रह लेखाक १५६६।

आश्वस्त करते हुए आचार्य ने कहा कि मैं इसे दीक्षा न देकर परमार्हत् बनाना चाहता हूँ। यही धीरजसिंह सीसोदिया ओसवाल वंश का स्थापक है। सेठ शान्तिदास का समावेश इसी वंश में होता है[1]।

आगे सूचित करते है—

"सीसोदिया का संस्कृत रूप शीर्षोदिताः-शीर्शोदयाः होता है। ब्रह्मा के मुख निःसृत ब्राह्मण कहलाये, उसी की परम्परा ब्राह्मण-सन्तान ही सीसोदिया है। शिलादित्य विप्रसन्तान है, उसी की परम्परा मे बापा रावल हुआ, वापा के वंशज ही सीसोदिया है[2]।

मुनिजी यही तक नही रुके, निष्कर्ष पर पहुंचते हुए लिखा है—

"इस प्रकार रणसिंह से सीसोदिया राजा राणा कहलाये और इसका पुत्र करणसिंह था जिसका अपर नाम क्षेमसिंह भी संभव है, इसी के पुत्र धीरजसिंह वि० सं० १२११–१२२९ में ओसवाल वने थे[3]।"

उद्धृतांश से फलित है कि—

१. करणसिंह का पुत्र धीरजसिंह सीसोदिया वंश का स्थापक था, इसका नाम क्षेमसिंह भी संभव है।

२. करणसिंह रणसिंह का पुत्र था, संग्रामसिंह और समरसिंह रणसिंह के उपनाम है[4]।

३. ब्रह्मा के मुख से निःसृत शिलादित्य ब्राह्मण थे। इन्ही की सन्तान वापा रावल है। इनके वंशज सीसोदिया कहलाये, इन्हीं तथ्यों

---

१. जैन सत्यप्रकाश वर्ष १४ पृष्ठ २९
२. वही वर्ष १४ पृष्ठ २०
३. वही वर्ष १४ पृष्ठ ३१
४. वही वर्ष १४ पृष्ठ ३१

को मुनि दर्शनविजयजी ने पट्टावली समुच्चय भाग २ के पृष्ठ २१२ पर दुहराया है ।

समाधान

तथ्यशून्य एवं कल्पनाप्रसूत उपर्युक्त घटनाओं का ऐतिहासिक अकाट्य आधारो पर समाधान प्रस्तुत करने के पूर्व सूचित करना परमावश्यक है कि स० १८७७ में कविबहादुर दीपविजय प्रणीत सोहमकुलपट्टावलीरास मे बापा रावल का राज्य मस्थापनकाल, सीसोदियावश-वशोत्पत्ति, माहप द्वारा डूंगरपुर की स्थापना, गलिग्राकोट गमन, कर्णसिंह के तृतीय पुत्र धीरजसिंह का कुष्ठ, हमीर द्वारा एकलिंग प्रासाद का निर्माण, कुम्भकर्ण के राणकपुर के स्तम्भद्वय, इनके पुत्र रायमल द्वारा देवकुलपाटक की स्थापना, उदयसिंह (द्वितीय) द्वारा स० १६२५ मे उदयपुर बसाया जाना[1], आदि अनेक बातें सत्य मे सर्वथा विपरीत हैं । शिलात्कीर्ण प्रशस्ति, ताम्रपत्र एव ऐतिहासिक रचनाओ के माध्यम से सभी कथित तथ्यों का भलीभाति निरसन हो जाता है । आश्चर्य तो इस बात का है कि इसके अद्यतनयुगीन इतिहास सम्पादक ने ऐसी अविश्वसनीय बातो पर समाधानसूचक टिप्पण क्यो नही लगाये ? प्रत्युत इसके विपरीत अनैतिहासिक तथ्यो का समर्थन किया है जिनका कोई आधार नही है ।

१ विक्रमसिंह के पुत्र कर्णसिंह[2]-रणसिंह का राज्यकाल स० १२१५-२५ तक का था । राणकपुर और कुंभलगढ प्रशस्तियो मे इनका नामोल्लेख है । यही एकलिंगमहात्म्य का कर्ण है । रावल और राणा शाखा इसी से फटी[3] । इसी कर्णसिंह का पुत्र धीरजसिंह बताया जाता है । एकलिंगमाहात्म्य, मेवाड की पुरातन शिलोत्कीर्ण प्रशस्तिया, अमरसार, अमरकाव्यादि मेदपाट के इतिहास सबद्ध सूत्रो से रणसिंह-कर्णसिंह के राहप

---

१ पट्टावली समुच्चय पृष्ठ २९-३२

२ चोऽस्याथाग्रजो जज्ञे वधुविक्रमकेसरी
तत्सुतो रणसिंहाख्यो राज्ये रजितसत्प्रज
—कुम्भलगढ–प्रशस्ति;

३ म०म० गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा—राजपूताने का इतिहास पृष्ठ ४४७ ।

ओर माहप के अतिरिक्त और किसी तृतीय पुत्र होने का संकेत तक नही मिलता। अतः धीरजसिंह केवल कल्पनालोक का ही पात्र है।

जहां तक कुष्ठरोगोत्पत्ति का प्रश्न है, यह रोग राहप को हुआ था और सांडेराव के जैन यति द्वारा उपचार किये जाने पर निवृत्त हो गया। सांडेराव और सीसोदा भौगोलिक दृष्टि से समीप भी है। अतः जैन यति द्वारा रोग निवारण की बात तर्क संगत है। रोगशामक यति द्वारा अपने विप्र शिष्य की सिफारिश किये जाने पर राहप ने उसे अपना पुरोहित नियत किया। वह पल्लीवाल विप्र था। तभी से आज तक इसी जाति के पुरोहित होते आ रहे है।

मेवाड के राणा मदिरापान नही करते थे। परन्तु औषधियों में इसकी संयोजना थी। इसका ज्ञान होते ही राहप बहुत अप्रसन्न हुआ। राजमर्यादा-भंग दोष निवारणार्थ उसने गरम सीसा पी लिया जिससे उसकी मृत्यु हुई। और इसकी सन्तान सीसीदिया कहलाई, इसमें कितना सत्यांश है। नहीं कहा जा सकता, इन पंक्तियो का लेखक इसका जनश्रुति से अधिक महत्त्व स्वीकार नही करता।

धीरजसिंह का अस्तित्व ही संदिग्ध है तो आर्हत् धर्म स्वीकृति का प्रश्न ही नही उठता।

२. करणसिह को रणसिह का पुत्र मानना, अपरनाम क्षेमसिह होने की सम्भावना व्यक्त करना और इसे ही धीरजसिंह का पिता बताना; यह सब कुछ इतिहास के प्रति घोर अज्ञान का परिचायक है। जिस स्थान पर धीरजसिंह को रणसिह का पुत्र स्वीकार किया है, कुछ पक्तियों को छोड़कर क्षेमसिह के पुत्र होने की कल्पना की है। ऐसी भयंकर असंगति इतिहास का सामान्य विद्यार्थी भी नही कर सकता, जबकि मुनि श्री ने यह सब कुछ ऊटपटांग कैसे और किस चित्तवृत्ति से लिख डाला? सच्चाई तो यह है कि रणसिह और करणसिह दो नामधारी एक ही व्यक्ति है। इसका एक नाम कर्ण भी एकलिंगमहात्म्य में पाया जाता है[1]।

---

१. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा : राजपूताने का इतिहास पृष्ठ ४४७।

क्षेमसिंह का अपरनाम करणसिंह न होकर वह रणसिंह का पुत्र था। जैसा कि कुंभलगढ-प्रशस्ति के निम्न उद्धरण से स्पष्ट है—

श्रीमहणसिंहकनिष्टभ्रातृश्रीक्षेमसिंहस्तत्सूनु [1]

महणसिंह के अवसानानन्तर लघुवन्धु क्षेमसिंह राज्यसिंहासन पर आरूढ हुआ[2]। इसके पुत्र सामन्तसिंह का एक लेख 'जगत्' मे मिला है। अत इससे भी कल्पित धीरजसिंह का समय मेल नही खाता। समरसिंह और सग्रामसिंह को भी मुनिजी ने एक मानने का असफल प्रयत्न किया है। दोनो के मध्यवर्त्ती समयान्तराल पर तनिक भी ध्यान दिया जाता तो इस उपहास्यास्पद स्खलन से अपने आप को वचाया जा सकता था। करणसिंह के पौत्र सामन्तसिंह का लेख स० १२२८ प्राप्त है, और समरसिंह, तेजसिंह (जिसका स्वर्गवास १३३० के लगभग हुआ) का पुत्र था इसका प्रथम लेख स० १३३० का प्राप्त है। दोनो मे पर्याप्त समय वैषम्य है, फिर भी एक मानने मे सकोच क्यो नही हुआ? एक बात और ध्यान देने योग्य है कि मुनिजी ने करणसिंह को समरसिंह का चतुर्थ पुत्र बताया है[3]। विवेचन से स्वत स्पष्ठ है कि समरसिंह तो करणसिंह का पर्याप्त परवर्त्ती शासक है, वह तेजसिंह का पुत्र है और करणसिंह विक्रमसिंह का पुत्र है।

३ वापा रावल का राज्य काल सुनीसुनाई वातो के आधार पर सं० १९१ माना है और विप्रवशीय वताया है। वापा रावल उपाधि थी, नाम कालभोज, इनके समय पर प्रकाश डालने वाला पुरातन पद्य प्राप्त है—

यदुक्तं पूरातनै' कविभि —
आकाशचद्रदिग्गजसख्ये सवत्सरे वभूवाध
श्रीएकलिंगशकरलब्धवरो वाप्पभूपाल

१ गौरीशंकर हीराचंद ओझा—राजपूताने का इतिहास पृष्ठ ४४७।
२ वही वही पृष्ठ ४४८।
३ जैन सत्यप्रकाश वर्ष १४ पृष्ठ २९।

काल समर्थक और एक पद्य एकलिंगमहात्म्य के बीसवें अध्याय में पाया जाता है—

राज्यं दत्वा स्वपुत्राय आथर्ववणमुपागत:
खचंद्रदिग्गजासंख्ये च वर्षे नागहृदे मुने
क्षेत्र च भुवि विख्याते स्वगुरोर्गुरुदर्शनम्
चकार स समित्पाणिश्चतुर्थाश्रमाचरन्

प्रामाणिक उद्धरणों से स्पष्ट है कि बापा ने सवत् ८१० में एकलिंग जी से वर पाया और उसी वर्ष स्वपुत्र (खुमाण प्रथम) को राज्य प्रदान कर चतुर्थ-संन्यस्त आश्रम में प्रवेश किया। इनका उपर्युक्त समय निर्भ्रान्ति और विद्वन्मान्य है। बापा को विप्र मानना भी ठीक नहीं है, वह तो विशुद्ध गुहिलवशीय क्षत्रीय पुत्र था। इनका पुत्र था खुमाण प्रथम। आचार्य मुनि सुन्दरसूरि आदि अनेक आचार्यो द्वारा परिगुम्फित तपागच्छ की पट्टावलियों मे जिन समुद्रसूरि का उल्लेख है (जिनने नागहृद[1] तीर्थ श्वेताम्बर बनाया था)। वह इसी खुमाणकुल के कल्प्य है (यह प्रश्न भी कम विवादास्पद नहीं, पर यहां उसका विवेचन अनभीष्ठ है)। परन्तु बड़े ही परिताप के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि मुनि कल्याणविजय जैसे प्रौढ़ इतिहासज्ञ ने बिना किसी आधार पर इस बापा के पुत्र खुमाण को ही बापा रावल मान लिया है[2]।

बापा रावल, समुद्रसूरि और समदर्शी हरिभद्रसूरि लगभग सम-सामयिक हैं, परन्तु उनका विशद् विवेचन यहां अपेक्षित नहीं है। तदर्थ लेखक का एकलिंगजी इतिहास द्रष्टव्य है।

---

१. दशमी शताब्दी मे यह जैन सस्कृति का महान् केन्द्र था। आज भी जैन शिल्प और स्थापत्य कला की दृष्टि से इसका महत्व कम नहीं है। शताधिक जैन प्रतिमाए चातुर्मास में या कार्यवश खनन पर निकलती ही रही है। इन पंक्तियो के लेखक ने इस पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही प्रस्तुत किया है।

२. 'मेवाड़ के राणाओं मे खोमाण नामक तीन राणे हुए है। बापा रावल नामक मेवाड़ के राणाओं में प्रथम था जो खोमाण कहलाता था।'
—पट्टावली परागसंग्रह, पृष्ठ १४६।

मुनि जिनविजय ५४० १७३२[1] विजयगच्छ विनयसागरसूरि

प्राप्त उपर्युक्त लेखो से कहा जा सकता है कि सोलहवी शती मे सीसोदिये ओसवाल प्रकाश मे आये। स० १६८३ मे सेठ शान्तिदास ने विशाल प्रतिष्ठोत्सव आयोजित किया था, इसमे प्रतिष्ठित प्रतिमालेखो मे इनके सीसोदिया वश का कोई उल्लेख नही है[2]।

इस सग्रह मे इसी दिन का एक और प्रतिष्ठालेख शान्तिसागरसूरि का प्रकाशित हो रहा है। स १८९३ वर्षे माघ शुक्ला दशमी अहमदाबाद नगरे ओसवाल वृद्धशाखीय निहालचन्द्र, खुशालचन्द्र, केसरीसिंह तत्पुत्र हठीसिंह ने स्वभद्रार्थ अजितनाथ विम्व भरवाया और आचार्य शान्तिसागरसूरि से प्रतिष्ठित करवाया।

यह हठीसिंह अहमदाबाद के अग्रगण्य व्यक्तियो मे थे। बाल्यावस्था से ही इनके पिता परलोक प्रस्थित हुए थे। प्रतिष्ठापन का कार्य इनके चचेरे भाई मोहकम भाई देखते थे। आचार्य जिनमहेन्द्रसूरि के अनुयायी और समस्त जैन सघ के तात्कालिक अग्रणी मोतिशासेठ की इन पर विशेष कृपा थी। कालान्तर मे वे आपस मे गहरे मित्र बन गये, इसीलिए मोतीशा सेठ ने अपने व्यय से निर्मित गिरिराज की टूंक मे इन्हें भी प्रासाद बनवाने की आज्ञा प्रदान की। हठीसिह अहमदाबाद के नगरसेठ हेमाभाई के जमाता थे। केशरियाजी[3] और गिरिराज के सघ निकाल कर सघपति

---

१ यह लेख महाराणा राजसिंह (स० १७००–१७३७) के मन्त्री वीर दयालदास और पुत्र सामलदास से सम्बद्ध है। दयालदास विजयगच्छ के अनुयायी थे। स० १७३२ के दयालशाह के किले के लेख से प्रमाणित है, मुनिजी ने लेख मे प्रतिष्ठापक आचार्य का नाम विजयमागरसूरि दिया है, वह सही नही है, वस्तुत विनयसागरसूरि चाहिए। इनका साहित्यिक वैभव मेरे सग्रहस्थ एक हस्तलिखित गुटके मे सुरक्षित है, जिसे मैं अपने हस्तलिखित ग्रन्थसग्रह के साथ राजस्थान सरकार को भेंट कर चुका हूँ। विजयमागरसूरि नामक कोई आचाय आज तक विजयगच्छ मे नही हुआ।

२ मुनि जिनविजय लेखाक ५४०–४१।

३ जैन सत्यप्रकाश वप १, पृष्ठ २१०–११६।

पद प्राप्त किया था। जैन लक्ष्मीनन्दनों ने चित्र और शिलपकला को सदा से प्रोत्साहित कर सांस्कृतिक तत्वों की रक्षा की है। इनने अहमदाबाद में दिल्ली द्वार के बाह्य भाग में बावन जिनालय बनवाने हेतु सं० १६०१, माह मास में खातमुहूर्त्त किया था। श्रावण कृष्णा पंचमी को इनका देहावसान हो गया। इनकी तृतीय पत्नी हरकोरबाई ने पति मनोरथ पर्याप्त द्रव्य राशि व्यय कर पूर्ण किया, सं० १६०३ माघ कृष्णा पंचमी को विधिवत् अंजनशलाका हुई और माघ कृष्णा एकादशी को धर्मनाथ भगवान् की प्रतिमा मूलनायक रूप में प्रतिष्ठित हुई।

हठीभाई को कोई पुत्र नहीं था, परन्तु भारतीय शिल्प-स्थापत्य और कला का अन्यतम प्रतीक प्रसाद उनकी स्मृति शताब्दियों तक सँजोए रखेगा। अहमदाबाद के प्रेक्षणीय स्थानों मे इसकी परिगणना की जाती है। सुविख्यात कला समीक्षक फर्गुसन इस पर मुग्ध था, उसने लिखा है कि—

> "हिन्दू कालिक जैन स्थापत्य चरम सीमा पर पहुंचा था, और मुसलमान कालिक कतिपय मिश्रण से यह अधिक विशुद्ध हुआ। मन्दिर-प्रासाद की रचना (अपने आप में) सम्पूर्ण है[1]।"

डॉ० बर्जेस ने फर्गुसन के संकेतानुसार सूचित किया है कि—सम्पूर्ण मन्दिर का गठन अनुपमेय है सौन्दर्य सम्पन्न और (प्रासाद के प्रत्येक अंग) एक-दूसरे के साथ किस प्रकार सुसंगत प्रतीत होते है, यह समझा जा सकता है।[2]

कलासमीक्षक आनन्द कुमारस्वामी ने इसे नागरशैली का बताया है। यह तो स्पष्ट है कि पश्चिम भारत का लगभग सम्पूर्ण शिल्प-स्थापत्य नागरशैली का ही अनुगमक या शुद्ध नागर रहा है। दुर्भाग्य से अभी तक प्रासाद-रचना, उसके प्रकार, शैलियां, प्रान्तीय कलात्मक प्रतीकों

---

१. आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ अहमदाबाद।

२. आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ अहमदाबाद।

का विकास आदि अनेक एतद्विविपक शास्त्रीय परम्परा का अध्ययन नही हो पाया है। नगर के सस्कारशील और कलात्मक रुचिसम्पन्न समाज मे आशा करें कि वे इम प्रासाद के सर्वांगपूर्ण शैल्पिक अगो पर अध्ययन कर सचित्र प्रकाशन करे।

सचित्र श्रीपालरास

सिद्धचक्र के परमाराधक श्रीपालनृपकथानक का जैन साहित्य मे वडा महत्व रहा है। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, कन्नड, राजस्थानी और अपभ्र श भापाओ मे अस्सी से अधिक कृतिया मिलती है। आलोच्य हठीसिंह परमकलोन्नयक थे। इनने जिनविजय (और यशोविजय प्रणीत) कृत श्रीपालरास के महत्व के प्रसगो को अम्बाराम और आशाराम जैसे कुशल चित्रकारो द्वारा स० १८६७ मे मूर्त्तरूप दिलवाया। इसकी मूल प्रति कलकत्ता निवासी वावू सुरपतसिहजी दूगड के सग्रह मे सुरक्षित है। हीरविजयसूरि, विजयमेनसूरि, विजयदेवसूरि और विजयप्रभसूरि आदि के अतिरिक्त रास प्रणेता विनयविजय तथा यशोविजय के चित्र चित्रित है[1]।

सागरगच्छीय आचाय शान्तिसागरसूरि के अन्य प्रतिमालेख इन सग्रहो मे द्रष्टव्य है—

मुनि जिनविजय—इसी तिथि के प्रभूत लेख हैं, 'जैन सत्यप्रकाश' वर्ष ६ पृष्ठ ४०३–१८६३।[2]

(१३१) शान्तिसूरि—(लेखाक ४७) पडेरगच्छीय

स० १४४४ मे प्रतिष्ठित आदिनाथ विम्व के प्रतिष्ठापक आचार्य थे पडेरगच्छीय शान्तिसूरि। इस गच्छ के कम ऐसे लेख उपलब्ध है जिनमे पूर्व-पट्टाधीश का नाम अकित हो। यह लेख भी उसका अपवाद

---

१ जैन सत्य प्रकाश।

२ यह प्रतिमालेख नगरसेठ हेमाभाई के पुत्र खेमाभाई का है, (लेखाक १५६३)।

नहीं है। तात्कालिक अन्य एतद्गच्छीय लेखों से प्रमाणित है कि यह आचार्य ईश्वरसूरि के पट्टधर सालिसूरि के पट्टगौरव थे। ईश्वरसूरि के लेख सं० १४१४–२२–२५ तक के प्राप्त है[1]। सालिसूरि का आचार्य पद-प्राप्तिकाल अज्ञात है, परन्तु सं० १४२२ से पदासीन हो चुके थे[2]। इनका विद्यमानता ज्ञान सं० १४३७ तक होता है[3]। सालिसूरि और शालिभद्रसूरि दो भिन्न नामधारी एक आचार्य थे। संक्षिप्त नाम की परम्परा इस गच्छ में थी, अनेक प्रतिमालेखों में इस कथन का समर्थन होता है।

आलोच्य शान्तिसूरि के वैयक्तिक जीवन को आलोकित करने वाले सूत्र-संदर्भ नहींवत् है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इन्हें शालिसूरि द्वारा सं० १४४४ के पूर्व आचार्य पद प्राप्त हो चुका था। इनका प्रथम प्रतिष्ठालेख इस सग्रह में प्रकट हो रहा है। इनका अस्तित्व-काल प्रतिमालेखों के आधार पर सं० १४४४–८६ तक माना जाना चाहिए। इनके पट्टधर सं० १४८५ में यशोभद्रसूरि स्थापित हुए[4]। अनन्तर एक वर्ष और विद्यमान रहे[5]। इनके बाद सं० १४९४[6] से लगभग १५१२ या इससे भी कुछ आगे के जो प्रतिमालेख उपलब्ध है वे यशोभद्रसूरि के पट्टधर शान्तिसूरि के है जो सं० १४९४ में यशोभद्रसूरि के पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए। यही शान्तिसूरि सं० १५१२ वाले शालिसूरि के पूर्व-पट्टाधीश थे। यशोभद्रसूरि के समय में एक और शालिभद्रसूरि का प्रतिमालेख सं० १४९६ का मिला है[7]। यह किसके पट्टधर थे ? प्रश्न है।

पूर्व संकेतित है कि जिस गच्छ की गुर्वावली लिखित रूप में अनुपलब्ध हो तो उस गच्छ के सूरियों का पट्टक्रम प्राप्त प्रतिमालेख और प्रशस्तियाओं के आधार पर व्यवस्थित किया जा सकता है। किन्तु यह सिद्धान्त पडेरगच्छ पर चरितार्थ नहीं हो सकता। कारण कि इस गच्छ

---

१. नाहटा (लेखांक ४३७–१५७४) और नाहर १४८८ संग्रह दृष्टव्य है

२-३. नाहटा लेखांक १५७४, ५०३।

४-६ विनयसागर लेखांक २५५, २६३, ३०३।

७. नाहर लेखांक १९३३।

के आदि अविर्भावक यशोभद्रसूरि, निपुण वादी शालिसूरि, समतिसूरि, शान्तिसूरि और ईश्वरसूरि ख्यातनामा प्रारम्भिक आचार्य हुए हैं और आगे भी षडेरीय आचार्यो ने पूर्व पुरुषो की स्मृति बनाये रखने हेतु यही पाठ्यक्रम स्वीकार किया था। अर्थात् लगभग प्रत्येक पाट पर स्वल्प कालान्तर मे ये ही आचार्य आते रहे हैं। कभी-कभी तो इनमे इतना कालसाम्य पाया जाता है और शीघ्र ही पट्ट परिवर्तन हो जाता है कि यदि किसी लेख मे पूर्व पट्टाधीश सकेतित न हो तो प्रतिमालेख, ग्रन्थ या प्रशस्ति का सम्बन्ध किस समान नामधारी आचार्य से स्थापित किया जाय ? काल निर्धारण मे एक कठिनाई यह भी बाधक रहती है कि इस गच्छ के बहुत ही कम ऐसे प्रतिमालेख उपलब्ध हैं जिनमे कुछेक को छोड कर, पूर्व पट्टाधीश का नाम अकित हो। जबकि इसके विपरीत अन्य गच्छीय आचार्यो की किसी-किसी लेख मे तो परम्परा ही मिल जाती है।

उदाहरणार्थ शान्तिसूरि को ही लिया जा सकता है, इनके स० १४८५ के लेख मे यशोदेवसूरि-पट्ट-स्थापन विषयक सकेत न मिलता तो स० १४६४ मे १०१३ तक के समस्त लेख विवक्षित १४४४ वाले शान्तिसूरि के ही मानने को विवश होना पडता। इसके बाद कुछ लेख शालि-सालि या शालिभद्रसूरि और स्वल्प समयान्तर मे ईश्वरसूरि के आते है। जब तक प्रत्येक आचार्य का व्यवस्थित अस्तित्वकाल हमारे समक्ष न हो तब तक भ्रमित होने की स्थिति बनी रहती है। प्रत्युत स्पष्ट कहा जाय तो बनी भी है। कारण कि स्व० मोहनलालभाई देसाई, स्व० चिमनलाल डाह्याभाई दलाल, भोगीलाल साडेसरा और प्र० लालचन्द्रभाई भगवान्दास गाधी जैसे मूर्द्धन्य शोधक तक भ्रम से वचित न रह सके। इनके भ्रमित होने का एक कारण अपेक्षित ऐतिहासिक साधनो का अभाव भी हो सकता है। क्योकि सन् १६४४ के अनन्तर अनेक नव्य-भव्य ऐतिह्य सदर्भ प्रकाश मे आये हैं जिनसे पूर्व सीमित साधनो के आधार पर स्थापित मान्यताओ मे परिवर्तन अनिवार्य हो गया है।

सन् १६२६ मे मोहनलालभाई देसाई को शान्तिसूरि प्रणीत सागरदत्तरास प्राप्त हुआ। अपनी सकलित जैन गुर्जर कविओ नामक कृति

में रास का उद्धरण देते हुए प्रणयन काल सं० १५५० के आसपास माना था[1]। एक सौ तैंतीस पद्यों के इस रास पर सुप्रसिद्ध विद्वान् चिमनलाल दलाल मुग्ध थे। इन्हीं रासकार के शिष्य ईश्वरसूरि रचित ललितांगचरित्र-रास भी प्रशंसनीय समझा गया। सागरदत्तरासकार को देसाई सं० १६५७ तक खींचकर ले गये, और अवश्य विद्यमान जैसे निश्चयात्मक शब्दों का प्रयोग करना पड़ा। और १६४० में श्री भोगीलाल सांडेसरा को सं० १५८८ का शान्तिसूरि का लेख उपलब्ध हुआ[3]। इसके और सं० १५६४ के लेख के आधार पर रास का समय निर्णय सोलहवीं शती का अन्तिम चरण स्थिर किया। सन् १६४४ में देसाई द्वारा शोधित नव्य (?) तथ्यों का संकलन जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ३१८ पर प्रस्तुत किया है। वहां बताया है कि सागरदत्तरास के प्रणेता ईश्वरसूरि के शिष्य न होकर आमदेवसूरि के शिष्य है। एक प्रश्न और खड़ा होता है कि इस नाम का कोई आचार्य कभी इस गच्छ में हुआ है या क्या? रास में गच्छ का संकेत नही है।

जब आमदेवसूरि-शिष्य शान्तिसूरि की रचना सागरदत्तरास अंत:साक्ष्य के आधार पर स्वीकृत है फिर इस पर शान्तिसूरि और ईश्वर-सूरि के लेखों के आधार पर नवीन टिप्पण देने की आवश्यकता क्या थी? बल्कि दुरूह कल्पना का यहां तक सहारा लेना पड़ा कि अन्तः साक्ष्य तक को झुठलाना पड़ा।

पं० श्रीलालचन्दभाई की टिप्पणी से तो यही प्रतीत होता है कि वे रास को शान्तिसूरि रचित मानते है। सं० १५१७-१६ के लेख मिल जाने से इस काल की कृति घोषित करते है। साथ ही वे अन्तः साक्ष्य से असंदिग्धरूपेण सिद्ध सत्य को भी चुनौती देते सुए सूचित करते है कि शान्तिसूरि शिष्य ईश्वरसूरि की रचना ललितांगनरेश्वर-चरित्र भी इसी काल की रचना है। पण्डित जी यहीं तक नही रुके। सं० १५०६-८ के

१-२. जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ ९१।

३. फार्बस् त्रैमासिक. वर्ष ४ अंक ४ पृष्ठ ४५१।

४. मुनि जिनविजय भाग २ लेखांक ३३६।

प्रतिमालेखो का सम्बन्ध भी रासकार शान्तिसूरि से स्थापित किया और इसे १५५२ तक ले गये[1]।

मेरी विनम्र सम्मति मे उपर्युक्त भ्रान्त धारणा और तदाश्रित कल्पनाओ का एक मात्र कारण यही प्रतीत होता है कि विज्ञो ने पड़ेरगच्छीय अनेक शान्तिसूरि और ईश्वरसूरि के अस्तित्व कालो पर गम्भीरता से विचार ही नही किया है। यदि समाननामा भिन्न-भिन्न सूरियो के समय पर अनुसन्धान करते तो इस प्रकार की स्थिति का सामना न करना पडता। समान नाम और काल के कारण यह भ्रान्त धारणा उत्पन्न हुई। जहा तक मैं समझ सका हूँ, इसका मुख्य कारण स० १५१७–१९ के दो लेख है जिनमे शान्तिसूरि शिष्य ईश्वरसूरि का उल्लेख है। किसी रचनाकार का अस्तित्व समय सिद्ध करने के लिए केवल यही सिद्धान्त सर्वत्र अपनाया जाना उचित नही है। यदि पडेरीय आचार्यो पर चरितार्थ किया जाय तब तो भारी अनवस्था फैलने की सम्भावना है। इस गच्छ मे तो शान्तिसूरि और ईश्वरसूरि एक-दूसरे के पट्ट पर इतने हुए है कि ठीक-ठीक अनुमान नही लगाया जा सकता।

वस्तुस्थिति यह है कि स० १५०३–६–८ वाले शान्तिसूरि यशोभद्र-सूरि के पट्टधर थे और स० १४६४ से पूर्व आचार्य पद प्राप्त कर चुके थे, (विनयसागर लेखाक ३०३)। इनके लेख स० १५१२ के बाद तक भी मिलते है। इसी सवत् मे इनके पट्ट पर शालिसूरि अधिष्ठित हुए (विद्याविजय लेखाक २७८, इनके और भी अनेक लेख प्राप्त हैं)। अत स० १५१७–१९ लेख सबद्ध शान्तिसूरि को स० १५५२ तक ले जाने मे तनिक भी औचित्य नही है। इस बीच और भी इस नाम के सूरि हुए है। यशोभद्रसूरि के पट्टाधीश शान्तिसूरि कब तक आचार्य पद पर बने रहे? यह जानने का निश्चित प्रमाण नही है। परन्तु इनके पट्टधर स० १५१२ मे सालिसूरि और १५१३ मे ईश्वरसूरि प्रतिष्ठित हो चुके थे (विनयसागर लेखाक ४२४ और मुनि विशाल-विजय लेखाक २५१)। इसी ईश्वरसूरि के लेख १५१७–१९ के प्राप्त है (बुद्धिसागर-

---

१ जैन गुजर कविओ भाग ३ पृष्ठ ५१९।

सूरि लेखांक ५०–५४०)। इनके पट्टाधीश पुनः शान्तिसूरि हुए (विनयसागर लेखांक ६००)। इस समय यशोभद्रसन्तानीय सालिसूरि विद्यमान थे (बुद्धिसागरसूरि भाग २ लेखांक १०६२)। अतः मेरी विनम्र सम्मत्यनुसार तो सागरदत्तरास के प्रणेता का इन लेखों से कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। जब तक इसकी कोई पुरातन प्रतिलिपित पुरातन प्रति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक कर्त्ता के सम्बन्ध में कल्पनाश्रित तथ्य ही निकाले जा सकते हैं। इसकी प्राप्त प्रति सं० १५६१ की उपलब्ध है (जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ १०६)।

इसके अतिरिक्त १५६४ की एक और कृति श्रीपाल चौपाई-सिद्धचक्र चौपाई प्राप्त है। अन्त्य प्रशस्ति में गच्छ के प्रारम्भिक यशोभद्रसूरि-शालिसूरि-सुमतिसूरि-शान्तिसूरि और ईश्वरसूरि आचार्यों का स्मरण कर सम्प्रति-तात्कालिक-सालिसूरि का शिष्य ईश्वरसूरि बताया है। यह थे तो शान्तिसूरि के पट्टधर, जैसा कि स्वयं स्वीकार करते है, परन्तु वरिष्ठ आचार्य सालिसूरि होने से उनका नामोल्लेख भी रचनामें कर दिया है (जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ५३३–४)। यह शान्तिसूरि पं. लालचंद भाई द्वारा संकेतित से भिन्न है।

ईश्वरसूरि अपनी रचनाओं के कारण तात्कालिक समाज में कवि के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। इस कथन के समर्थन में प्रतिष्ठा और पर्यटक लेख समुपलब्ध हैं[1]।

अब प्रश्न रह जाता है ललितांगनरेश्वरचरित्र प्रणेता ईश्वरसूरि का। पं० लालचन्दभाई का यह मन्तव्य कि इसकी रचना सं० १५१७–१९ के आसपास की है, तथ्य हीन है। अपने समर्थन में जो लेख संकेतित हैं वे कल्पनाप्रसूत है। वस्तुतः सूचित चरित्र के निर्माता थे तो शान्तिसूरि के शिष्य, पर यह शान्तिसूरि उनसे भिन्न आचार्य थे। जब कृतिकार स्वयं

---

१. "सं० १५६७ वर्षे पंडेरगच्छे श्रीईश्वरसूरिकवीना सपरिकराणांयात्रा सफला श्रीअर्बुदतीर्थेपु"

—मुनि जयन्तविजय (अर्बुद० ले०) लेखांक ५९,

नाहर संग्रह के सं० १५८१ लेख में भी कवि कहा गया है, लेखांक १४१६।

रचनाओ मे काल सूचित कर रहा है तो फिर कल्पना को अवकाश ही कहा रहता है ? कवि ने प्रणयनकाल स० १५६१ दिया है (जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ १०६)।

स० १५६७ की नाडलाई प्रशस्ति के लेखक यही ईश्वरसूरि थे। मेवाड[के शासक सीसोदियो के साथ षडेरगच्छ का सम्बन्ध परिज्ञापनाथ नरेशो की वशावली देते हुए सूचित किया है—

(३६) श्रीकुभकर्णपुत्र राणा श्रीरायमल्ल
(३७) विजयमानप्राज्येराज्ये/तत्पुत्र म
(३८) हाराजकुमार श्रीपृथ्वीराजानुशासनात्
(३९) त्

लेख की ऐतिहासिकता सदिग्ध है। कारण कि लेख स० १५६७ का बताया जाता है और साथ ही महाराणा कुभकर्ण के पुत्र रायमल्ल और राजकुमार पृथ्वीसिंह का उल्लेख है। स्पष्ट विरोधाभास है, महाराणा रायमल्ल का देहावसान स० १५६६ ज्येष्ठ शुक्ला पचमी को हो चुका था[1]। पृथ्वीराज महाराणा रायमल्ल के पुत्र अवश्य थे, परन्तु यह तो सीरोही के राव जगमाल द्वारा प्रदत्त विष की गोलियों से मारे जा चुके थे। और इसके बाद ही स० १५६६ ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी को महाराणा सग्रामसिंह-सागा मेवाड-सिंहासन के स्वामी हुए। स० १५८४ मे इनकी मृत्यु के अनन्तर उसी सवत् मे रत्नसिंह, बाद मे छोटा भाई विक्रमादित्य (स० १५८८), कुछ काल के बाद रणवीर और उसके बाद स० १५९४ मे महाराणा प्रताप के पिता उदयसिंह (द्वितीय) महाराणा हुए। अत ईश्वरसूरि के नाडलाईवाले लेख को उदयसिंह कालिक ही माना जा सकता है। इस बात पर भारी आश्चर्य है कि मुनि जिनविजय जैसे व्यक्तियो का ध्यान इस लेख के सदिग्ध सवत् पर क्यो नही गया ? क्योकि मुनिजी ने लेख का सम्पादन किया है।

---

१ राजपूताने का इतिहास पृष्ठ ७१५।

हम अपने इतिहास के प्रति कितने जागृत हैं इसका एक उदाहरण देने का लोभ संवरण नही कर सकता। सुप्रसिद्ध विद्वान् हीरालाल रसिकदास कापड़िया (सूरत) मुनिजो द्वारा सम्पादित उपर्युक्त लेख के आधार पर सूचित करते हैं कि—

"सं० १५६७ के लेख की सूचनानुसार षंडेरगच्छ में दो शान्तिसूरि हुए हैं और दोनों के गुरु का नाम सुमति है। इनमें से एक वि० सं० १५६७ में हुए दूसरे उनसे कितनी पीढ़ी पूर्व में हुए[1]।"

इस पर मै अपनी ओर से कुछ अधिक निवेदन न कर केवल इतना ही कहना चाहूँगा कि इतनी पीढ़ी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। सं० १५६७ के जिस लेख को कापड़ियाजी ने उद्धृत किया है उसी, अर्थात् सोलहवीं शताब्दी में ही, चार शान्तिसूरि षंडेरगच्छ मे हो चुके हैं और सभी के प्रतिमालेख प्राप्त है। तात्पर्य कि पल्लवग्राही शोधवृत्ति से हमारा अन्वेषण तलस्पर्शी अनुसन्धान से वंचित हुआ जा रहा है।

आलोच्य शान्तिसूरि के अन्य लेख इस प्रकार है—नाहर भाग १, १४५०–७२–८३–८६, विनयसागर १४८०–८५–८६, नाहटा १४७२–७५–७६–८३, यतीन्द्रविजय १४८३।

(१३२) शान्तिसूरि : (लेखांक ११८) नाणावालगच्छीय

सं० १५०८ का प्रतिष्ठालेख नाणावालगच्छीय शान्तिसूरि से संबद्ध है। इनके अन्यत्र प्रकाशित सं० १५१० के लेख से (विनयसागर–संग्रह लेखांक ४६७) स्पष्ट है कि यह महेन्द्रसूरि[2] के पट्टधीश थे। शान्तिसूरि के वैयक्तिक जीवन विषयक कोई उल्लेख उपलब्ध नही है। प्रतिष्ठालेख सं० १४७३–१५१३ तक मिलते है। यहां स्पष्टता वांछनीय है कि इस अवधि मे और कोई महेन्द्रसूरि का पट्टधर नही हुआ, अतः सूचित सभी

---

१. जैन सत्यप्रकाश वर्ष १५ पृष्ठ ११३–१६।

२. महेन्द्रसूरि के प्रतिष्ठालेख स० १४३६ (नाहटा–लेखांक ५२१), सं० १४४० (अर्बुदा० जैनलेख-संदोह लेखांक ५९८), सं० १४५९–१४६४–६५–६९ नाहटा संग्रह लेखाक ५९४–६०९–६१६–६४७) प्राप्त हुए हैं।

लेख इसी शान्तिसूरि के माने जाने चाहिए। यह स्पष्टता इसलिए आवश्यक जान पड़ी कि इस गच्छ में स्वल्प समयान्तर में शान्तिसूरि और महेन्द्रसूरि नामक आचार्यों की पुनरावृत्ति इससे पूर्व और परवर्तीकाल में होती रही है। इस बीच यदि किसी के पट्टधर होने की सूचना लेख में न मिले तो एक ही आचार्य का अस्तित्व दीर्घकाल तक विवश होकर मानना पड सकता है। विवक्षित शान्तिसूरि के पट्टधर सिद्धसेन सूरि थे।[1] इस नाम की पुनरावृत्ति भी हुई है (प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ ६३)।

इनके स० १५०८ लेख के अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठालेख इन सग्रहो मे द्रष्टव्य है — मुनि जयन्तविजय (अर्बुदा० लेख स०) १५०१–६, मुनि विशालविजय १४७४, विनयसागर १४६४–१५०१–१०–१३, मुनि विद्याविजय १८६६–१५१३, मुनि जिनविजय भाग २, १५०५, बुद्धिसागर भाग १, १५१०, नाहटा–१४७३–८७–८६–६२–६४–६७–१५०४।

सूचित कालावधि मे केवल शान्तिसूरि नाम वाले प्रतिष्ठालेख पर्याप्त मिलते हैं, परन्तु उन्हे इसलिए सम्मिलित करना उचित नही समझा कि इस नाम के इसी समय मे पडेर, पिप्पलादिगच्छो मे भी आचार्य हुए हैं।

भ्रान्ति और परिमार्जन :

प्रसगत सुधीसमाज का ध्यान एक भ्रमित तथ्य की ओर आकृष्ट करना चाहूंगा और वह इसलिए कि शोधक का तनिक प्रमाद या असगत अर्थानुसन्धान भावी अनुसन्धाताओ के लिए कैसी गलत परम्परा की सृष्टि कर सकता है। जैन समाज के विद्याव्यासगी प्रो० हीरालाल रसिकदास कापडिया ने एक शोधपूर्ण निबन्ध मे स० १५६५ की नाणावालगच्छीय शिलोत्कीर्ण प्रशस्ति के आधार पर तत्सम्बद्ध शान्तिसूरि के गुरु का नाम कल्याण विजय बताने का भ्रामक प्रयत्न करते हुए सूचित किया है —

---

१ विनय सागर–सग्रह मे स १५१३ (लेखाक ५१९) तथा नाहटा–१५११ (लेखाक ९४६) के लेख प्राप्त हैं।

"इसमें (सं० १२६५ के लेख में शान्तिसूरि के) गुरु का नाम कल्याणविजय बताया है, साथ ही उसके गच्छ को नाणकीय कहा है[1]।"

श्री कापड़िया जी के गलत अर्थ का अनुमान पाठक मूल पाठ से लगा सकते हैं—

"सं० १२६५ वर्षे फाल्गुन वदि ७ गुरौ प्रौढ़प्रताप श्रीमद्धांधलदेवकल्याणविजयराज्ये बधिलदे चैत्ये[2]।"

उद्धृतांश में कल्याणविजय का नाम ही कहां है? वहां कल्याणविजय व्यक्तिवाचक न होकर मंगल-कल्याण सूचक है। प्राचीन सभी सम्प्रदायों के शिलालेखों में ऐसी वाक्यावली दृष्टिगोचर होती है। एक बात और भी माननीय है और वह यह कि अनुसंधाता यह भी भली प्रकार जानता है कि किस शताब्दि में किस ढंग के नाम प्रचलित थे?

(१३३) शान्तिसूरि : (लेखांक २८७) षंडेरगच्छीय

इनके विषय में अधिक कहने योग्य साधन अनुपलब्ध है। मुनि पुण्यविजय संकलित प्रशस्त्यादिसंग्रह, पृष्ठ ६३ पर षंडिलगच्छीय शान्ति सूरि प्रणीत भक्तामरस्तोत्र की दीपिका टीका का उल्लेख किया है। परन्तु इस गच्छ में तो इस नाम के इतने अधिक आचार्य हुए हैं कि जब तक कोई पुरातन प्रति उपलब्ध न हो या रचना काल वाली कोई प्रति प्राप्त न हो तब तक दीपिका का संबंध किसी भी शान्तिसूरि के साथ कैसे स्थापित किया जा सकता हैं?

(२३४) शीलरत्नसूरि—(लेखांक ७४–१०७) आगमगच्छीय

साक्षररत्न मोहनलालभाई देसाई ने नवप्राप्त प्रतिमालेखों के आधार पर संकलित आगमगच्छ-पट्टावली में प्रस्तुत शीलरत्नसूरि के उत्तराधि-

---

१. जैन सत्यप्रकाश वर्ष १५ पृष्ठ ११३।

२. मुनि जिनविजय–संग्रह लेखांक ४०३।

कारी आणदप्रभसूरि का तो नामोल्लेख किया है[1], परन्तु इनका कोई सकेत नही दिया है। सम्भव है देसाई को शीलरत्नसूरि का कोई लेख प्राप्त न हुआ हो। आगमगच्छ-आचार्य नामावली मे इनका उल्लेख पाया' गया हे, और इनका अस्तित्व समय श्रीनाहटा जी ने स० १५०७ माना है, (जैन सत्यप्रकाण वर्ष ६ पृष्ठ ११)। परन्तु नवप्राप्त प्रतिमालेखो के आधार पर अव अस्तित्वकाल स० १४६१–१५१२ तक माना जाना चाहिए। सम्भव हे श्री नाहटा का ध्यान स० १४६१ के लेख पर न गया हो। इस लेख मे भले ही गच्छ का उल्लेख नही है परन्तु मुनिसिहसूरि का सकेत है, जो इनके पूर्ववर्त्ती आचार्य थे, (विद्या-विजय-सग्रह लेखाक १५०)। आगमगच्छीय सस्कृत आचार्यावली मे मुनिसिहसूरि के अनन्तर और आणदप्रभसूरि के पूर्व शीलरत्नसूरि का उल्लेख हु[3]। स० १४६० के लेख से इसे और भी पुष्ट समर्थन मिल जाता हे। अत नि सकोच कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शीलरत्नसूरि मुनिसिह-सूरि के पट्टधर थे। इमके समर्थन मे नाहर सग्रह का (लेखाक १४२२) स० १४६६ का लेख भी उपस्थित किया जा सकता है। इनका वैयक्तिक परिचय प्राप्त नही हो सका है। प्रस्तुत सग्रह मे स० १४६३–१५०६ के दो लेख सवप्रथम प्रकाश मे आ रहे हैं और अन्य लेख इन सग्रहो मे प्राप्त हैं—

मुनि कान्तिसागर—१५०९–११, नाहर भाग १, १५०७, बुद्धि-सागरसूरि भाग १, १५०७, मुनि विद्याविजय १४६१—१५१२, इनके सभी लेखो मे प्रतिष्ठा स्थानो का उल्लेख रहता है।

---

१ जैन गुजर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२३२।

२ झोल्या जे उपशम वयण पूरि वादु ते सिरिमुनिसिहसूरि
विधिगछह् मडण रयणसार जस निवसए (सरसई) मुखि अपार
भवियण पणमई जे नित विहाणि सिरिशीयलरयणसूरि गुरुपहाण
—मुनि जिनविजय सम्पादित—विविधगच्छीय पट्टावलीसग्रह, पृ 235

३ विद्याभिश्च जयन्तु सव (सघ) सहिता पत्पादपद्मद्वय
सेवन्ते नितरा स सयमधरै आ (ख्या) ताऽवदाता मता
ते नन्दतु सघसहिता नित्य लसद्दर्शना
मागल्य मम सूरयो वितनुत शीलरत्नभिधा
—पट्टावली समुच्चय भाग २ पृष्ठ १५९

प्रासंगिक रूप में यहां सूचित करना आवश्यक जान पड़ता है कि इस नाम के एक ओर आचार्य भी आगमगच्छ में हुए है जो जयानन्दसूरि-देवरत्नसूरि-शीलराजसूरि-शीलवर्द्धनसूरि के पट्टधर थे। इनके पट्ट पर विवेकरत्नसूरि आये[1]। इनके प्रतिमालेख पर्याप्त परिमाण मे उपलब्ध है। इनने साहित्य सुरक्षा मे महत्वपूर्ण योग दिया था।

---

१. प्रशस्तिसग्रह (अहमदाबाद) पृष्ठ ८०

इस आचार्य ने समग्र सिद्धान्त लिखवाये थे जिनमें से ओघनिर्युक्ति, निशीथ-चूर्णि आदि उपलब्ध भी है। इनकी प्रतिमालेख प्रशस्तियां ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व की है, अन्तिम उल्लेख सभी प्रशस्तियों में इस प्रकार मिलता है —

आगम गच्छे विभूनां सूरिजयानन्दसद्गुरोः क्रमतः
श्रीमद्विवेकरत्नप्रभसूरीणां सदुपदेशात्
शशिमुनितिथि मितवर्षे समग्रसिद्धान्तलेखनपराभ्यान्
ताभ्यां व्यवहा परवतकान्हाभ्यां सुकृतरसिकाभ्याम्

—मुनि पुण्यविजय—पुरातत्व वर्ष १ पृष्ठ ६५

स

(१३५) समुद्रसूरि—(लेखांक ७८)

सं० १४६६ के लेख मे केवल समुद्रसूरि का ही नाम है। मुनि विशालविजय-सग्रह मे (लेखाक ४७४) प्रकाशित खण्डित लेख मे समुद्रसूरि पट्टे गुणदेवसूरिभि उल्लेख है। गच्छ का नाम नही दिया है। इस काल मे पिप्पल, पौर्णमिक और नगेन्द्रगच्छो मे गुणदेवसूरि नाम के आचार्य हुए है। इनमे से समुद्रसूरि के पट्टधर कौन और किस गच्छ के थे ? पुष्ट प्रमाण के अभाव मे निश्चित कैसे कहा जा सकता है ? जैन सत्यप्रकाश वर्ष १२, पृष्ठ १३० पर इसी आचार्य का सं० १५०४ का लेख पढे जाने की सूचना है, वह भी खण्डित ही है। इस लेख से भी निष्कर्ष यही निकलता है कि सकेतित दोनो लेखो के समुद्रसूरि अभिन्न आचार्य हो सकते है, परन्तु गच्छ और गुरु की समस्या तो बनी ही रहती है।

(१३६) साधुरत्नसूरि—(लेखाक १०५) धर्मघोपगच्छीय

पूर्व चर्चित धर्मघोपगच्छीय विजयचन्द्रसूरि (सख्या ११३) के पट्टधर साधुरत्नसूरि (विनयसागर-सग्रह लेखाक ४०६) का सं० १५०५ का लेख प्रकट किया जा रहा है। इनके अन्य लेख विनयसागर–१५०६–६–११–१२–२५–३०, विद्याविजय १५०६–१३–१६, बुद्धिसागरसूरि भाग २, १५१२–१४–१७–१८–२५–३२, नाहर भाग १, १५०५–१७, भाग २, १५१३–२०, मुनि कान्तिसागर १५२८ के सग्रहो मे प्राप्त है। जैन सत्य प्रकाश वर्ष ७ पृष्ठ ३४७ सं० १४५१, बुद्धिसागरसूरि सग्रह मे सं० १५८७ का इनका लेख प्रकाशित है (लेखाक १८१) वह ठीक

नहीं है। इनका प्रतिमालेखा प्राप्तिकाल सं० १५३२ से आगे नही जाता। सं० १५८७ काल तो नन्दीवर्द्धनसूरि का है।

(१३७) साधुरत्नसूरि--(लेखांक १५६–५६, २८२) पूर्णिमापक्षीय

सं० १५१६–१८–४७ लेख सम्वद्ध प्रस्तुत आचार्य पौर्णमिक मुनिशेखरसूरि के पट्टधर थे। (विनयसागर–संग्रह लेखांक १६६) यह पौर्णमिक होने के बावजूद भी प्रतिष्ठापक आचार्य है। यह आपवादिक लेख प्रतीत होता है। सूरिवर वटपद्रीयशाखा के भट्टारक थे[1]। स्व० मोहनलालभाई देसाई ने इस गच्छ की आचार्यावली प्रस्तुत करते समय प्राप्त प्रतिमालेखों के आधार पर उसे सुसंस्कृत रूप देने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। उसमें इन्हे सूचित शाखा में सम्मिलित नही किया है। सम्भव है उन दिनों साधन-सूत्र अप्रकट हो। इनके पट्टधर साधुसुन्दर-सूरि थे। आलोच्य सूरि के शिष्य मलयचन्द्र ने सं० १५१६ में सिंहासन-चउपई, इसी वर्ष में धनदेव चरित्र और देवराज-वत्सराज प्रवन्ध का प्रणयन किया। (जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ४७४)।

इनके अन्य लेख इन संग्रहों में प्राप्त है—वुद्धिसागरसूरि भाग १, १४८६–१५०६–१३, नाहर भाग १, १५१६, मुनि विशालविजय १५०३–१६, मुनि विद्याविजय १४८६–१५०३–१५, मुनि यतीन्द्रविजय १५१०–१५–१६, विनयसागर–१५१०–१६, नाहटा १४८५–१५०२ (? १३)।

---

1. संवत् १५२३ वर्षे····· पूर्णिमापक्षे वटपद्रीय भट्टारक श्रीसाधुरत्नसूरिपट्टे श्रीसाधुसुन्दरसुरिमुप................,

—विनयसागर-संग्रह लेखांक 626

वड़ोदा की इस शाखा का मूल चतुर्थशाखा प्रतीत होती है। क्योंकि भडौच, वोरसद, छापरिया आदि का इसी से सम्वन्ध रहा है। संभव है मुख्य स्थान वड़ोदा हो और अन्य उपस्थान। इस शाखा का आविर्भावकाल अज्ञात के गर्भ मे है, परन्तु सोलहवी शती के प्रतिमालेखों में इसका उल्लेख दृष्टिगोचर होता है, ऐसी क्षेत्रमूलक शाखाएं कालान्तर में गच्छ के नाम से भी विख्यात हुई है।

देसाई ने जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२३७ पर नाहर-सग्रह मे इनके कुछ लेख सुझाये हैं। परन्तु वहा नही मिलते।

मुनि पुण्यविजय–सकलित प्रशस्त्यादिसग्रह मे (पृष्ठ १४६) सूचित है कि स० १४९१ आषाढ सुदि सोमवार को स्तम्भतीर्थनिवासी श्रीमाल-ज्ञातीय सिंधा की पत्नी डेवू तत्सम्भूत पुत्र वेला ने षप्रकरणवृत्ति लिखवा कर मुनिशेखरसूरि के पट्टदीपक साधुरत्नसूरि को समर्पित की। कामदेव ने इसका प्रतिमालेखन किया।

(१३८) साधुसुन्दरसूरि—(लेखाक ७०–१५६) पूर्णिमापक्षीय

सख्या १३७ के आचार्य के पट्टधर इस आचार्य के स० १४८७–१५१८ के लेख प्रकट किये जा रहे है। शेष लेखो के लिए निम्न सग्रह द्रष्टव्य है—

बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५०१–१७–१८–१६–२५–२६–२७–३१, भाग २, १५१७–१६–२१–२५–२७–३०–३१–३२, नाहर भाग १, १५२७–३२, मुनि कान्तिसागर १५१५–१८–२३, मुनि विशालविजय १५२७–२२, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद० प्र०) १५१७–२२, मुनि विद्याविजय १५१६–२७–३०–३२, मुनि यतीन्द्रविजय १५१५, विनयसागर १५२३–२५–२६–२७–२६–३२।

(१३६) सालिभद्रसूरि—(लेखाक २०८) पिप्पलय

यह आचार्य पूर्वोल्लिखित पिप्पलगच्छीय विजयदेवसूरि के पट्टधर थे (विद्याविजय, लेखाक ४१५ और यतीन्द्रविजय, लेखाक १३४)। अतिरिक्त लेख विद्याविजय १५१६–१६–२८, यतीन्द्रविजय १५१५–२७, नाहर भाग २, १५१६, भाग ३, १५१०।

(१४०) सालिसूरि—(लेखाक २१४) षडेरगच्छीय

षडेरगच्छ मे अपने पूज्य पूर्वजो की पवित्र स्मृति बनाये रखने हेतु शान्तिसूरि, सालिसूरि, या शालिभद्रसूरि, ईश्वरसूरि आदि नामो की

पुनरावृत्ति प्रत्येक पट्ट पर हुई है। इस पर यथाप्रसंग विचार प्रस्तुत किये गये है। किसी लेख में शालिभद्रसूरि का सालिसूरि संक्षिप्त नाम भी दृष्टिगोचर होता है (बुद्धिसागरसूरि भाग २, १३४-१६६२)। चर्च्यमान आचार्य ईश्वरसूरि के पट्टधर थे, जैसा कि इनके सं० १५३३ और १५३५ के लेखों से स्पष्ट है (द्रष्टव्य नाहटा लेखांक १०७६ और विनयसागर लेखांक ७८६)।

इनके अन्य लेख विनयसागर १५५६-४०, मुनि विद्याविजय १५३६-४५, नाहर १५३६, नाहटा १५२६-३३-३५-३६, जैन सत्य प्रकाश वर्ष ६ पृष्ठ ३८३, १५२८।

(१४१) सावदेवसूरि—(लेखांक १६१-२२२) कोरंटगच्छीय

सावदेवसूरि कोरंटगच्छीय ककसूरि के पट्टधर थे। इनके सं० १५२७ और १५३६ के लेख उपलब्ध है। इन दो नामों की पुनरावृत्ति होती रही है, परन्तु सावदेवसूरि इस गच्छ के अन्तिम आचार्य है। अन्य संग्रहों में इनके लेख इस प्रकार प्राप्त है—

विद्याविजय १५०७-१७-२३-३४, मुनि विशालविजय १५०९-२१, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद० प्र०) १४९१-१५०८, मुनि कान्तिसागर १५०९-४४, नाहटा १४९५-९६-१५०३-१७-१८-२३-२८, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५११-१३-२१-२५-३१, भाग २, १४९१-९६-१५०६, नाहर भाग १, १४९१-९६-१५०६-८-९-१७-१८-३२, भाग ३, १५३२, जैन सत्य प्रकाश वर्ष ६ पृष्ठ ३७३-१५३६, वर्ष २ पृष्ठ ५०६-१५२८।

(१४२) सिंहदत्तसूरि—(लेखांक १४६-२२३) आगमगच्छीय

यह आचार्य आगमगच्छालंकार साधुरत्नसूरि के पट्टधर थे। इनके व्यक्तिगत जीवन पट्ट को आलोकित करने वाले साधन अनुपलब्ध हैं। मुनिरत्नशिष्य प्रणीत आगमगच्छ पट्टावली में यह अनुल्लिखित हैं। स्व० मोहनलालभाई देसाई संकलित पट्टक्रम में इनका केवल इतना

ही उल्लेख है कि यह स्थूलिभद्ररास के प्रणेता थे और प्रतिमा-लेख मिलते है।

साहित्य समाज और राष्ट्र का प्रतिविम्ब है। व्यक्ति का व्यक्तित्व कृतित्व मे निखरता है। अक्षर देहात्मक उसकी छाया जन-मन का अनुरजन करती है। प्रेरणा द्वारा प्राणवान् पुरुषार्थ की ओर जीवन को गतिमान करती है। आलोच्य आचार्य लोक भाषा साहित्य पर असाधारण अधिकार रखते थे। स्थूलभद्र रास इनकी जीवन साधना की महती सिद्धि है। शताब्दियो के झझावतो के बावजूद आज भी उसमे वही रसधारा वह रही है जिसकी कामना मानव वर्षो से करता आ रहा है। शृगार और वैराग्य रस से समन्वित इस रास का रसास्वादन सवेदनशील व्यक्ति ही कर सकता है। रससिद्ध कवि ने भले ही दृश्यमान जगत् के लिए स्थूलिभद्र का चरित्र चित्रण कर धार्मिक मानस को आनन्द विभोर कर दिया, परन्तु वह तो एक प्रतीकात्मक माध्यम मात्र है। इसके द्वारा मानव समाज को जो चिराचरित सात्विक उपदेश दिया है वह भारतीय नैतिकता की अविस्मरणीय चेतना है। जो हृदय को स्पदित करती है वासना वैभव के प्रति ममत्व को विरत करती है, अनाकाक्षी जीवन-यापन करने का अमर सदेश देती है, अत सौन्दर्य का जागरण कराती हुई मनुष्य को सयम मे वीर्योल्लासार्थ प्रेरित करती है। रास के प्रधान दो पात्रो के माध्यम से कवि ने राग और विराग मे अद्भुत समन्वय स्थापित कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि आध्यात्मिक जीवन ही वास्तविक जीवन है। महाश्रमण स्थूलिभद्र के सम्मुख कोशा का मदोन्मत्त यौवन थिरकता है। वैभव और स्नेह-सने शब्दो से उन्हे विचलित करने के शताधिक प्रयत्न होते है, पर सवेगरससिक्त प्रबुद्ध साधक की ही अतिम विजय होती है। वारागना कोशा का हृदय परिवर्त्तित हो जाता है और वह भी साधना और उपासना द्वारा वीतराग को समर्पित हो जाती है। सौन्दर्य रसानुभूति के माध्यम अनेक हो सकते है, परन्तु उसे प्राप्त करने के लिए सबसे बडी और कडी शर्त है त्याग और वैराग्य की। बिना ऐसा किए सच्चे सौन्दर्य की प्राप्ति असम्भव है।

स्व० मोहनलालभाई देसाई को इस मूल्यवान् रास की स० १५८२ की प्रतिलिपित प्रति प्राप्त हुई थी। उसके आधार पर उनने इसका

प्रणयन काल लगभग तत्समीपवर्त्ती समय माना। जव इनके प्रतिमालेख सं० १५१०–३७ तक के प्राप्त थे, तो अनुमान की अपेक्षा यह स्वतः निर्णीत है कि इसका निर्माण काल सं० १५३७ के वाद का नहीं हो सकता। इनके पट्टधर थे आचार्य सोमदेवसूरि[1] जिनने सं० १५७३ में सम्यक्त्वकौमुदी का प्रणयन किया। इससे तो इनका आचार्यत्वकाल दीर्घ हो जाता है, परन्तु यह भी तथ्य है कि इस बीच इस नाम का कोई आचार्य सूचित गच्छ में नही हुआ। इनके और एक पट्टधर थे शिवकुमारसूरि जिनके प्रतिमालेख प्राप्त है।

स्व० देसाई ने मेरे द्वारा सम्पादित सिंहदत्तसूरि के लेख को आगमगच्छीय मान लिया है। स्पष्टतः उनकी भूल है, (जैन सत्यप्रकाश वर्ष ५ पृष्ठ १६२)। वस्तुतः वह लेख हुंबड़गच्छीय सिंहदत्तसूरि का है। उसमें शीलकुंजर उपाध्याय का उल्लेख है। मुनि विद्याविजय संग्रह (लेखांक ४६६) में इसी हुंवडीय सिंहदत्तसूरि के लेख को आगमगच्छीय माना है। परन्तु प्रतिमालेख में हुवड़गच्छ का स्पष्ट उल्लेख है। नाहर संग्रह में लेखांक ६५ भी इसी आचार्य का है दोनों में ही शीलकुंजर उपाध्याय का नाम है। बुद्धिसागरसूरि संग्रह में सं० १५०६ का एक ऐसा लेख है (भाग दो लेखांक २८२) जिसमें सिंहदत्तसूरि के पूर्व हर्षतिलकसूरि[2] का उल्लेख है।

---

१. इनके लेख मुनि जयन्तविजय (अर्व० प्र० लेखांक ५१०) संग्रह में स. १५२८ तथा मुनि विशालविजय-संग्रह मे (लेखांक २६२) सं १५२८ के मिले हैं। देसाई ने सम्यक्त्वकौमुदीका प्रणयन काल सं १५७३ दिया है। आश्चर्यजनक है, देसाई का अनुसरण ही प्रो. वेलणकरने जिनरत्नकोश मे किया है, पृष्ठ ४२४।

२. सं० १५०८ और १० के दो लेख बुद्धिसागरसूरि–संग्रह मे (लेखांक ३४२–८८८) उपलब्ध है। आगमगच्छीय किसी भी प्रकार की गुर्वावली में इसका नाम नहीं है, परन्तु सिंहदत्तसूरि से पूर्व व्यवहृत नाम के कारण ये उनके पारिवारिक या वरिष्ठ आचार्य होंगे।

प्रसगत एक और सिंहदत्तसूरि का उल्लेख करना आवश्यक जान पडता है। विनयसागर-सग्रह (लेखाक २११) स० १४७६ के लेख मे कुलगुरु के रूप मे सिंहदत्तसूरि का (हुवडीय ?) नाम है और धर्मगुरु के स्थान पर जयशेखरसूरि का। कुलगुरु सम्भवत स्थानीय कोई यत्याचार्य या चैत्यावासी रहे होगे जो धार्मिक और सामाजिक सस्कार सम्पन्न करवाते रहे हो। इस प्रकार द्वैधभावसूचक अन्य लेख भी दृष्टि-गोचर हुए हैं। स० १५६८ के सविना (उदयपुर) के लेख मे नन्दनन्दिनी-सूरि को भावगुरु बताया गया है।

आलोच्य आगमिक सिंहदत्तसूरि के अतिरिक्त लेख इन सग्रहो मे द्रष्टव्य हैं—

मुनि विद्याविजय १५१०, मुनि विशालविजय १५००-११, (इस लेख मे इनके पट्टधर सोमदेवसूरि का नाम है, लेखाक २६२), मुनि जयन्तविजय (अर्बुद० जै०) १५२८, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५००-१२, भाग २, १५०६-८-९-१०-१६-३६, नाहर भाग २ १५३६, विनयसागर १५०६।

(१४३) सिंहसूरि—(लेखाक ५७) नगेन्द्रगच्छीय

इस आचार्य का केवल यही लेख उपलब्ध है। अन्य वृत्त ज्ञात नही है।

(१४४) सिद्धसूरि—(लेखाक १५५-२३७-२३८-२६३) द्विवदनीक

देवगुप्तसूरि के पट्टधीश इस आचार्य का विशेष परिचय तिमि-राच्छन्न है। इनके लेख विद्याविजय, १५१२-१७, नाहर भाग २, १५१२, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १५१४-१६-१७-३१-३३-३७, भाग २, १५२२-२४-३१, आतमानन्द प्रकाश वर्ष ८, पृष्ठ १८६, जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ६, पृष्ठ ३७३, १५१०।

(१४५) सिद्धसूरि—(लेखांक १८५) उपकेशगच्छीय

सं० १५२५ के इस संग्रह में प्रकाशित अभिनव लेख में केवल इतना ही संकेत है कि सिद्धाचार्यसन्तानीय सिद्धसूरि विम्व के प्रतिष्ठापक थे। इनके प्रतिमालेख भी सं० १५२५ से १५४० तक के उपलब्ध है। आचार्य अपने को उपकेशगच्छानुयायी बताते है। सं० १५२७ के लेख से सिद्ध है कि इसी गच्छ के सिद्धसूरि, देवगुप्तसूरि के पट्टधर थे, (विनयसागर-संग्रह लेखांक ६९३)। परन्तु यह आचार्य उनसे निश्चित ही भिन्न है। कारण कि प्रथम सूचित सिद्धसूरि का पदमहोत्सव सं० १५६५ मे सम्पन्न हुआ था (जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२८३) जबकि वाञ्छित सिद्धसूरि का आचायत्व काल प्राप्त साधनो के आधार पर सं० १५२७ से प्रारम्भ होता है। प्रश्न है फिर यह लेख नायक आचार्य किस परम्परा के है ? इसका समाधान मुनि कान्तिसागर-सग्रह के सं० १५२८ के लेख से हो जाता है। यह लेख सिद्धाचार्य सन्तानीय इसी सिद्धसूरि का है और वे अपने को खरातपा की संज्ञा से अभिहित करते है। इससे ध्वनित होता है कि उपकेशगच्छ की यह एक शाखा थी। इसका समर्थन असवर्तीय एक पर्यटक लेख से होता है जो अर्वुदाचल प्राचीन जैन लेख सदोह मे प्रकाशित है, (लेखांक ६०)।

खरातपा शाखा की उत्पत्ति त्रिशृंगम ग्राम में महीपाल राजा के समय में सं० १३०८ में हुई थी, यथा—

त्रिशृंगमाख्ये सद्ग्रामें महीपालस्थिते प्रभौ
खरतपविरुदं जातं वस्वभ्राग्न्येक १३०८ वर्षे च

—विविधगच्छीय पट्टावली-सग्रह पृष्ठ ८

सिद्धसूरि के अन्य लेख इन सग्रहों मे प्राप्त है—

मुनि विशालविजय १५२७, विनयसागर १५२७–४०, नाहर भाग १, १५२५, नाहटा १५३२–३४, मुनि कान्तिसागर १५२८।

(१४६) सिद्धसेनसूरि—(लेखाक १०) नाणावालगच्छीय

यह प्रतिमा अत्यन्त मनोहर और पुरातनत्व की प्रतीक है। सामान्य पचतीर्थी की अपेक्षा आकार मे कुछ बडी है। इसके प्रतिष्ठापक आचार्य ने गच्छसूचक कुछ भी सकेत नही दिया और न ही पूर्व-पट्टाचार्य का ही उल्लेख किया है। यो तो इस काल के समीपवर्त्ती कई आचार्य इस नाम को धारण करने वाले हुए हैं, परन्तु प्रथम दृष्टि नाणावालगच्छीय सिद्धसेनसूरि पर ही केन्द्रित होती है। कारण कि इनका लेख स० १७७२ का नाहटा-सग्रह मे (लेखाक ११२) पाया गया है। चन्द्रशाखीय राजगच्छ के समाननामा आचार्य भी स० १७७८ के लगभग हुए हैं। अकाट्य प्रमाण के अभाव मे क्या कहा जा सकता है कि इसके प्रतिष्ठापक किस परम्परा के थे। प्राप्त सकेतित साधन के आधार पर नाणावालगच्छीय होने की सम्भावना मात्र की जा सकती है।

(१४७) सिद्धान्तसागरसूरि—(लेखाक १२१–२४४) अचलगच्छीय

यह स्वनामधन्य जयकेसरसूरि के पट्टधर थे। इनके नव प्राप्त दो लेख १५०९–१५४८ प्रकाशित किये जा रहे हैं। जन्मस्थान पाटन और जन्मकाल था स० १५०६। स० १५१२ मे उक्त सूरिवर के पास दीक्षा अगीकार की। स० १५४१ मे आचार्य पद प्रदान किया। इनका विहारप्रदेश विस्तृत था। बताने की शायद ही आवश्यकता रह जाती है कि यह समय विषम था। जैन समाज मे नव्य मत उदित हो चुके थे। अन्य जैनाचार्य भी चिन्तित थे कि उनका प्रतिकार कैसे किया जाय? मुख्य प्रश्न था कि विरोध का स्तर भी शालीनतापूर्ण होना चाहिए। इनके युग मे लोकाशाह का नव-प्रवर्त्तित मत पश्चिम भारत मे और विशेषकर राजस्थान मे शीघ्र ही समुन्नत हो चला था। कई व्यक्तियो ने सयम मार्ग का अवलम्बन भी ले लिया था। यह स्वाभाविक होता है कि नव्य किसी भी मत के उदय होने पर उसमे सापेक्षत उत्कृष्टता का प्रदर्शन सर्वाधिक होता है। इधर मूर्त्तिपूजक श्रमणो के शैथिल्य का लाभ नवमतवादियो ने खूब उठाया। इसे कही-कही, राजकीय प्रश्रय भी प्राप्त हो चला था। सूचित सूरिवर ने अपने सीमित क्षेत्र से सास्कृतिक क्रान्ति का कार्य प्रारम्भ किया। अपने गच्छ के अन्तर्निरीक्षणान्तर मुनियो को

संयम मार्ग में स्थिर रहने का आदेश दिया। गच्छ की बिखरी हुई शक्ति एकत्र कर शासन सेवा में केन्द्रित की। इनके विद्वान् शिष्य परिवार ने जैन साहित्य प्रतिलिपित कर चिरकोश की अभिवृद्धि की और आचार्य-श्री ने संस्कृत भापा में चतुर्विंशति जिनस्तुति गुम्फित की। स्वर्गवास सं० १५१० पाटन में हुआ। इनके प्रतिमालेख भाई पार्श्व सम्पादित अंचलगच्छीय-लेख-संग्रह मे तथा विस्तृत जीवन नव प्रकाशित और श्रीपार्श्व लिखित अचलगच्छ दिग्दर्शन में प्रदत्त है।

(१४८) सुमतिप्रभसूरि—(लेखांक २५१) पूर्णिमापक्षीय

स्व० मोहनलालभाई देसाई द्वारा प्रतिसंस्कृत पूर्णिमागच्छ गुर्वावली में इनका नाम तो दिया है, पर तत्समर्थक कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया है। मेरी विनम्र सम्मत्यनुसार देसाई सूचित सुमतिप्रभसूरि से यह आचार्य भिन्न ही है। कारण कि देसाई सूचित आचार्य गुणसमुद्रसूरि के पट्टधर थे, और तदनन्तर पुण्यरत्नसूरि आते है। इनका उल्लेख भी उदयसमुद्रकृत गुर्वावली में किया गया है। जवकि आलोच्याचार्य एतत्-गच्छीय लक्ष्मीप्रभसूरि के पट्टधर है, जिनका प्रतिमालेख स० १५४३ का बुद्धिसागरसूरि-संग्रह मे (लेखांक ३३५) प्राप्त है। यह विजयकमलप्रभ के पट्टधर थे। इनके भी लेख नाहर, मुनि विद्याविजय और बुद्धिसागर-सूरि संग्रहों में पाये जाते है, अतः प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित सं० १५६५ लेख वाले पौर्णमिक आचार्य नव्य है और इनके अन्य लेख किसी भी प्रतिमालेख संग्रह में दृष्टिगोचर नहीं हुए।

(१४९) सुमतिसूरि—(लेखांक २४०) षंडेरगच्छीय

स०१५४७ के प्रस्तुत सुमतिसूरि के लेख में पूर्व-पट्टाधीश का नामाभाव है। परन्तु इस गच्छ के पट्टानुक्रम से तो ईश्वरसूरि के पट्टधर होने चाहिए। इस नाम की षंडेरगच्छ में पुनरावृत्ति होती रही है। इनके अन्य लेख विनयसागर १५४९ और नाहर १५४९ सग्रह में मिले है।

(१५०) सुविहितसूरि—(लेखांक ४८—१७०)

वहुत से लेखों में इस नाम का उपयोग हुआ है। वस्तुतः यह संज्ञावाचक शब्द प्रतीत होता है।

(१५१) सोमदेवसूरि—(लेखांक २२३) आगमगच्छीय

आचार्य परिचय-रेखा चर्चित (संख्या १८१) सिंहदत्तसूरि के पट्टधर थे। सं० १५३७ का इनका नवोपलब्ध प्रतिमालेख प्रकाशित है। अतिरिक्त लेखों का उल्लेख सं० १४१ में किया जा चुका है। देसाई महोदय ने इनकी रचना सम्यक्त्वकौमुदी का उल्लेख करते हुए रचना काल सं० १५७३ बताया है वह आश्चर्यजनक है।

(१५२) सोमदेवसूरि—(लेखांक २४१–४३) चैत्रगच्छीय

इस सूरि का सम्बन्ध चैत्रगच्छ की धारणपद्रीय शाखा से रहा है। इनके सं० १५४८ के दो लेख प्रकाशित हैं। अन्य नाहटा–१५३२, विनयसागर १५६१ संग्रहों में प्राप्त हैं। इस लेख धारणपद्रीय को के बदले धारापद्रीय मानने की चेष्टा की गई है, संख्या ९१३।

नागह्रद के पूर्व चर्चित पार्श्वनाथ मन्दिर की दाईं प्रथम देवकुलिका के भारपट्ट पर इस आचार्य का एक शिलालेख उत्कीर्णित है, अद्यावधि यह अप्रकाशित रहा था, इस प्रकार है—

> "प्राग्वट् पीछउली—सा० करणा भार्या चमूं पुत्र सा० हासाकेन भार्या लापू हासण पुत्र सा० चम्प—सा० नीवू पुत्र धनराज/जातश्री प्र० श्री—चैत्रगच्छे श्रीसामदेवसूरिभि ।"

इसी आशय का सूचित पारिवारिक व्यक्तियों का एक और लेख अन्य कुलिका पर अंकित है, पर प्रतिष्ठापक आचार्य का नाम नहीं है।

(१५३) सोमसूरि—(लेख ६५)

यह महापुरुष किस गच्छ के थे? प्रश्नचिह्न है। क्या संक्षिप्त नाम तो नहीं है? लेख का समय सोमसुन्दरसूरि से मेल रखता है। परन्तु सोमसुन्दरसूरि का इस प्रकार का कोई संक्षिप्त नाम किसी लेख में दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

(१५४) सौभाग्यसूरि—(लेखांक ११९) पूर्णिमापक्षीय

सं० १५०८ के लेख में संसूचित है कि आचार्य सौभाग्यतिलक-सूरि पूर्णिमापक्षीय विजयतिलकसूरि के पट्टधर थे। परन्तु इस गच्छ की किसी भी गुर्वावली में इनका उल्लेख नही मिलता, अतः यह इतिहास में अभिरुचि रखने वालों के सम्मुख सर्वप्रथम ही प्रकाश में आ रहे है। लेख लेने के वाद मुझे विनयतिलकसूरि का भ्रम हो गया था अतः पुनः देखने पर विजयतिलकसूरि पाठ ही ठीक जँचा। कारण कि आचार्यनाम पर किसी दुराग्रही ने निर्ममतापूर्वक छैनी से आक्रमण किया है।

(१५५) सौभाग्यरत्नसूरि—(लेखांक २४५–२५९) पूर्णिमापक्षीय

सौभाग्यरत्नसूरि पूर्णिमापक्षीय गुणधीरसूरि के शिष्य थे, जैसा कि इस संग्रह के सं० १५६४ के लेख से सिद्ध है। इसका समर्थन इनके शिप्य उदयधर्म द्वारा सं० १५५४ महेसाणा में प्रणीत हरिश्चन्द्ररास की अन्त्य प्रशस्ति से होता है—

> संव ए पनर चउपन्नि मास आसोपक्षि उजलइ
> छठि्ठइं ए शोमन योगि मूल रवि संयोगि अति मलिइ ए
> जूंनइ ए महिसाणा प्राद्रि सांनिधि श्रीशान्तिनाथनइं ए
> श्रीसंघनइ ए भणिवा काजि वांचवा मुनिजन साधनइ ए
> गणधरु ए पूनिमपक्षि श्रीगुणधीरसूरि पाटधरु
> दिन दिन ए अति उदयवंत श्रीसौभाग्यरत्नसूरि गुरु
> तेह जु ए जड़मति शिष्य पण पांस उदयधर्म गणिवरु ए[1]

इसी कवि ने सं० १५६१ में सीणीजी में अजापुत्ररास तथा सं० १५६३ में वज्रस्वामीरास का प्रणयन किया था[2]।

सौभाग्यरत्नसूरि नामक आचार्य का एक लेख सं० १५४३ का मुनि यतीन्द्रविजय-संग्रह में (लेखांक १२६) प्राप्त है पर उसमें गच्छ संकेतित

---

१. जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ५३३।
२. ,, ,, पृष्ठ १८९–९

नही है, और वे आचार्य भी प्रतिष्ठापक है। प्रस्तुत सौभाग्यरत्नसूरि के शिष्य आगुणमेरु के लेख भी स० १५८८–८९ और १६०४ के मिले हैं। इनके शिष्य रत्नसुन्दर ने साणद मे स० १६२२ मे पचोपाख्यान चउपइ, स० १६३८ स्तम्भतीर्थ मे शुकबहोत्तरी और वही स० १६४१ मे सप्तव्यसन चौ० का प्रणयन किया[1]।

(१५६) सौभाग्यहर्षसूरि—(लेखाक २७९–८०) तपागच्छीय

तपागच्छ की लघुशाखा के प्रस्थापक सौभाग्यहर्षसूरि, हेमविमलसूरि के अन्तेवासी थे। हाटकेश्वरपुर-आनन्दपुर-वृद्धनगर-वडनगर मे स० १५५५ मे इनका जन्म हुआ था। स० १५६३ मे हर्षदानगणि विचरते हुए वडनगर पधारे, हेमविमलसूरि के पास स० १५६३ मे सयम स्वीकार किया, स० १५६३ आश्विन शुक्ला १० को हेमविमलसूरि ने आचार्य पद दिया। इस प्रसग पर भीमसी, देवदत्त, रूपा, कवा और जयवत ने पर्याप्त धनव्यय किया। स० १५६८ मे वृद्धनगरीय अलवर वास्तव्य टकसाली सा० डाहा, भइरवदास, भवानीदास प्रभृति गुर्जर श्रावको ने विशाल सघ निकाला। इसमे सौभाग्यहर्षसूरि भी सम्मिलित थे। गिरनार, शत्रुजय और स्तम्भतीर्थ की यात्रा का लाभ प्राप्त किया। यही स० १५८९ ज्येष्ठ शुक्ला नवमी रविवार को सा० सोमसी, रत्नसी, लखमसी और खीमसी ने ल्हाण वितरण, स्वधर्मीवात्सल्यादि महोत्सव के साथ इनको गच्छनायक पद पर स्थापित किया। इनके मुख्य अन्तेवासी सोमविमल को यही पर स० १५९० कार्तिक कृष्णा पचमी के दिन प्राग्वाट् कीका कारित महोत्सव पर गणि पदालकृत किया। स० १५९४ फाल्गुन कृष्णा पचमी को सिरोही मे गाधी राणा जोधाकृत महोत्सव पर इन्हें पण्डित पद प्राप्त हुआ। अजाहरा मे माता शारदा की सोमविमल ने आराधना कर वर प्राप्त किया। आचार्य क्रमश विचरण करते विद्यापुर/वीजापुर पधारे। यहा स० १५९५ पौपशुक्ला पचमी गुरुपुयोग मे दोसी तेजा भागा द्वारा कृत महोत्सव पर सोमविमल को वाचक पद से अभिषिक्त किया, इसमे अहमदावाद आदि अनेक नगरो के श्रीसघो ने सोत्साह भाग लिया। इसी वर्ष ईडर मे विशाल प्रतिष्ठोत्सव आचार्य सौभाग्यहर्षसूरि के तत्वावधान मे सम्पन्न हुआ। मोडासिया

१ जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृष्ठ १३०–३४, भाग ३ पृष्ठ ४२४।

साह आमराज और पोपट के महदाग्रहवश ईडर पधारे थे। कहा जाता है कि इस प्रसंग पर औदार्य के साथ सभी सम्प्रदाय के लोगों को पर्याप्त दान देकर सन्तुष्ट किया था। सं० १५९५ चैत्रशुक्ला एकादशी का गीतार्थ-नामावली का पत्र प्राप्त हुआ है (मुनि पुण्यविजय-प्रशस्त्यादिसंग्रह, पृष्ठ २४७) इसमें उस समय के शुद्धसंयमी स्थविर और श्रमणियों के नाम अंकित है। परन्तु इसमें प्रयुक्त सवत्, पत्र की वास्तविकता मे सन्देह उत्पन्न कर देता है। इससे जहां तक सौभाग्यहर्षसूरि के नाम का सवाल है, कोई बात नहीं, परन्तु इसकी सच्चाई पर अविश्वास करने का सबसे मुख्य कारण यह है कि इसमें सोमविमलसूरि और सकलहर्षसूरि के नाम हैं। जिन्हे आचार्य पद लेखन के वाद मिला है, अर्थात् स० १५९७ आश्विन शुक्ला पचमी को। इसी प्रकार व्रजस्वामीकृत वर्द्धमानविद्याकल्पोद्धृत इनकी रचना में भी स० १५९६ मे आचार्य होने का सकेत मिलता है (मुनि पुण्यविजय-प्रशस्त्यादिसग्रह, २७२)।

सौभाग्यहर्षसूरि का व्यक्तित्व विशाल और प्रभावशाली था। उनने हेमविमलसूरि की क्रियोद्धृत आगमानुमोदित परम्परा का सम्यक् रीत्या निर्वाह किया और मुनि समुदाय को सदैव शैथिल्य से सावधान करते रहे। सं० १५९७ कार्त्तिक शुक्ला द्वादशी को इस ज्योतिस्तम्भ का प्रकाश धूमिल हुआ।

इनके पट्टधर सोमविमल ने विद्यापुरीय दोसी तेजा आदि ग्रामवासी और तीन सौ मुनि सहित विमलाचल की यात्रा की थी। सं०१५९८ का चातुर्मास पत्तन में व्यतीत किया, यहां अनेक अभिग्रह पूर्ण हुए। लघु-पोसालिक पट्टावलि में दीव, पत्तन धोळका, खम्भात, वणच्छर, अहमदावादगोल, राजपुर, नन्दुरवार आदि अनेक नगरो में गृहीत अभिग्रहों का उल्लेख प्राप्त है। इसमें इन्हें सुगम ग्रन्थकार वताया गया है। इसका तात्पर्य लोकभाषा-साहित्य होना चाहिये। धम्मिलरास (रचना स० १५९१ ?), सं० १६०१ में गौतमपृच्छा स्तबक, स० १६०३ कुमरगिरि-कुंणगेर में श्रेणिकरास, नवकार चौं०, क्षुल्लकरास, कल्पसूत्र स्तवक, वर्द्धमानविद्याकल्प (सं० १५९६ अहमदावाद में कुशलरत्नगणिशिष्य संघ-माणिक्य आराधनार्थ), चंपकश्रेष्ठी रास (इसका प्रणयन काल देसाई ने सं० १६६२ माना है, परन्तु इनका स्वर्गवास ही सं० १६३७ मार्गशीर्ष में हो चुका था. मूल प्रशस्ति में "वरस वाहु नयन रस चन्द रे" इसमें तो

रचना काल १६२२ या ३२ निकलता है, नयन शब्द मे सामान्यत दा या शिवनेत्र-तीन लिये जाते है) ।

सौभाग्यहर्षसूरि के समय मे प्रतिलिपित साहित्य तथा नवनिर्मित ग्रन्थ उपलब्ध है पर उनका उल्लेख स्थानाभाववशात् उपेक्षित रखना पडा ।

इस सग्रह मे स० १५८४–८४ के दो अभिनव लेख प्रकाशित ह अन्य दो लेख विनयसागर स० १५९५ और वुद्धिसागरसूरि १५=४ सग्रह मे प्राप्त हैं ।

ह

(१५७) हर्षसुन्दरसूरि—(लेखांक २५६) रुद्रपल्लीय

इस आचार्य के लेख में पूर्व-पट्टाधीश अनुल्लिखित है, परन्तु अन्य ऐतिहासिक साधन-सूत्र से प्रकट है कि यह हर्षसुन्दरसूरि, देवसुन्दरसूरि-सोमसुन्दरसूरि-गुणसमुद्रसूरि-हर्षदेवसूरि के पट्टधर थे। इनका सं० १५५६ का प्रस्तुत संग्रहस्थ लेख ही प्राप्त है। इस प्रतिमा लेख में माणिचन्द्रसूरि का नाम लिखा है वह सम्भवत: मलयचन्द्र के पट्टधर हों जिनका लेख सं० १५४८ का विनयसागर-संग्रह में (लेखांक ८५३) प्राप्त है। निज दैनन्दिनी से—१५३७।

(१५८) हीरविजयसूरि—(लेखांक २९०–९१–९३–९४–९६–३२४) तपागच्छीय

तपागच्छीय विजयदानसूरि के अट्ठावनवे पट्टधर हीरविजयसूरि सत्रहवीं शती के प्रखर प्रतिभावान्, महान् प्रभावक और विद्वत्तश्रमण-समुदाय के सक्षम अनुशास्ता थे। पद्मसागर प्रणीत जगद् गुरु काव्य (सं० १६४६ मांगरोल), धर्मसागर कृत तपागच्छीय पट्टावली, शान्तिचन्द्र ग्रथित कृपारसकोश, देवविमल रचित हीरसौभाग्य महाकाव्य, स्वोपज्ञ, हेमविजय और गुणविजय निर्मित विजय प्रशस्ति, दयाकुशल कृत लाभोदय रास, कृष्णदास कृत दुर्जनशा-बावनी, विवेकहर्ष का हीरविजयसूरि-लघु रास, स्तम्भतीर्थ के प्रभाववादी भावुक कवि ऋषभदास कृत हीरविजयसूरि रास, भानुचन्द्रचरित्र, सूरिश्वर और सम्राट, ऐतिहासिक जैन काव्यसंचय, ऐतिहासिक सज्झाय और रासमाला आदि मौलिक, संग्रहात्मक एवं

समीक्षकात्मक कृतियें सूरिवर के प्रभाव और सशक्त व्यक्तित्व पर वेधक प्रकाश डालती हैं।

परम तपस्विनी श्राविका चम्पा के माध्यम से आचार्यश्री को सम्राट अकबर तक पहुचने मे सफलता प्राप्त हुई थी। सम्राट के हृदय पर इनका व्यापक प्रभाव था। धर्म और दर्शन जैसे कठिन विषयो पर की गई चर्चा से सम्राट को सतोष हुआ था। इससे प्रसन्न होकर शत्रुंजयादि तीर्थों की सुरक्षा के हेतु राजकीय आज्ञा-पत्र भी प्रदान किये थे और अमारि प्रवर्त्तन भी करवाया था, इनके शिष्य-प्रशिष्य बादशाह की सभा के गौरव थे।

इनका जन्म प्रह्लादनपुर/पालनपुर मे स०१५८३ मे कुरा/कुवरजी की धर्मपत्नी नाथीबाई की रत्नकुक्षि से हुआ था। तेरह वर्ष की आयु मे स्वनगर मे बहिन के वहा पाटन जाते हुए विजयदानसूरि की औपदेशिक वाणी श्रवण कर ससार मे आस्था उठ गई और सयममय कठिन मार्ग स्वीकार करने का दृढ निश्चय किया। पारिवारिको द्वारा अनेक प्रलोभन दिये जाने के बावजूद भी अपने निर्णय से विचलित नही हुए। सयम स्वीकार कर हीरहर्ष बने, विद्याध्ययनानन्तर स० १६०७ मे पण्डित और स० १६०८ मे उपाध्याय पद से अलकृत हुए। आचार्य विजयदानसूरि ने अनुभव किया कि अब हीरहर्ष का प्रभाव श्रीसघ पर पर्याप्त स्थापित हो चुका है और इसलिए स० १६१० मे सीरोही मे आचार्य पद समर्पित किया। आचार्यश्री मृदुस्वभाव और समन्वयवादी प्रवृत्तियो के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गये। इनने पश्चिमीय भारत के विभिन्न स्थानो मे विचरण कर जैन शासन की अभूतपूर्व प्रभावना की। अनेक प्रतिष्ठायें करवाई, सघ निकलवाये और यात्रा द्वारा दर्शन शुद्धि का मार्ग प्रशस्त किया। इनके उपदेश से यो तो कई स्थानो पर मन्दिर बनवाये गये, जीर्णोद्धार हुए, परन्तु यहा शत्रुंजय के मुख्य प्रासाद का समुद्धार ही उल्लेखनीय है। चित्रकूट के कर्मशाह ने आदिदेव के मन्दिर का पुनरुद्धार कर प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। परन्तु कालवशात् जीर्ण-जर्जरित हो जाने से स्तम्भतीर्थ निवासी सोनी तेजपाल ने पुनरुद्धार करवाया और प्रासाद को नन्दिवर्द्धन नाम दिया। इस तथ्य की सूचना देने वाला शिलालेख

आज भी शत्रुंजय के सबसे बड़े लेख के रूप में अत्यन्त उपेक्षित-अरक्षित दशा में विद्यमान है। मूल स्थान से हटाते हुए यह खण्डित भी हो गया, पपड़ियां उतर गईं। ऐसे ऐतिहासिक लेखों के साथ इस प्रकार की उपेक्षा असह्य है। न जाने ऐसे कितने ही लेख जीर्णोद्धार में विनिष्ट हो चुके होंगे, जिनकी कल्पना सेठ आणंदजी कल्याणजी प्रतिष्ठान के ट्रस्टिओं को नहीं हो सकती।

हीरविजय का शिष्य समुदाय बहुत बड़ा और विद्वान् ग्रन्थकार था, इस युग की साहित्यिक प्रवृत्ति पर यदि समीक्षात्मक विचार किया जाय तो एक महानिबन्ध तैयार हो सकता है। अतः विस्तृत सांस्कृतिक चेतना को वर्णमाला अक्षरों में सीमित करने का प्रयास अत्र अपेक्षित ही रखा जा रहा है।

इस संग्रह में आचार्यश्री के १६२२–२४–२८–३०–५१–५१ लेख प्रकाशित है, शेष प्रतिष्ठालेख इन संग्रहों में द्रष्टव्य है—

नाहर भाग १, १६११–२३–२८–३०–३४–३८–४४–४७, भाग २, १६१७–२४–२७–२८–३३–३७–३८–४१–४२–४४–५१, बुद्धिसागरसूरि भाग १, १६२४–२८–३०–३६–३७, भाग २, १६२२–२४–२६–२७–३०–३१–३२–३७–३८–४४, गे० रे०; २०–४२–५०, नाहर भाग ३, १६२६, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प्र०) १६१७–२४–३२, मुनि विशालविजय १६२४–२८–३०–३४, मुनि कान्तिसागर १६२६–२७–४०–४३, विनयसागर १६२०–२२–२४–२८–३०–३३–३८–४०–४२–४८–४७–५१, डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, १६२४, नाहटा १६२४–२६–२७–३४–३६–४१–४४, मुनि जिनविजय भाग २, १६२३–३०–४४–५०।

(१५९) हेमरत्नसूरि—(लेखांक १३६) आगमगच्छीय

प्रस्तुत आचार्य आगमगच्छीय अमरसिंहसूरि के पट्टधर थे। इनकी परवर्त्ती आचार्यावली से ज्ञात होता है कि यह आगमगच्छ की धन्धूका-शाखा से संबद्ध थे। मुनि जिनविजय-सम्पादित विविधगच्छीय पट्टावली-संग्रह में (पृष्ठ २३६) बारह पद्य प्रकाशित है। इसमें इस पक्ष की

पट्टावली है। शीलचन्द्रसूरि-देवभद्रसूरि-धर्मघोषसूरि-यशोभद्रसूरि (इनके पट्ट पर तीन आचार्य हुए—सर्वाणदसूरि-अभयदेवसूरि-वयरसेनसूरि)-जिनचन्द्रसूरि (इनने लोलीग्राणा मे वादियो को परास्त कर बत्तीस बकरे छुडवाये थे)-विनयसिंहसूरि-अभयसिंहसूरि और इनके पट्ट पर अमरसिंह-सूरि हुए, यथा—

तसु जस वाणी रसि अति उदार पालइ स (सु) विहित आचारसार
शरिअमरसिंहसूरिराज पणमता तस पाइ सरइ काज
तिणइ अनुक्रमि सोहगिरि निहाण शरिहेमरयणसूरि जगपहाण
स(सु)विहित जिन चूडामणिसारिच्छ जेणइ सोभउ श्रीआगमगच्छ

(इनके अनन्तर अमररत्नसूरि-सोमरत्नसूरि-गुणनिधानसूरि-उदयरत्नसूरि-धर्मरत्नसूरि[1] और मेघरत्नसूरि ने (स० १६८१ आश्विन शुक्ला प्रतिपदा शुक्रवार मेघरत्नसूरि के समय मे आगमगच्छीय धन्धूकापक्षीय भाणजी ने प्रतिलिपित की)।

सब आचार्यों के प्रतिमालेख प्राप्त है तदर्थ जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ २२३३ द्रष्टव्य है।

आलोच्य आचार्य हेमरत्नसूरि के शिष्य साधुमेरु ने स० १५०१ मे धन्धूका मे पुण्यसार रास का प्रणयन किया था जिसकी अन्त्य प्रशस्ति मे उपर्युक्त उद्धृताश समर्थक पद्य पाये जाते हैं—

आषाढादि पनर एकोतरइ पोस वदि इग्यारिसि अन्तरइ
धन्धूकपुरि कृपारम सत्र सोमवारि समथिउ ए चरित्र
सुहगुरु श्रीअमरसिंहसूरिंद मेवइ भविय जसुय अरविंद
तसु पटि नयणानन्द अमीविंदु गुरु श्रीहेमरत्नसूरि मुणिंद[2]

---

१ यह आचार्य सुलेखक थे, स० १६२६ मे कुल बाईस रास नव हजार श्लोक परिमाण मे प्रतिलिपित किये/करवाये। जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृष्ठ ८५३।

२ वही पृष्ठ ४५३।

प्रतिमालेखों के आधार पर हेमरत्नसूरि का अस्तित्वकाल सं० १४८३–१५२१ तक का ठहरता है। इस संग्रह में इसी आचार्य के नामवाला एक लेख सं० १५७३ का है और वह आगमगच्छीय ही है। परन्तु काल की दृष्टि से इनका तो नहीं हो सकता। इस नाम के और आचार्य भी तो दृष्टिगत नही होते। सम्भव है लेख उत्कीर्णक के प्रमाद के कारण गलत खुद गया हो।

इनके अन्य लेख इस प्रकार हैं—बुद्धिसागरसूरि-संग्रह भाग १, १४८४–८५–८७–८९–९१–१५०४–१२–१५–२१, भाग २, १५०३–७–१२–१५–१६–१९, विद्याविजय १४८५–१५०५–७–१९, नाहर भाग १, १५०६–१२, भाग २, १५१७–१९, सांडेसरा १५००, जैन युग १५०८, मुनि विशालविजय १५१८, विनयसागर १५१५, मुनि कान्तिसागर १५०६–१७, नाहटा १४८८–९२–१५०३–६–१२–२१।

(१६०) हेमरत्नसूरि—(लेखांक २२०) नागेन्द्रगच्छीय

प्रतिष्ठालेख में इस आचार्य के पूर्वपट्टाधीश का नाम संकेतित नहीं हैं। परन्तु समकालिक एतद्गच्छीय अन्य प्रतिष्ठालेखों से प्रमाणित है कि यह कमलचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। मुनि विद्याविजय[1] और नाहर[2] के लेख संग्रहों से उपर्युक्त मान्यता की पुष्टि होती हैं। नाहटा संग्रह मे (लेखांक २४१२) हेमरत्नसूरि पाटणेचा का स० १५६९ लेख प्रकाशित है, पर यह नही कहा जा सकता है कि वे यही है या क्या ?

(१६१) हेमविमलसूरि—(लेखांक १६२) तपागच्छीय

अन्वेषक की जीवन-यात्रा में कभी-कभी ऐसे विकट प्रसंग भी आने है, कि वह श्रमार्जित उपलब्धि के प्रति संदिग्ध हो जाता है। उसकी अनाकांक्षी साधना ही प्रश्नचिह्न बन जाती है। यदि ऐसी मनःस्थिति में तथ्याधार अनुसन्धित्सु के सम्मुख न हों तब तो उसकी विकलता सीमा

---

१ प्राचीन लेख सग्रह लेखांक ३९९।

२. जैन लेख संग्रह भाग २, लेखाक १२०५।

पार कर जाती है। निष्कर्षमूलक सन्देह ही अविश्वास में परिणित हो जाता है। तपागच्छीय हेमविमलसूरि के सम्बन्ध में ऐसा ही अनुभव हुआ।

लेख की प्रतिलिपि करते समय मन में केवल वही हेमविमलसूरि रम रहे थे जो सुमतिसाधुसूरि के पट्टधर और विश्रुत श्रमण परम्परा के त्राता थे। सं० १५४८-८३ इनका अस्तित्वकाल रहा है, अतः प्रतिमालेख लेते समय शंका उठी और कार्यत्वरा के कारण विलुप्त हो गई। परन्तु लेखों को व्यवस्थित कर प्राप्त साधनों के प्रकाश में परीक्षण-निरीक्षण किये जाने पर पुनः सदेहात्मक स्थिति खड़ी हो गई। अपनी ही प्रतिलिपि पर सन्देह होने लगा, मानसिक व्यग्रता बढ़ गई। मानव बुद्धिजीवी प्राणी होने के कारण उत्थित समस्या जब तक समाधान का रूप न ले तब तक वह स्वस्थ नहीं रह सकता। दूसरे दिन शत्रुंजय पर गया, प्रतिमा निकलवा कर लेख पढ़ा। विचार तो गतिशील तत्व है पर लिपि तो ठहरी स्थितिशील, वहां वैचारिक भूचाल को अवकाश कहां ?

प्रतिमालेख संग्रहों को देखा गया, अनुसन्धानोत्तरीय उपलब्धि से मन-मयूर नाच उठा, चिन्तक को वांछित प्राप्त होने से जो प्रसन्नता होती है वह अनुभव गम्य है। बात यह हुई कि आलोच्य हेमविमलसूरि के इस संग्रह में सं० १५१९ के प्रकाशित लेखातिरिक्त सं० १५०८[1] सं० १५१५[2] और १५२२[3] के तीन और लेख दृष्टिगोचर हुए। एक आचार्य के समसामयिक चार लेख प्राप्त होने पर उनका पृथक् अस्तित्व स्वीकार करना ही पड़ता है।

विवेचनानन्तर प्रश्न उद्भवित होता है कि तपागच्छ की किस परम्परा या शाखा का वे प्रतिनिधित्व करते थे ? अद्यावधि तपागच्छ की प्रकाशित किसी भी पट्टावली में या ग्रन्थस्थ प्रशस्ति-पुष्पिका में इनका

---

१ विद्याविजय लेखांक २३५।

२ नाहटा बन्धु लेखांक १०८४।

३ विनयसागर लेखांक ५३५।

उल्लेख नयनगत नहीं हुआ। साथ ही यह आचार्य प्रतिष्ठापक न होकर उपदेशक कोटि के हैं। अन्य गच्छ में इस नाम के आचार्य हुए हैं, पर तपागच्छ में तो इस काल में दूसरे नहीं हुए।

बुद्धिसागरसूरि भाग १ में सं० १५१२ (लेखांक १२४३) का जो लेख है वह भी इसी हेमविमलसूरि होना का चाहिए।

(१६२) हेमविमलसूरि—(लेखांक २४८–२५१–५३–२६०–६२–७४–७६) तपागच्छीय

सुमतिसाधुसूरि के पट्टधर हेमविमलसूरि तपागच्छ के पचपनवें आचार्य थे। इनका जन्म पावन तीर्थ जीरावला के समीप वड़गाव निवासी गंगराज की पत्नी गंगादेवी की रत्नकुक्षि से स० १५२० में हुआ। आचार्य लक्ष्मीसागरसूरि के पास सं० १५२८ में दीक्षा ग्रहण की। विद्यासागर की सेवा में अध्ययनार्थ उपस्थित हुए।

आचार्य सुमतिसाधुसूरि का शिष्य समुदाय विस्तृत और विद्वान् था। प्रत्येक विषय के विशेपज्ञ विद्यमान् थे। सभी का ध्यान बालक पर केन्द्रित था। वात्सल्यपूरित भावों से मुनिमण्डल इनकी विद्याविपयक समुन्नति में रस ले रहा था। सं० १५४८ में पंचलासाग्राम में इन्हें आचार्य पद पर स्थापित किया जिसका महोत्सव पाता ने किया था। इलादुर्ग/ईडर मे कोठारी सायर श्रीपाल ने गच्छनायकोत्सव सम्पन्न कराया। उसी समय इन्द्रनन्दिसूरि और कमलकलससूरि द्वारा गच्छभेद हुआ। कुतुबपुरा, कमलकलस और पाल्हणपुरा, हेमविमलसूरि समन्वयवादी प्रवृत्तियों के प्रोत्साहक थे किन्तु गच्छ को विभक्त होने से रोकने के लिए प्रयत्न करने पर भी सफल न हुए। हेमविमलीय युग की श्रामणिक स्थिति-सम्बन्ध में अन्यत्र प्रासंगिक रूप में वहुत कुछ लिखा जा चुका है, उसका पृष्ट-पोपण यहां वांछनीय नहीं। यहां तो इतना ही कथ्य है कि इस विकृति को समूल नष्ट करने के लिए ये जीवन भर प्रयत्नशील रहे, उनके नैष्टिक ब्रह्मव्रत ने वहुत सहायता दी। कहने की आवश्यकता नहीं कि भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए सदाचार का प्रमाण दैनिक जीवन में देना आवश्यक होता है। इनके समुदाय की विशेपता थी कि इनमें तनिक भी शैथिल्य

असह्य था। कुणगेर की नवयौवना को आनन्दविमलसूरि द्वारा दीक्षित किये जाने पर इनने घोर विरोध प्रकट किया था। परिणामस्वरूप सिद्धपुर और सीरोही आदि चार चौमासे उन्होने पृथक् किये।

स० १५५० मे सिद्धिगिरि की यात्रा की, स० १५५२ मे सोनी जीवा और जागा कारित उत्सव पर दानवीरसूरि को आचार्य पद दिया पर वे छ माह से अधिक जीवित न रहे। लालपुर मे सूरिमन्त्र की समाराधना की। स० १५७० मे डाभला मे स्तम्भ तीर्थ वासी सोनी जीवा तथा जागा ने उत्सव किया जिसमे आनन्दविमलसूरि को आचार्य पद एव दानशेखर व मणिशेखर को वाचक पद प्रदान किये। स० १५७२ मे ईडर जाते हुए कर्पटवाणिज्य/कपडवज मे दोसी आणद ने गुरुभक्तिवशात् महाप्रवेशोत्सव किया। बादशाह के पुत्र के पास किसी के द्वारा वैभवपूर्ण प्रवेश का अतिरजित चित्र उपस्थित किये जाने पर हेमविमलसूरि को कैद किया गया, अनन्तर अर्थदण्ड द्वारा मुक्ति हुई। अर्थदण्ड वापस दिलवाने मे प० हर्षकुल, प० सघहर्ष, प० कुशलसयमगणि और शीघ्रकवि शुभशील ने सहायता की। अनेक स्थानो पर प्रतिष्ठाए करवाई। स० १५८३ मे शरीर मे असमाधि उत्पन्न हुई, वटपल्ली से आणदविमलसूरि को गच्छभार वहन करने हेतु आमत्रित किया, पर वे एतदर्थ तैयार न थे। फलत: सौभाग्यहर्षसूरि को दायित्वपूर्ण आचार्य पद दिया गया। आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को श्रमण परम्परा का दीप्तिमय ज्योतिस्तभ तिरावृत हो गया।

साहित्य रचना :

गम्भीर साहित्य का प्रणयन स्वस्थमानस द्वारा ही और वह भी शान्तकाल मे ही सम्भव है। अक्लान्तवृत्ति ही विचारोत्तेजक साहित्य के माध्यम से मानव-सस्कृति को कुछ दे सकती है। कहने की शायद ही आवश्यकता रह जाती है कि हेमविमलसूरि का मूल्यवान जीवन सघ सघटन और श्रमण-शैथिल्य निवारण मे ही व्यतीत हुआ, अत' वे कोई चिन्तन प्रधान विचार पुज विरासत मे न दे सके। फिर भी नैतिकता सम्पोषक और स्तुतिमूलक स्वल्प रचनाए प्राप्त है—श्लेष और कमलसयुत

पार्श्वनाथ स्तवन, वरकाणा पार्श्वनाथ स्तोत्र, अभिनन्दनजिन स्तवन (इसमें संवर शब्द के एक सौ आठ अर्थ किये हैं), मृगापुत्र और तेरह-काठियों की सज्झाय; इनके रचना पदपूर्त्ति साहित्य की स्मरणीय रेखाएँ है।

साहित्य प्रतिलेखन :

आचार्य कालिक प्रतिलिपित प्रतियों की संख्या विशाल है। अनेक ऐसी पाण्डुलिपियां है जिनमे न लेखक का नाम है, न काल ही। यहां उन प्रतियों का उल्लेख अपेक्षित है जिनमें उनका नाम निर्दिष्ट है :

सं० १५५३ में उपदेशमाला, उपदेशमाला प्रकरण (महोपाध्याय श्रीश्रीश्रीजिनमाणिक्य गणिशिष्य पं०सुमतिसागरगणितच्छिष्य सुन्दरतिलक-गणिना लिखितं // आ० रयणा पठनार्थे; (मेरे संग्रह में), सं० १५५६ में ज्ञातापुत्र, स० १६५८ में सूत्रकृतांग, महोपाध्याय चारित्ररत्नगणि-शतार्थी जिनमाणिक्य—पं० सुमतिविजयशिष्य सिहसार द्वारा लोहियाणा में स्वस्वाध्यायार्थे श्राद्धविधि, लक्ष्मीभद्र-आणंदमाणिक्यशिष्य श्रुतसमुद्र के लिए सूत्रकृतांग और स्तम्भतीर्थ मे पंचमाग, सं०१५६३ मे उपदेशमाला, सं० १५६४ में कमलभुवन पठनार्थ ज्ञातासूत्र, सं० १५६६ में गौतम पृच्छा बालावबोध, १५७२ में धर्ममंगलशिष्य सुन्दरधर्मगणि द्वारा पार्श्वनाथचरित्र सं० १५७३ में अनन्तहंसगणि प्रणीत कुम्मापुत्रचरित्र, विजयचन्द्र द्वारा उप-देशरत्नकोश, कमलभवनगणि-हंससमय-शुभागमगणि विनेय उदयकमल्ल वाचनार्थ कल्पान्तर्वाच्य, सं० १५७७ में चांगानगर में चारित्रशीलगणि-शिष्य सौभाग्यकलश द्वारा अजितशान्तिबाला०.सं० १५८१ में विपाकसूत्र, सं० १५८२ में अनुयोगद्वार, भगवतीसूत्र आदि आदि प्रतिलिपित हुए।

अन्य कृतियां :

आचार्य हेमविमलसूरि के पूर्वपट्टाधीश सुमतिसाधुसूरि की विद्य-

मानता मे जिनहर्षगणि विनेय साधुविजय ने वादविजय[1] प्रकरण का प्रणयन किया। स्व० मोहनलालभाई[2] देसाई ने हेतुखण्डन को भी इन्ही की रचना माना है, वस्तुत यह जिनमण्डन की कृति है।[3]

सूचित आचार्य के परम अनुरागी मण्डपदुर्ग निवासी ग्यासदीन के प्रमुख राजकर्म्मचारी जावड की अभ्यर्थना से सर्वविजय ने आनन्दसुन्दर[4] नामक वैदुष्यसूचे कृति का सृजन किया। इसकी स० १५५१ मे प्रतिलिपित प्रति भावनगर-भक्तिविजय-सग्रह मे सुरक्षित है। इनकी एक और रचना पुण्डरीक शब्दार्थस्तव प्रेक्षणीय है।

महत्वपूर्ण कृति

प्रतिभा के धनी सर्वविजय की एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक रचना के उल्लेख का लोभ सवरण नही किया जा सकता है। वह है सुमतिसम्भवकाव्य, जिसकी एकमात्र प्रति पण्डित हर्षकुल के प्रयत्न से स० १५५४ इलादुग/ईडर मे प्रतिलिपित की गई थी और वह भी सुमतिसाधुसूरि की विद्यमानता मे ही। यह आचार्य अपने समय के प्रभावसम्पन्न

---

१ तेषा श्रीगणराज्ये विद्यागुणगौतमानुकारकृताम्
श्रीजिनहर्षगुरुणा शिष्यशिशु साधुविजययति
प्राथमिक प्रामाणिकपठनायालीलिखद् यथावगमम्
प्रकरणमिद सुधीभि सशोध्य मयि कृपा कृत्वा
य पठति वादविजयप्रकरणमिद्मादितोपि कौतुकत
अहमहमिकया मोदात् वृणुते त साधु विजयश्री

२ जैन साहित्यनो इतिहास पृष्ठ ५१७।

३ मुनि पुण्यविजय—प्रशस्त्यादि सग्रह पृष्ठ २०३।

४ ख्यात श्रीमालभूपाल विरद श्रावकाग्रणी
कालेऽस्मिन् शालिभद्रस्य सादृश्यात् दृश्यते हि य
तन्याभ्यर्थनया ग्रन्थ, श्रीमानान्दसुन्दर
क्रियते मौ मया सर्वविजयेन यथाश्रुतम्
—मुनि पुण्यविजय—प्रशस्त्यादिसग्रह पृष्ठ २७३

महापुरुष थे । इनके कार्यों का नवमूल्यांकन आज तक नहीं हो पाया है । इनके जीवन कार्यो पर प्रकाश डालने वाली कतिपय ऐतिहासिक रचनाएँ प्राप्त हैं । उदाहरणार्थ लावण्यसमय प्रणीत वीवाहलो । इसमें व्यवस्थित रूप से जीवन-रेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, परन्तु सुमतिसम्भव-काव्य इनका सर्वांगपूर्ण जीवन-जन्मस्थान, जन्ममहोत्सव, दीक्षा गुरुपरंपरा, मालवभूपाल और लघुशालिभद्र जैसे विरुदों से विभूषित जावडशाह, तत्कृत पावन प्रसंगों का भावपूर्ण वर्णन ओजस्वी भाषा में किया गया है । यह काव्य होकर भी ऐतिह्य तथ्यो से परिपूर्ण कृति है, समसामयिक होने से विश्वसनीय भी ।

जन्म और स्वर्गस्थान :

भौगोलिक और ऐतिहासिक अपेक्षित ज्ञान के अभाव में कभी-कभी शोधक भी भ्रमित हो जाता है । जैन परम्परा के सर्वांगपूर्ण इतिहास मे (पृष्ठ ६७२) त्रिपुटी महाराज ने इनका जन्म स्थान मेवाड़ का जावरा बताया है, जबकि इस नाम का कोई गांव इस भूप्रदेश पर न था और न ही वर्तमान है । सच बात तो यह है कि इनका जन्मस्थान है मेदपाट का योगिनीपुर-जाउर-जापद्र-जावर, जो धातु प्राप्ति-स्थान के रूप में समस्त एशिया में विख्यात रहा है । भारत में भी शताब्दियों से यह प्रसिद्ध है । जैन साहित्य और शिलोत्कीर्ण प्रशस्तियों में इसे जापद्र या योगिनीपुर कहा जाता था[1] । महाराणा लाखा के समय से तो इस स्थान की पर्याप्त उन्नति होती रही है । जैन संस्कृति का भी समुन्नत केन्द्र होने का इसे सौभाग्य प्राप्त रहा है । जैन कवियों ने जावर की महिमा शतमुखेन गायी है । आज भी चातुर्मास या पर्याप्त वर्षा के अनन्तर कभी-कभी जैन प्रतिमाएं निकलती रहती है, और जैन कलात्मक अवशेष तो आज भी चतुर्दिक उपलब्ध है । धातु की खदान रहने के कारण पुराने ढंग की मूसे आज भी हजारों की संख्या में बिखरी पड़ी है । प्रकृति, संस्कृति और कला के विस्मृत केन्द्र को आज अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का गौरव भी प्राप्त है ।

---

१. पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ-मारवाड़ का इतिहास पृष्ठ ६८३ ।

योगिनीपुर इस लिये कहा जाता है कि यहा का योगिनी मन्दिर किसी समय बहुत विख्यात था। मेवाड पाशुपत-परम्परा का वर्षो तक मुख्य साधना स्थान रहा है। निर्जन एकान्त के कारण जावर उपयुक्त साधनाभूमि थी। योगिनी मन्दिर पाशुपतो से पटा रहता था। तान्त्रिको का प्रधान स्थान मानने का प्रबल तर्क यह भी है कि तत्समीपवर्त्ती प्रदेशो मे सम्बद्ध शक्ति प्रतिमाए पर्याप्त परिमाण मे आज भी उपलब्ध होती रहती है। कहना चाहिए कि उत्तरगुप्तकालिक हरे पाषाण पर उत्कीर्णित मातृमूर्त्तिया इसी भूखण्ड से प्राप्त हुई है। इसमे तनेसर उल्लेखनीय है।

पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी मे यह श्रमणसस्कृति का भी केन्द्र हो चला था। इसलिए जैन साहित्य मे इस नगर सम्बन्धी विशेष उल्लेख मिलते हैं। यह स्थान उदयपुर से अहमदाबाद जाने वाले राष्ट्रीय मार्ग मरया आठ से कुछ ही दूरी पर है।

इसी प्रकार सुमतिसाधुसूरि का स्वर्गस्थान भी त्रिपुटी महाराज ने रामपुर बताया है। वह गलत है। वस्तुत खमणोर होना चाहिए था जहाँ गुलाब की कृषि होती है। जहागीर ने तो यहा गुलाब के उपवन लगवाये थे।

त्रिपुटी महाराज ने यह भी भ्रम फैलाया है कि इनने किशनगढ का ज्ञानभण्डर भी शुद्ध किया था। पाठक ही सोचे कि आचार्य का स्वर्गवास स० १५८१ मे हुआ था और किशनगढ स० १५५६ मे महाराज किशनसिंह ने अपने नाम से बसाया था[1]।

पारिवारिक मुनि और साहित्य

सुमतिसाधुसूरि और विमलसूरि का विद्वत् समुदाय विविध विषयक साहित्य प्रणेता था। ज्ञाताधर्मीविवरणादि ग्रन्थो के लेखक जिन-

---

१ वेस्टर्न इडियन आर्ट, पृष्ठ ३०।

माणिक्यगणि के विनेय[1] अनन्तहंस ने हेमविमलसूरि के धर्मानुशासन में दशदृष्टान्तचरित्र, अष्टाह्निकाचरित्र (स्तम्भतीर्थ में), इलाप्राकार चैत्य-परिपाटी, शत्रुंजय चैत्यपरिपाटी, द्वादशव्रत स्वाध्याय का प्रणयन किया। सं० १५६९ के हेमविमलीय लेख में अनन्तहंस का उल्लेख मिलता है, यह लेख नाहर भाग १, (लेखांक ७६९) और विनयसागर संग्रह (लेखांक ९४५) में प्रकाशित है। आश्चर्य है कि वि० सा० में प्रयुक्त सं० १५७९ है और नाहर संग्रह में सं० १५६९। लेख एक होते हुए भी पाठ भेद पर्याप्त है, मूल लेख का निरीक्षण आवश्यक है।

अनन्तहंसगणि के सदुपदेश से सं० १५९४ में अन्तगडदशागसूत्र प्रतिलिपित हुआ जिसमें हेमविमलसूरिराज्ये[2] शब्द है। यह असम्भव है। इनका स्वर्गवास स० १५८३ में ही हो चुका था। पौर्णमिक विद्यारत्न ग्रथित कूर्मापुत्रचरित्र[3] के शोधक[4] और हेमविमलसूरि के शिष्य प० हर्ष-

---

१. अनन्तहंस प्रशिष्य के प्रशिष्य भावरत्न ने इन्हे हेमविमलसूरि का शिष्य बताया है—

श्री हेमविमलसूरिद, वीर पाटे रे, महियलि ए दीपक हुआ रे
तास सीस उवज्झाय अनन्तहस रे हम परि........................

—जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ७४१,

इस प्रकार की भूले होती रहती है। जैसे धनदेव हेमविमलसूरि के शिष्य थे, परन्तु लावण्यरत्न ने सं० १५७३ देवगिरि मे रचित यशोधरचरित्र रास में इसे रत्नशेखरसूरि का शिष्य बताया है (जैन गुर्जर कविओ भाग ३ पृष्ठ ५६९)। जबकि दोनों आचार्यो का महद् कालिक अन्तर है। इस बीच लक्ष्मीसागरसूरि-सुमति साधुसूरि हो चुके है।

२. प्रशस्ति सग्रह पृष्ठ ९४।

३. जैन साहित्य के इतिहास में इसका प्रणयन काल सं० १५७७ दिया है, पर सं० १५५७ की प्रतिलिपित प्रति विद्यमान् है, (प्रशस्ति सग्रह)।

४. चेतो जहर्ष कुलक ममवीक्ष्य येषां कुर्म्मापुत्रस्य समशोधि च यैरिद तु
सश्री हर्ष कुल पण्डित राजवर्या जीयासुरात्मगुरुराजयुताः सदैव

कुल विद्याव्यामगी मुनि थे। भगवतीसूत्र[1] वीजक, वाक्यप्रकाश[2] टीका, ववहेतूदय त्रिभगी[3] (स० १५५७ मे), स० १५८३ मे सूत्रकृताग पर दीपिका[4] वृत्ति, पचतीर्थी शब्द के सप्तार्थ[5], काव्यप्रकाश टीका (पाटण भण्डार), कविकल्पद्रुम[6] इनकी सारस्वत साधना की परिणति हैं। इनकी और एक लोकभाषा मे वसुदेव चौ० प्राप्त है, जो स० १५५७ लासनगर

---

१ कुर्व्वे हृपकुलोऽह भगवत्यङ्ग वीजकम्

इति भगवत्याङ्गपचमागवीजक समाप्तम्, श्रीपण्डितशिरोमणिश्रीतपागच्छे गच्छाधिपति हेमविमलसूरि, तस्य शिष्य–प० हृपकुभकृत वीजकम्।

केटलोग ऑफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स् मुनि पुण्यविजय कलेक्शन्स, भाग १, प्रशस्त्यादिसग्रह पृष्ठ २८।

२ मूल रचना रत्नसिंहसूरि शिष्य उदयधर्म की है, स० १४०७ सिद्धपुर मे। जिनरत्नकोश पृष्ठ ३४६ पर इसके टीकाकार प० हृपकुल को सोमविमल का शिष्य बताया है। पर ठीक नही है, अन्त साक्ष्य से सिद्ध है कि यह हेमविमल के शिष्य थे।

३ इस कृति मे कर्त्ता अपने को लक्ष्मीसागरसूरि का शिष्य बताता है। सम्भव है दीक्षागुरु रहे हो। इस रचना पर आनन्दविमलसूरि के शिष्य विजयविमल ने टीका लिखी है। बताया है कि हृपकुल ने नवकार के प्रथम पद के एक सौ दस अर्थ किये थे।

४ लब्धाब्धिकामाना सुहेमविमलाभिधानानाम्
सूरीन्द्रगच्छनायकपदवीप्राप्तप्रभाप्रतिष्ठानाम्
शिष्याणुर्गुण-शासन जननी तिथिसमिते (१५८३) वर्षे
विबुधजनप्रार्थनया स्वस्य स्मृतये परोपकृतये च
सूत्रकृताङ्गस्यैता हृपकुलो दीपिकामलिखत्

५ जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १६, पृष्ठ १०९।

६ यह वोपदेवकृत कविकल्पद्रुमसे प्रेरित कृति ज्ञात होती है।

में रचा गई थी। इसमें कवि अपने को कुलचरण शिष्य बताता है[1]। इसलिए मुनि चतुरविजयजी ने इसका सम्बन्ध दो भिन्न व्यक्तियों से स्थापित किया है[2]।

पं० हर्षकुल के साहित्य से विदित होता है कि इनका अनेक विषयो पर असाधारण अधिकार था। तात्कालिक विद्वत्समुदाय इनसे अपनी कृतियां शुद्ध करवाने मे गौरव अनुभव करते थे। सौभाग्यसागरसूरि के शिष्य हृदयसौभाग्य ने इन्ही महापुरुष से हेम प्राकृत व्याकरण का पारायण कर व्युत्पत्ति दीपिका का प्रणयन सं० १५९१ में किया[3]।

श्रमण परम्परा का भाषा विषयक दृष्टिकोण सदा-सर्वदा से औदार्य-पूर्ण रहा है। एक ओर विद्वज्जन परितुष्ट्यर्थ तदनुकूल गम्भीर और उत्प्रेरक साहित्य सृजन किया है तो दूसरी ओर जनभाषा के माध्यम से उच्चविचारों का प्रसार-प्रचार कर जनता के नैतिक धरातल को ऊँचा उठाने में मूल्यवान् योगदान दिया है। हेमविमल का युग इस दृष्टि से समृद्ध रहा है। हर्षकुल, आणंद, लावण्यरत्न, हसधीर, अनन्तहस, हससोम, सुदरहंस, सिंहकुशल, जयविजय, जय हेम, श्रावक भीमा आदि की रचनाएं युग का सफल प्रतिनिधित्व करने को सक्षम है।

प्रतिमालेख :

आचार्य हेमविमलसूरि के नवप्राप्त लेख सं० १५५१–५२–५४–५५–

---

१. कुलचरण सुपडित सीस कहइ हरपकुल निसदीस।

२. जैनस्तोत्रसन्दोह, प्रस्तावना पृष्ठ ११२–१५

३. जैन साहित्यनो इतिहास, पृष्ठ ५२०।

६८[1]–६५–७७–७८ प्रकाशित हो रहे हैं। अतिरिक्त लेखों के लिए निम्न संग्रह द्रष्टव्य हैं—विनयसागर–१५५२–५४[2]–५७–५८–६०–६९ (इसमें अनन्तहंस का नाम है)–७३–८१, मुनि विशालविजय–१५५२–५६–५९–६३–७५–७८, मुनि जयन्तविजय (अर्बुद प्रद०) १५५२–५६–५९–६३–७५–७८, बुद्धिसागरसूरि–भाग १[3], १५५१ (?)–५६ (?)–४७ (?)–४८–५१–५२–५३–५४–५५–५६–५७–५८–६१–६२–६४–६७–७१–७२–७६–७८–७८–८१–८४, भाग २, १५५१–५३–५५- ५६–६३–६५–६६–६७–६८–७७–८०–८४[4] (?)–८७[5] (?), नाहटा १५५१—५२–५४–५५–६१–६८–७०–७५–७८–८०–८३, मुनि कान्तिसागर १५५१–५५ जैन सत्यप्रकाश वर्ष ११, पृष्ठ १५६१, नाहर भाग १, १५५९–६४–६६–७१–७६–८०, मुनि जयन्तविजय (हमीरगढ) स० १५५६।

अर्बुद प्रदक्षिणा लेख संग्रह (लेखांक २१६) में स० १६२५ का लेख छपा है, इसमें प्रतिष्ठापक आचार्य हेमविमलसूरि बताये गये हैं जो चिन्त्य है, निज दैनन्दिनी से स० १५५८।

---

१ प्रतिमालेख में समान लिपि में कोरटीय नन्नसूरि का नामोल्लेख है। वह समकालिक थे (विनयसागर लेखांक ९६६)। सम्भव है प्रतिष्ठोत्सव में सम्मिलित रहे हों। अर्बुद प्रदक्षिणा लेख संग्रह में (लेखांक ५११) भी ब्रह्माणगच्छीय किसी आचार्य का नाम था, पर वह भाग नष्ट हो गया है। ऐसा ही एक लेख स० १५३१ का जैन सत्यप्रकाश वर्ष ९ पृष्ठ ४०२ पर प्रकाशित है, जिसमें प्रतिष्ठापक आचार्य पल्लीगच्छीय शान्तिसूरि हैं और उपदेशक वृहत्तपागच्छीय ज्ञानसागरसूरि। भिन्न गच्छीय आचार्यों के एक ही लेख में उल्लेख तात्कालिक सौमनस्य के परिचायक हैं।

२ इस लेख में हेमविमलसूरि अपने को लक्ष्मीसागरसूरि का शिष्य बताते हैं जबकि उस स्थान पर सुमतिसाधुसूरि का नाम होना चाहिये था। (लेखांक ८७७)।

३-४-५ ये भी पुनर्निरीक्षणीय हैं।

१६२) हेमसमुद्रसूरि—(लेखांक १६६) नागपुरीय तपागच्छीय

नागपुरीय तपागच्छ के विख्यात आचार्य हेमहंससूरि के पट्टधर हेमसमुद्रसूरि[1] के वैयक्तिक जीवन को आलोकित करने वाले साधन अनुपलब्ध है। इन्हें आचार्य पद पर कब स्थापित किया ? प्रमाणाभाव से नहीं कहा जा सकता, परन्तु मेरे संग्रह की एतत्परम्परा की स्वाध्याय-पुस्तिका से अनुमित है कि यह सुलेखक और साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले विज्ञ थे। इनका सं० १५१६ प्रतिष्ठालेख प्रकाशित हो रहा है। अन्य लेख नाहटा–१५१८–२१–२८–३३, विनयसागर १५१७ संग्रहों में पाये जाते है।

नाहटा संग्रह में सं० १५२६ के लेख में (लेखांक १०६०) "हेमहंससूरिपट्ट श्री हेम समर (?) सूरिभिः" पाठ दिया है. परन्तु वहां हेमसमुद्रसूरि पाठ ही अपेक्षित था।

(१६३) हेमहंससूरि—(लेखांक १५८) नागपुरीय तपागच्छ

प्रतापी सूरिवर पूर्णचन्द्रसूरि के पट्टधर हेमहंससूरि का जन्म सं० १४३१ में खण्डेलवाल कुल में हुआ था। सं० १४३६ में संयम स्वीकार किया और सं० १४५३ में आचार्य पद पर आसीन हुए। नागपुरतपागच्छीय आचार्यावली में केवल इनका नाम ही प्राप्त है। विशेष परिचय प्रयत्न करने पर भी ज्ञात न हो सका। इस परम्परा के विद्वद्वरण्य आचार्य और मुनिवरों ने जैन साहित्य के विविध अंगों को पुष्ट करने में महत्वपूर्ण योग दिया है। तात्कालिक एवं परवर्त्ती साहित्य एवं प्रतिलिपित प्रतियो से प्रतीत होता है कि हेमहंससूरि और इनकी परम्परा का व्यापक प्रभाव योगिनीपुर/जाऊर/जावर से खण्डेला तक था। इस प्रदेश की जनता के

---

१. आचार्यश्री के गुरुबन्धु हेमसारगणि विरचित गुर्वावली और गुरुगुणविनती मे इनका इन पद्यो में उल्लेख किया है—

हेमहंससूरि पाटधरो हेमसमुद्रसूरिदो
हेमहंससूरिगुरो पट्ट नुहाकरो जयउ हेमसमुद्रसूरि जाम सुर....।

—मुनि कान्तिसागर—राजस्थान का अज्ञात साहित्य वैभव

नैतिक स्तर उन्नयनार्थ इन यति-मुनियो ने बहुत प्रयत्न किये। परन्तु आज तक इनकी साहित्य और सास्कृतिक प्रवृत्तियो का उचित मूल्याकन नही हो सका है। इसका कारण अपेक्षित साधनो का अभाव ही सम्भव है।

हेमसार

यह आचार्य हेमहस के बहुश्रुत विद्वान् शिष्य थे। साहित्यिक सरक्षण और सशोधन मे सहयोगी भी। गुर्वावली, गुरुगुणविनति, आदिनाथ-पार्श्वनाथ और जीरावली विनतियें, ज्ञानपचमी चौ० हेमसार की रचनाए है[1]। अपनी परम्परा के आचार्यो के इतिहास सरक्षण के लिए यह विशेप प्रयत्नशील रहे ऐसा जान पडता है। स० १४६७ मे प्रतिलिपित प्रशमरतिप्रकरण की लेखन पुष्पिका मे इनका नाम आता है[2] और साथ ही उससे यह विदित होता है कि हेममेरु और पूण्यमेरु सूरिवर के विद्योपासक शिष्य थे।

स्वाध्याय-पुस्तिका (लेखन काल स० १४७७–१५६१)

भारतीय धर्माचार्यो की वैयक्तिक या परम्परामूलक स्वाध्याय-पुस्तिकाओ का विशेप महत्व रहा है। इनमे अपने आराध्य और गुरुओ की स्तुति, स्तोत्र एव स्तवन आदि प्रशसात्मक रचनाओ का विशिष्ट सग्रह तो रहता ही है साथ ही अपनी-अपनी रुचि की साहित्यिक, धार्मिक और ऐतिहासिक कृतियो का भी समावेश रहता है। किसी-किसी मे स्वधर्मानुयायी या तात्कालिक प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियो के जीवन सम्बद्ध उल्लेखनीय प्रसगो का सकलन भी ऐसी सग्रहात्मक पुस्तको मे पाया जाता है जिनसे सास्कृतिक गवेपणा के क्षेत्र मे प्रेरणा मिलती है। जैन समाज के आचार्यो की तथाकथित परम्परामूलक-पुठे-पाधिया पर्याप्त सख्या मे प्राप्त है। यहा उन सभी की समीक्षा अभीष्ठ नही है। विवक्षित यही है

---

१ इन रचनाओ के अतिरिक्त एक और कृति पटना से प्रकाशित विहार राष्ट्र-भाषा परिषद् पत्रिका मे भी मुद्रित हुई है।

२ जैन पुस्तक प्रशस्तिसग्रह पृष्ट १४८।

कि आचार्य हेमसुन्दरसूरि द्वारा प्रारम्भिकृत पुस्तिका की ओर अन्वेषकों का ध्यानाकर्षण किया जाय।

नागपुरीयतपागच्छाचार्यों की निधिसम प्रस्तुत पुस्तिका का लेखन-काल १४७७–१५६१ का मध्यवर्त्ती काल रहा है, अर्थात् विवेच्याचार्य हेमहससूरि-हेमरत्नसूरि-सोमरत्नसूरि-देवचन्द्र-क्षेमसुंदर-नयचन्द्र-लक्ष्मीसमुद्र और कर्म्मरत्न आदि आचार्य तथा स्थविर मुनियों द्वारा भिन्न-भिन्न समय में इसका आलेखन हुआ है। इसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के अतिरिक्त देश्यभाषा में मौलिक तथा टिप्पणात्मक विद्वद्भोग्य साहित्य सुरक्षित है। अपनी ओर से अधिक न लिख कर सूची उपस्थित करना ही अधिक उपयुक्त होगा—

नेमिनाथ स्तुति	सं० १५२७ चैत्रवदि तीज रविवार लक्ष्मीसमुद्रमुनि पठनार्थं
सिद्धपुरस्थ वीरजिन स्तवन	पद्य १०
कोटिशलाका स्तवन	पद्य १८, सं० १५२९ नागपुरे
चन्द्रप्रभस्तुति	
तारणगिरि स्तुति	रत्नशेखरसूरि रचित
सम्मेदस्तुति	स० १५०८ मार्गशुदि ५ श्रीदेवकुलपाटके श्रीहेमहंससूरिभिः लिखितः
वीतरागस्तुति	
वीतरागदेव विनती	
थंभणपार्श्वनाथ विनती	
महावीर स्तुति	लेखनकाल सं० १५०१
ऋषभविनती	जयशेखरसूरि प्रणीत,
चतुर्विंशतिजिनस्तवन	रविप्रभसूरि रचित
चतुर्भाषामय स्तोत्र	
नवरसबद्ध स्तोत्र	
वर्द्धमान स्तोत्र	श्रीप्रभानन्दसूरि कृत
पंचवर्गपरिहार स्तोत्र	

सुभापित पद्य	नयचन्द्रगणि, पद्य ११२
शृगारगाथाविद्याहला	पद्य ४०, स० १५०३ वर्पे वैगाससुदि दिनें शुक्रवासरे लिखित श्रुतसागर मुनिना ।। नाग- पुर मध्ये
शृंगारिक पद्य प्राकृत	१००, जयतचन्द्र
मातृकाक्षर-नीतिशास्त्र	
चौरासीलब्धि	
चतु भापास्तोत्र	
भावारिवारण स्तोत्र	इसके मूल प्रणेता जिनवल्लभसूरि हैं और टीकाकार है मतिसागर, अन्तिमोल्लेख— इति महावीरस्तुति' समाप्ता तपस्यपर्याया कृता प० मतिसागरगणिभि //स० १५०१ वर्पे माहसुदि १० वर्द्धनपुरे नयचन्द्रगणिना स्वहस्ते लिपिकृता इस रचना की नयसुन्दरगणि कृत अवचूरि भी प्राप्त है। स० १६६५ की प्रति मेरे संग्रह में है और पूज्य गुरुदेव श्री उपाध्याय सुखसागर जी ने सम्पादित कर प्रकाशित भी कर दिया है।
पष्ठिशतक	नेमिचन्द्र भण्डारी कृत, सवत् १४७१ विक्रमादित्यात्/श्रीवर्द्धमानात् १९४१ वर्पे वैशाखवदि बुधे श्रीखण्डेलपत्यां हेमहससूरिभि' स्वहस्तेन स्वपुस्तके लिखित चिर नदतु//शुभ भवतु//
मातृकाक्षरचैत्य परिपाटी	संवत् १४७७ फाल्गुनशुदि मगले श्रीयोगिनी- पुरे जहापनाह दुर्गे नोडासराहिमध्ये स्ववसतौ श्रीहेमहंससूरिभिलिखिता

गुरुगुणषट्त्रिंशिका	वज्रसेनसूरिशिष्य रत्नशेखरसूरि रचित, स्व० मोहनलाल देसाई ने इस कृति को हेमतिलकसूरि की रचना माना है। पर वह ठीक नहीं है, अन्तिम पद्य दृष्टव्य है— सिरिवयरसेणसुहगुरुसीसेणं विरइयं कुलगमेयं पढिऊणमसढभावा भव्वा पावतु कल्लाणं इति श्रीगुरुगुणषट्त्रिंशिकाकुलकं तपा भट्टारक श्रीहेमतिलकसूरि पट्टे श्रीरत्नशेखरसूरि कृतं ॥
गच्छसमाचारी	प्राकृत पद्य में अपने गच्छ की सामान्य समाचारी है
सम्यक्त्वसप्ततिक-शलाकासत्तरी	हेमतिलकसूरि विरचिता
निगोदषट् त्रिंशिका	पद्य ३६
दुर्जनाधिकार	पद्य २०
सुजनाधिकार	पद्य ३३
कुरुल्लास्तव	
चित्तसंघाष्टक	
कर्म्मप्रकृति विवरण यन्त्र-सहित	
ज्योतिषमण्डलविचार	
गणविचार	
अक्षरशोधनविधि मन्त्र-शास्त्रसंवद्ध	
अष्टापदस्तवन समरा रचित	

योगशस्त्र चतुर्थ प्रकाश	संवत् १५२७ वर्षे चैत्रवदि ३ दिने शनीवारे मोपाग्नगरमध्ये लिपित लक्ष्मीसमुद्रमुनि पठनार्थम्
पंचपरमेष्ठिमहात्म्य	(प्राकृत में)
सुभापित	पद्य ११२ (प्राकृत में) नेयचन्द्रेणालेम्वि,
नदीश्वरस्तोत्र	पद्य २६
विचारस्तवन	(प्राकृत)
भड्टलीवाक्य	पद्य १११ पुरानी भाषा मे
लोकनालिका	
उपदेश गाथा	नेयचन्द्रगणि
आचाराग प्रथमाध्ययन-निर्युक्ति	गाथा १०७
समवसरण रास	यह नागपुरीयतपागच्छ के आचार्य रत्नशेखर-सूरि की रचना है, इसका उल्लेख अद्यावधि प्रकाशित किसी भी जैन साहित्य के इतिहास मे नही हुआ, प्राचीन भाषा की दृष्टि से कृति का विशिष्ट महत्व है।

आदि- पणमवि पढम जिणिंदु रिसहेसरु सामिउ
अनु पुडरिउ मुणिंदु सेत्तुजि सिवगामिउ

इणि अवसप्पिणि पढम जिणेसरु जगे ववहार
पयास दिणेसरु

नाभि नरेसर घरि अंवयउ रिसहु सेहसाखह
विसधरिउ।

अन्त– समवसरणकउ एहु विचारो बहुयह गंधहतणउ उधारो रयणसिहरसूरिहिक कहिउ

रासबंधि जे पढहिं-पढावहिं रंगि दियावहिं जिणभुवणि ते नरवंछिउ फल पावहिं

पंचकल्याणक जिनस्तोत्र यह कृति अज्ञात है और इसके प्रणेता भी उपर्युक्त रत्नशेखरसूरि हैं

आदि– नेमिजिणनाह पणमेवि पंकयं पणय जण विहिथं
मण इट्ठ सुह संपयं

पंचकल्याण एगारसि संथवो भणिसु जह होई
मह सुख सिव सम्भवो ।

अन्त– ताहं दालिद्द दोहग्ग नवि ढूकहिं आहि दुह
बाहि सवि ताहि परि मक्कही

परम सुहं लच्छि पावंति ते सासया लोय सिरि रयणसिहरुव्व सुआसया इय पंचकल्लाणिहिं गरुय पमाणिहिं तिहुयणि सयलि जिवि वित्थरिय तसु गुण गुण थवणं मंगल भवणं पढहु गुणहु अहनिसि भविय

पट्टावली स्वगच्छीय पट्टक्रम देने से पूर्व संकलयिता ने मानतुंगसूरि, देवसूरि, मानदेवसूरि, वीरसूरि, समुद्रसूरि, उद्योतनसूरि, प्रद्युम्नसूरि, रूपदेव-सूरि, मुनिचन्द्रसूरि आदि आचार्यों की प्रशंसा और मुख्य कार्यज्ञापकार्थे कतिपय स्वनिर्मित पद्य दिये हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से इन काव्यः

का विशिष्ट महत्व है। नागपुरीय आचार्यों में वीरभद्रसूरि (६६४)–पद्मप्रभसूरि-प्रसन्नचन्द्रसूरि-जयशेखरसूरि-वयरसेणसूरि-रत्नशेखर सूरि–पूर्णचद्रसूरि–हेमहससूरि – रत्नसागरसूरि और हेमसमुद्रसूरि के नाम हैं।

पट्टावली — इसमे उएसवाल-उपकेशगच्छीय ककुदाचार्य-सन्ताने सिद्धसूरि-कक्कसूरि और देवगुप्तसूरि का उल्लेख है।

पट्टावली — पूर्णिमा (११६६) चन्द्रसूरि-जयप्रभसूरि।

पट्टावली — चैत्रगच्छे ( ) भुवनचन्द्र-देवभद्रोपाध्याय-तपस्वी जगच्चन्द्रसूरि-विजयचन्द्र-क्षेमकीर्त्ति–हेमकलश–रत्नाकर–मुनिशेखर–धर्मदेव-नाणचन्द्र-अभयदेव-हेमचद्र-जयतिलक–जिनतिलक-रत्नसिंह और उदयवल्लभ।

पट्टावली — खरतरगच्छ उद्योतनसूरि-वर्द्धमानसूरि-जिनेश्वरसूरि–जिनचन्द्रसूरि – अभयदेवसूरि-जिनवल्लह-जिनदत्त–जिनचन्द्र–जिनपति–जिनेसर-जिनप्रबोध–जिनचन्द्र–जिनकुशल – जिनपद्म–जिनलब्धि-जिनचन्द्र-जिनउदय-जिनराज-जिनवर्द्धन-जिनभद्र और जिनसागर।

पट्टावली — आचलगच्छ आर्यरक्षितसूरि-जयसिंहसूरि-धर्म्मघोषसूरि–महेन्द्रसूरि–सिंहप्रभसूरि-अजितसिंह-देवेन्द्रसिंह-धर्मप्रभ-सिंहतिलक–महेन्द्रप्रभ-मेरुतुग-जयकीर्त्ति-रत्नशेखर-महीतिलक–सोमतिलक।

पट्टावली	वृहद्‌गच्छ : मुनिसिंहसूरि-मुनिशेखर-तिलक-भद्रेसर-मुनीश्वर-रत्नप्रभसूरि ।
पट्टावली	धर्मघोषगच्छ : धर्म्मघोषसूरि-अमरप्रभसूरि-आणंदसूरि-नाणचन्द्रसूरि-सागरचन्द्रसूरि-मलयचन्द्रसूरि-पद्मशेखर और विजयचन्द्र ।
पट्टावली	तपागच्छ : भवनचन्द्र-देवभद्रोपाध्याय-जगच्चन्द्र-देवेन्द्रसूरि-विद्यानन्द-धर्मघोष-सोमप्रभ-देवसुन्दर-ज्ञानसागर-कुलमण्डण-सोमसुन्दर ।
	यहां बता देना आवश्यक है कि ऊपर की सभी पट्टावलियां सर्वथा निर्भ्रान्त नही है । पर उनके संशोधन का यह स्थान नही । कुछेक पर आचार्य परिचय में विचार किया गया है ।
व्याख्यान	ऐसा प्रतीत होता है कि बालमुनियों की शिक्षा के लिये व्याख्यान की संयोजना की है । इसमें जनता को धर्म कार्य में प्रवृत्त होने की भावभरी प्रेरणा दी गई है । आशीर्वाद के पद्योद्‌धृत कर तात्कालिक भाषा में उनका विवेचन प्रस्तुत किया हैं । महाराणा कुम्भकर्णकालिक लोकभाषा की दृष्टि से व्याख्यान महत्व का है । यों तो उस समय के गद्य के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं, पर इसका वैशिष्ट्य इसलिए है कि इसमें प्रादेशिक भाषा के शब्दों की बहुलता है ।

मुहपत्ती प्रकरण	आचार्य वर्द्धमानसूरि प्रणीत यह प्रकरण अन्यत्र अनुल्लिखित है। इसमे मुखवस्त्रिका की अनिवार्यता का बलपूर्वक समर्थन किया गया है।
आदि–	मोहतिमिरोह सूर नीमउ वीर सुआणसारेण साहेमिअ मुहपत्ति सङ्टाण मणुग्गहट्ठाए। इह केइ समय तत्त अणुमता मावयाण मुहपत्ति पडिसेहत्ति जडण उवगण मिणति काउण
अन्त –	ता भो भव्वा उऊण उग्गह अणुसरेह समग्ग सिरिवद्धमाणमूरिहिं ससिय जइ लहह सुवज
अचलगच्छ मान्यता	अचलगच्छ या मत की विशेष मान्यताओ का मकलन तात्कालिक धार्मिक सघर्ष का परिचायक है। ऐसी चौवन मान्यताए तो उपलब्ध है, आगे का पत्र विलुप्त है। सम्भव है आगे भी कुछ नव्य ससूचन सकेतित हो।
स्फुट	इन सूचित कृतियो के अतिरिक्त अनेक सैद्धान्तिक विषयो के टिप्पण शास्त्रीय पाठो के साथ उल्लिखित हैं, जिनका अपना महत्व है।

स्वाध्याय-पुस्तिका मे अनुमान होता है कि यह नागपुरीयतपागच्छ के आचार्यो के पास क्रमश सुरक्षित रही और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार प्रत्येक आचार्य इसमे परिवर्द्धन करते रहे, इसमे उनकी परिष्कृत रुचि और अध्ययन की व्यापकता का पता चलता है। ऐसी पुस्तिकाओं का परिचय प्रकाशित होने से ऐतिहासिक साधनो की पूर्त्ति होती रहेगी।

प्रकाशित नागपुरीयतपागच्छ पट्टावली मे बताया गया है कि हेमसुन्दरसुरि से इस परम्परा मे शैथिल्य प्रविष्ट हुआ। इसका समर्थन

स्वाध्याय पुस्तिका की पुष्पिका से भी होता है, कारण कि आचार्य ने स्वयं दो स्थानों पर स्ववसतौ शब्द का प्रयोग किया है। इससे ज्ञान होता है कि इनके कई स्थानों पर स्वतन्त्र उपाश्रय रहे होंगे, इनका साध्वी समुदाय यतिनी कहलाता था[1]।

हेमहंससूरि के पट्टधर आचार्य हेमसमुद्रसूरि हुए जिनका परिचय सं० १६३ में दिया जा चुका है और दूसरे आचार्य थे लक्ष्मीनिवाससूरि जो एक शाखा के प्रवर्त्तक हुए।

इनका एक लेख सं० १४८६ का इस संग्रह में प्रकट हो रहा है, शेष लेख इन संग्रहों में दृष्टव्य हैं—

नाहर भाग १, १४८५–९०–१५०७, भाग २, १४५३–६६–७५–९०–९६–१५०१–४–१०–११–१३, विनयसागर १४७५–७९–८२–८३–८४–८५–९०–९३–१५०१–४–१०–१२–१३–१५, बुद्धिसागरसूरि भाग २, १५०९–१०–१३, नाहटा १४६५–६९–१५०३।

हेमहंससूरि के प्रतिष्ठालेखों से प्रमाणित है कि वैचारिक दृष्टि से ये वहुत उदार थे। इनके सं० १५१३ पौषशुदि सप्तमी के कुछ ऐसे लेख मिले है जिनमे इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है—

प्र०प्रह्म (ब्रह्माणगच्छे) उदयप्रभसूरि तथा (तपा)[2] भट्टारक श्रीपूर्णचन्द्रसूरिपट्टे श्रीहेमहंससूरिभि.[3]

लेखांक से यही कल्प्य है कि प्रतिष्ठोत्सव में उदयप्रभसूरि भी सम्मिलित थे। इसी तिथि के एक लेख मे (नाहर भाग २ लेखाक १३७४) उदयप्रभसूरि को व्रह्माणतपागच्छीय वताया गया है। इससे दो

---

१. मुनि जयन्तविजय (अर्बुद० प्र०) लेखाक १६४

२-३. मुनि विद्याविजय-सग्रह लेखाक २८१

यही लेख नाहर-संग्रह में भी (भाग २ लेखाक १३:४) प्रकाशित है। वहा 'तथा' के स्थान पर 'तपा' पाठ है, वही उपयुक्त ज्ञात होता है।

ही तथ्य प्रकाश मे आते है और वह यह कि या तो तपागच्छ के जो आचार्य ब्रह्माण मे निवास करते हो वे अपने को इस सज्ञा से अभिषिक्त करते रहे हो या ब्रह्माणगच्छ का तपागच्छ मे विलय कर दिया हो। परन्तु प्रथम तथ्य अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, कारण कि इस सवत् के अनन्तर भी ब्रह्माणगच्छीय आचार्यो के स्वतन्त्र लेख मिले है।

आचार्य हेमहससूरि के एक अज्ञात शिष्य ने महेश्वरसूरि रचित सयममजरी[1] कथा पर वृत्ति निर्मित की, जैसा कि ग्रन्थ प्रशस्ति के इन पद्यो से ज्ञात होता है—

सिरिपुन्नचदसूरिसरपट्टोवयपन्चयमि सहभयरा
सिरिहेमहससूरिवर सपसन्ना हुतु सहसपथ
तेसि सुगुरुचरण भोअपसाएण सीसलेसोवि
सयममजरिसजमरि वित्ति भणामि अह

यद्यपि सूचित पद्यो मे गच्छ और प्रणयनकाल का उल्लेख नही है, परन्तु प्रतिमालेख और अन्य साहित्यिक साधनो से प्रमाणित है कि पूर्णचन्द्रसूरि के शिष्य हेमहससूरि ही थे। अन्य परम्परा मे ये दोनो नाम पूर्व और परवर्त्ती के रूप मे दृष्टिगोचर नही होते। स० १५६१ मे प्रतिलिपित प्रति के अन्त मे दो पद्यो मे अचलगच्छ प्रस्थापक आर्यरक्षितसूरि और प्रभावकाचार्य मेरुतुगसूरि[2] की प्रशसा मे दिये है। मेरी सम्मति

---

१ समणहभूमण गयवसण सजममजरि एह
(सिरि) महेसरसूरिगुरुवनि कुणत सुहेण

इति सयममजरीवृत्ति समाप्ता।।स० १५६१ मार्गशुदि • श्रीपिप्पल गच्छे तालध्वजीय भटटारक श्री श्रीशान्तिसूरिभिर्लिखापिता गधारमन्दिरे (? बन्दरे)। —पिटसन रिपोर्ट सन् १९८९–९२, पृष्ठ १२१–२२

२ इस मेरुतुगसूरि के करकमलो द्वारा प्रतिलिपित सूरिमन्त्र की एक मुष्टिपुस्तिका श्री साराभाई मणिलाल नवाब के सग्रह मे सुरक्षित है। इसकी छायाकृति सुविख्यात सेठ श्री अमृतलाल भाई कालीदास दोशी द्वारा प्रस्थापित जैन साहित्य विकास मण्डल, विले पारले, बम्बई कार्यालय मे सुरक्षित है।

में तो ये काव्य किसी अंचलगच्छीय विद्वान् ने बाद में स्मृति के लिए कहीं से प्रतिलिपित किये जान पड़ते है ।

दो हेमहंससूरि ?

शोध के क्षेत्र में कभी-कभी अपेक्षित अन्वेषण दृष्टि के अभाव में अनुसन्धाता भ्रमित हो जाता है । अंचलगच्छ दिग्दर्शनकार भाई पार्श्व (पृष्ठ ३३२) ने दो हेमहंससूरि की कल्पना इसीलिए कर डाली है। उदयप्रभसूरि रचित आरम्भसिद्धि के टीकाकार और न्यायमंजूषा प्रणेता हेमहंसगणि को भ्रमवश आचार्य मान लिया है। वस्तुतः वे आचार्य नहीं थे ।



।। श्री शत्रुंजयाय नमः ।।

धातु-प्रतिमा-लेख

शत्रुंजय

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक

१

चंद्रसत्कदेव

२

स०············६५ आषाढ़ सुदि १ गुरौ श्रे० लालाकेन मातृ आमिलि डोवा-भार्या वाही प्रतिमा कारिता ।

३

············चंद्रकुल पाउकाया (?)············संडाकेन············

४

सं० १२१४ वैशाष···· ············श्रीचंद्रप्रभसूरिभिः । (पार्श्वनाथ प्रतिमा)

---

१. जिनेन्द्र टूक शत्रुंजय, पालीताना की भमतीकी गणधर-देवकुलिका
(इस प्रतिमा का ऊद्ध्र्वभाग खण्डित है । सवत् का निर्देश नही है । इसका अंगविन्यास अत्यन्त व्यवस्थित और नयनाभिराम है । परिपार्श्वस्थ इन्द्रोंके मुकुटों पर अजन्ता शैली का स्पष्ट प्रभाव है । नवम दशम शती की यह कलाकृति सौन्दर्य का पुंज है ।)

२. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताना
(पर्याप्त प्रयत्न करने पर भी संवत् के आदिम दो अंक न पढे जा सके, इस पर किसी ने छैनी का प्रयोग किया है । मूर्त्ति-रचना ग्रौर लिपि से अनुमित है कि यह वारहवी शती पूर्व की कृति है ।)

३. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताना
(प्रतिमा के लेख पर कुटिल लिपि का प्रभाव है । सौन्दर्य की दृष्टि से विम्ब अनुपमेय है ।)

४. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताना

५

स० १११६ फागुण सुदि   श्री सूरिभि ।

६

॥५०॥ स० १२२६ आषाढ सुदि ६ गुरौ चद्रगच्छे पहुव दिकया मोछिणि श्राविकिया श्रेयोर्थ॥वीरनाथप्रतिमा कारिता प्र० पण्डग-सूरिणा ।

७

स० १२२८   ·

८

श्रीसिद्ध हेमकुमार स० ४ वैशाष व० २ गुरौ श्रीभीमपल्लीसत्क व्य० हरिश्चन्द्र भार्या गुणादेवी श्रेयोर्थं श्रीशान्तिनाथविम्ब कारित ।

९

सवत् १२३७ गुरौ   सुत वीरदेव भार्या   ·

१०

स० १२४२ ज्येष्ठ शुदि १३ रवौ मह आनदेन सुत सहि श्रेयोर्थ श्रीऋषभनाथ प्रतिमेय कारिता प्रतिष्ठिता श्रीसिद्धसेनसूरिभि ।

११

स० १२५७   ज्ञातीय विम्वकारित प्रतिष्ठित श्रीपल्लीवाल-गच्छे ...

१२

स० १२७३   वर्षे वैशाख सुदि ८ श्रीश्रीमालज्ञातीय भ्रातृ मोषा पुण्याय   देवसूरि प्रतिष्ठित च ।

५ वालावसही शत्रुजय, पालीताना
६ मोतीशाहनी टूक शत्रुजय, पालीताना
७ जिनेन्द्र टूक शत्रुजय, पालीताना, गणधर की देवकुलिका
८ जिनेन्द्र टूक शत्रुजय, पालीताना
९ गाव का वडा मन्दिर, पालीताना
१० वालावसही शत्रुजय, पालीताना
११ वालावसही शत्रुजय, पालीताना
१२ गाव का वडा मन्दिर पालीताना

१३

सं० १२८५ वर्षे वैशाष सुदि १५ दिने क्षत्रि रा० पूजा.........
सूरिभिः प्रति० ।

१४

सं० १२९२ ज्येष्ठ सु० गुरौ भावयजा पुत्र थीजाभ्यां पार्श्वनाथविंबं कारितं प्रतिष्ठितं नागहृदगच्छे श्रीगुणसेनसूरिभिः । ॥

१५

स० १२९२ वर्षे गुरु..........

विक्रम की चौदहवीं शताब्दी

१६

सं० १३०१ वर्षे हुंबड़ज्ञातीय निवृत्तिगच्छे श्रे० जरा(श)वीर पुत्र रेनासहितेन स्वश्रेयसे शांतिनाथबिंबं कारित प्रतिष्ठिता श्रीयाम्रदेवसूरिभिः । (प्रतिमा अतीव सुन्दर है)

१७

स० १३०५ श्रीमालज्ञातीय लापा सुत पुनमसिहेन विजया..........
श्रेयोर्थं... ....बिंबं कारितं..........

१८

सं० १३०८ ज्येष्ठ सुदि १२..........सुश्रावकेण श्रीधर्मसूरि..........
मुनिचन्द्रसूरिभिः ॥

---

१३. वालावसही शत्रुंजय, पालीताना

१३-१८. संख्या की प्रतिमाए वालावसही शत्रुंजय में सुरक्षित है।
जिनेन्द्र टूक शत्रुंजय पालीताना, गणधर कुन्निका की श्रामणी।

१९

स० १३१८ वर्षे फा० · ·श्रीपालचद्र ·· ·

२०

स० १३१३ वर्षे (इसका परिकर अतीव सुन्दर है)

२१

स० १३१५ वर्षे ·(प्रतिमा का लेख इरादतन किसी ने घिस डाला है। ध्वज-पुरुष के तक्षित चित्र से अनुमित है कि इसके उपदेशक अचलगच्छीय आचार्य होने चाहिए।)

२२

स० १३३१ वर्षे ज्येष्ठ शुदि १ बुधे पितृ जाल्हण मातृ लषमादे पुण्यार्थं पुत्र तिरहणेन श्रीपार्श्वनाथविंब कारित चन्द्रगच्छीय श्रीपद्मप्रभसूरिशिष्य श्रीगुणाकरसूरिभि प्रतिष्ठित ।

२३

स० १३३८ कुमरसिह श्रेयार्थ पुत्र कान्हड तत्पुत्र प्रणमति। (श्वेताम्बर प्रतिमा)

२४

स० १३५१ वर्षे फागुण सु० २ गुरौ श्रीमालज्ञातीय श्रे० पाल्हण पितृ रतन मातृ पुण्यार्थं श्रेयसे श्रीशातिनाथविंब कारित प्रतिष्ठित वटपद्रकवास्तव्य//

२५

स० १३५१ वर्षे, फागुण वदि

(प्रतिमा के पृष्ठभाग मे ध्वजधारी पुरुष तक्षित है, अत इस लेख का सम्बन्ध अचलगच्छीय आचार्य से अनुमित है।)

१९-२१ संख्या की प्रतिमाएं वालावसही शत्रुंजय मे सुरक्षित है।
जिनेन्द्र टूक शत्रुंजय पालीताना, गणधर कुलिका की भ्रामणी।

२२ वल्लभविहार–जैनमन्दिर, पालीताना

२३ वालावसही शत्रुंजय, पालीताना

२४ जिनेन्द्र टूक शत्रुंजय, गणधर कुलिका की भ्रामणी

२५ वालावसही शत्रुंजय

२६

सं० १३५३ वर्षे माघ वदि..........

२७

श्री//सं० १३६१ वर्षे वैषाख सुदि ५ शुक्रे महं० सोगण वपि//महं० सहजणपाल भा० श्रीयादे श्रीपारस्व(श्व)नाथबिबं कारितं.......**सूरिशिष्य श्रीमदनसिंहसूरिभिः** //

२८

सं० १३८२ वर्षे ज्येष्ठ सुदि..........श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० अर्जुन भा० चोषी..........**श्रीधर्मचंद्रसूरिभिः** ।

२९

सं० १३८४ ज्येष्ठ सुदि ९..........श्रीआदिनाथबिबं का० प्र०

३०

सं० १३८४ वर्षे माघ सुदि ३ श्रीमालज्ञातीय श्रीराज..........

३१

सं० १३८४ वर्षे फागुण..........दिने शुक्रे लालवाडाज्ञाती श्रीश्रीमालज्ञातीय व्य० पूना भा० श्रीयादे तत्पुत्र..........आदिनाथबिब कारितं प्र० **गुणाकरसूरिशिष्य श्री रत्नाकरसूरिभिः** ।

३२

सं० १३८४ ज्येष्ठ सुदि ९ श्रीआदिनाथबिबं का० प्र०..........

३३

सं० १३८६ वैशाष वदि १ सोमे पल्लीवाल श्रे० पदम भा० किल्हणदेवि श्रेयसे सुत कीकाकेन श्री श्रवर्द्ध (मान) बिम्बं कारितं प्रति० ।

२६-३२ वालावसही, शत्रुंजय

३३. गोडीपार्श्वनाथमन्दिर, पालीताणा

३४

स० १३६३ येष्ठ (ज्येष्ठ) शुदि ६ शुक्रे वायटज्ञातीय ठ० हेमा लछमण • • •केन श्री शातिनाथ–(विम्न) का० प्र० श्री राशिज-सूरिभि ।

३५

स० १३६४ वर्षे • • श्री श्रीमालज्ञातीय भ्रातृ रतन वा श्रीपार्श्वनाथविम्व कारित प्रतिष्ठित श्रीसूरिभि वीरसिंहसूरिभि ।

३६

स० १३६४ वैशाप वदि ५ • प्र० श्रीसिंहदत्तसूरिभि ।

विक्रम की चौदहवी शताब्दी

३७

स० १४०६ वर्षे मा • • श्रीमालज्ञातीय • विम्व कारित प्रतिष्ठित श्रीनरसिंहसूरिणा ।

३८

स० १४०७ वै० प्रतिष्ठित श्रीसूरिणा ।

३६

स० १४१४ श्रीउसवालज्ञातीय व्य० पारहण पुत्र श्रीआवू भ्रिया पेता पुत्र व्य० • महावीरविम्व कारित

४०

स० १४१८ वर्षे वै •••श्रीश्रीमालज्ञातीय • महिमा भा० ऊमादे • वासुपूज्यविम्व • • पूर्णिमापक्षे श्रीमावचन्द्रसूरीणा-मुपदेशेन ॥

३३-४० नानावमही, शत्रुजय पालीताणा

४१

सं० १४२१ वड भा० जलादे.........वासुपूज्यपंचतीरथो का० प्र० नगेन्द्रगच्छे **श्रीगुणाकरसूरिभिः** ।

४२

सं० १४२० वर्षे माघ वदि ७ सोमे श्रीभावड़गच्छे श्रीमाल ज्ञा० व्य० वा० सु..........भा० मोहणदे.........सहितेन.........श्रेयसे श्रीचतुर्विंशति का० प्र० **जिनदेवसूरिभिः** ।

४३

सं० १४३२ वर्षे फागुण शु० ३ शुक्रे श्रीग्राग..........(यह अंश खण्डित है) पलादे (खण्डित) मातृपितृश्रेयोर्थ श्रीआदिनाथविम्वं पंचतीर्थी कारापिता **श्रीसूरिभिः** प्रतिष्ठिता//

४४

स० १४३२ वैशाष वदि ५ गुरौ श्रीकाष्टासघे हुंवड़ ज्ञा०को० भीमा भार्या लीलू सुत खेताकेन श्रीपार्श्वनाथविम्वं कारितं......... **श्रीमलयकीर्त्तिभिः**..........

४५

सं० १४३९ वर्षे पोष वदि..........ज्ञा० महं नागसिंह भार्या विमलदे पुत्र मोका लेवा प्रमुखयुते श्रीवासुपूज्यविम्वं कारापितं पूर्णिमापक्षे **श्रीधर्मतिलकसूरीणामुपदेशेन**..........

४६

सं० १४४४ वर्षे..........श्रीमालज्ञातीय..........पूना गलसा श्रेयोर्थ श्रीशांतिनाथबिम्वं कारितं **श्रीदेवसुन्दरसूरिभिः** प्र० ।

---

४१. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

४२. गोडीपार्श्वनाथमन्दिर, पालीताणा

४३. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

४४. जूनों कोठो, शत्रुंजय, पालीताणा

४५-४६. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

४७

स० १४४४ वर्षे वैशाप सुदि १० भर्तृपुर ज्ञा० कनलघलागोत्रे सा० धरमा भा० हेमा पुत्र हावू भा० लापू महिराजेन स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथविम्ब का० प्र० श्रीसडेरगच्छे **श्रीशातिसूरिभि** ।

[लेख सूचित नगर को अर्बुदाचल-प्राचीन-जैनलेखसदोह (लेखाक ५३५) मे आधुनिक राजस्थान प्रदेश स्थित भरतपुर मानने की सम्भावना प्रकट की है। परन्तु तथ्य इसके विपरीत है। प० विजयमूर्ति सकलित जैन-शिलालेख-सग्रह मे (पृष्ठ ४६०) भी भर्तृपुर को भरतपुर ही स्वीकार किया है। सूचित किया है कि "क्योकि यह भी एक महादुर्ग कहा जाता है।" वस्तुत भर्तृपुर की स्थिति उदयपुर (राज०) के समीप है, इसे महाराजा भर्तृवर्द्धन ने नवम शताब्दी मे बसाया था। उस समय मे लगभग सोलहवी शती तक वह जैनधर्म और सस्कृति का उल्लेखनीय केन्द्र था। तीन वर्ष पूर्व ठेकेदार श्री तोलाराम भारतीय द्वारा खुदाई किये जाने पर विशाल कलापूर्ण जैन प्रतिमाए निकली थी। यो भी समय-समय पर उस भू-खण्ड मे जैन पुरातत्वावशेष प्राप्त होते रहते है। जैन समाज मे भर्तृपुरीयगच्छ प्रसिद्ध है और स्थानीय महाजन भी भटेवरा की सज्ञा से अभिहित किये जाते रहे हे। इस तथ्य के समर्थन मे शिला और प्रतिमालेख भी उपलब्ध है। आधुनिक भरतपुर से भर्तृपुर का सम्बन्ध स्थापित करने मे तनिक भी औचित्य नही है, न भरतपुर मे महादुर्ग ही है, मृत्तिका दुर्ग को यह सज्ञा नही दी जा सकती है। दूसरा कारण यह है कि भरतपुर का इतिहास भी उतना प्राचीन नही है। सच बात तो यह है कि इसकी स्थापना ही अठारहवी शताब्दी मे चूडामणि के पुत्र सूरजमल जाट द्वारा हुई थी। यद्यपि भरतपुर के विद्वानो ने इसे भी भर्तृपुर नाम से सम्बोधित किया अवश्य है, परन्तु वह इतना प्राचीन नही है।]

४८

स्वस्ति सवत् १४४८ वर्षे चैत्र वदि ८ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रेष्ठि धउला भार्या माउ तयो सुत श्रे० पेतसिहेन भार्या पोमीसहितेन श्रीचद्रप्रभस्वामिबिंब कारित प्रतिष्ठित **श्रीसुविहितसूरिभि** ।

४७ मोतीशाह की ट्रक, शत्रुजय, पालीताणा
४८ बालावसही, शत्रुजय पालीताणा

४९

सं० १४५४ पोष सुदि १२ सोमे मेडतवालगोत्रे सा० समरा भार्या गापू स्वश्रेयसे वासुपूज्यबिंबं का० प्रतिष्ठितं मलधारिगच्छे **श्रीमुनिसागर-सूरिभिः** ।

५०

सं० १४५४ वर्षे माघ सुदि.........प्राग्वाट्ज्ञातीय व्व०.......... भा० दहकू पूत्र आसाकेन पितृमातृश्रेयोर्थ श्रीआदिनाथबिंबं का० सार्ध-पूर्णिमापक्षीय **श्रभयचन्द्रसूरीणामुपदेशेन** प्रतिष्ठितं **श्रीसूरिभिः** ।

५१

सं० १४५७ वैशाष शुदि ३ म० श्रीश्रीमालज्ञातीय व्य० परबत भा० रूपो प्रमिलादि श्रेयसे सुत राजाकेन श्रीशांतिनाथबिंबं कारितं..........

५२

सं० १४५७ वर्षे वैशाष सुदि १३ शनौ प्राग्वाट्ज्ञातीय संघवी भापर भार्या भरमादे विद्याभ्यां सुत नरचंद्र श्रेयोर्थ श्रीवासुपूज्यबिंबंपंचतीर्थी कारितं प्र० नगेन्द्रगच्छे **श्रीरत्नप्रभसूरिभिः** ।

५३

सं० १४५९ वर्षे चैत्र शुदि..........श्रीश्रीमालज्ञातीय पितृ गोवल श्रेयोर्थ श्रीसुमतिनाथबिंबं शांडेरगच्छे भ० **श्रीउदयदेवसूरिभिः** ।

५४

सं० १४६० वर्षे ज्येष्ठ सुदि ९ प्राग्वाट्ज्ञातीय व्य० भोला भार्या मापीस सुत वाला भार्या भांभीनाम्न्या स्वश्रेयसे पद्मप्रभबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं **श्रीगुणरत्नसूरिभिः**, श्री॥

५५

संवत् १४६२ वर्षे वैशाप सुदि ५ श्रीश्रीमालज्ञातीय पितृव्य वीसल भार्या वउलदे श्रेयोर्थ सुत व्य० वोडाकेन श्रीवासुपूज्यादि चतुर्विंशतिपट्टः कारितः प्रतिष्ठिताः पूर्णिमापक्षीय **श्रीमुनितिलकसूरीणामुपदेशेन**॥श्री॥

४९-५४. बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

५५. कपडवंज श्रीसंघ का मन्दिर, शत्रुंजय

श्रीजयकीर्त्तिसूरीणामुपदेशेन श्रीवासुपूज्यस्वामिबिंव कारित प्रतिष्ठित श्रीसघेन ||श्री||श्री||

६८

स० १४८६ वर्षे वैशाख सुदि ६ उसवालज्ञातीय सॉपलागोत्रे सा० सायर भा० सायई पुत्र पिमराज आत्मपुण्याथ श्रीचन्द्रप्रभबिं० का० प्र० श्रीधर्मघोषगच्छे श्रीमलयचन्द्रसूरि पट्टे श्रीरत्नशेखरसूरिभि ।

६९

स० १४८७ वर्षे वैशाप सुदि १० गुरुवासरे श्रीश्रीमालज्ञातीय ठ० चऊद भा० चादू पुत्र णालाकेन मुनिसुव्रतनाथबिंव कारित प्र० श्रीपूनिमगच्छे (आचार्य का नाम द्वेपवश किसी ने छैनी से काट दिया है।)

७०

स० १४८७ वर्षे कार्तिक वदि ५ गुरौ श्रीमालज्ञातीय पिता अर्जुन सुत वयरा भा० वुलदे सुत वजेसीवनाकेन पितृश्रेयसे श्रीचद्रप्रभबिंव कारित श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीसाधुसुन्दरसूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठित विधिना जीवितस्वामि||

७१

स० १४८८ वर्षे वै० ७ प्राग्वाट्ज्ञातीय ठ० सादा (भाग खण्डित है) गागाकेन भ्रातृ मा० गाडआ भा० गगादे प्रमुखकुटुम्बयुतेन स्वश्रेयोर्थां श्रीपार्श्वनाथबिंव कारित प्रतिष्ठित श्रीवृहत्तपागच्छ नायक श्रीसोमसुन्दरसूरि पट्टालकार श्रीजिनसुन्दरसूरिभि. ।

७२

स० १४९१ वर्षे माह सुदि ६ उसवशे सा० जैसा भार्या जसमादे पुत्र मा० सोनपालेव अचलगच्छे (छत्रधारी आकृति) श्रीजयकीर्त्तिसूरीणामुपदेशेन श्रीअजीतनाथबिंव कारित प्रतिष्ठित श्रीसूरिभि

६८-६९ वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा
७० मोतीशाह की टूक, शत्रुजय, पालीताणा
७१ ७२ वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

७३

सं० १४६२ वर्षे व० शु० ३ श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० बोडा भा० रूपिणि सुत वस्ता भा० मेचू सुत सांगा रेला माणिकादि कुटुम्बयुतेन स्वश्रेयोर्थं श्रीशंभवनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं **श्रीसूरिभिः** ।

७४

सं० १४६३ वर्षे फागुण सुदि ३ गुरौ श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० पोपठ लाड़ा नाना कांह्यां भ्रातृ श्रेयोर्थं जैताकेन श्रीधर्म (नाथ) बिंबं कारितं (प्र०) **श्रीशीलरत्नसूरिभिः** आगमगच्छे । ॥

७५

सं० १४६३............उपकेशवंशे सा० हंका भार्या काजलदे पुत्र पोपट..........अंचलगच्छे **श्रीजयकीर्त्तिसूरीणामुपदेशेन** श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारापितं प्र० श्रीसंघेन ।

७६

सं० १४६३ वर्षे माघ सुदि ११ गुरौ उसवंशे बोहडगोत्रे सा० सामत पुत्र नाथू सिघा सांडाकेन माता पूना पूण्यार्थ श्रीशीतलनाथबिंबं कारितं प्रति० खरतरगच्छे **श्रीजिनसागरसूरिभिः** ॥

७७

सं० १४६४ वर्षे जान्ह सुदि ११ उपकेश..........श्रीसंभवनाथबिंबं **श्रीविजयसूरिभिः**

७८

सं० १४६६ वर्षे प्राग्वाट् ज्ञा० श्रे० भादा भा० भावलदे सुत मेघा-वालजीभ्यां स्वश्रेयसे सुमतिबिंबं (कारितं प्रति०) श्रीसमुद्रसूरिभिः ।

७९

सं० १४६६.......धर्मघोपगच्छे ज्ञानचंद्रसूरिभिः ।

---

७३. कपडवंज श्रीसंघ-मन्दिर, शत्रुंजय, पालीताणा

७४-७९. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

८०

॥ स० १४९७ ज्येष्ठ वदि ८ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय भा० राणा भा० मेलू सुत सागा भार्या सूल्हो सुत कूंपाकेन पिता श्रेयसे मुनि सुव्रतविंव कारित प्रतिष्ठित श्रीब्रह्माणगच्छे मुणिचन्द्रसूरिभि ॥

८१

स० १४९७ ज्ये० शु० १ कपडवासि श्रीमालज्ञातीय म० लीवा भार्या लहकू पुत्र रामाकेन भार्या मटकू " श्रीसुमतिनाथविंव कारित प्रतिष्ठित सोमसुन्दरसूरिशिष्य मुनिसुन्दरसूरिभि ॥

८२

स० १४९८ वर्षे फा० वदि १० उपकेशज्ञातीय (खण्डित) — साधू तिकमाभ्या श्री शीतलनाथविंव (का०) प्र० उपकेशगच्छे कुकुदाचार्य प्र० श्रीकाकसूरिभि ।

८३

स० १४९९ वर्षे माह वदि ५ रवौ श्रीमालज्ञा० श्रे० पाचा पुत्र जेसाकेन भार्या पाचू सहितेन मातु पुण्यार्थ श्रीधर्मनाथविंव कारापित प्रति० श्रीमलधारगच्छे श्रीविद्यासागरसूरि पट्टे भ० श्रीगुणसुन्दरसूरिभि ॥

८४

स० " श्रीश्रीमालज्ञातीय ..रानादे पूरेण सा० ... मलधारी गुणसुन्दरसूरिभि

८५

स० १४ वर्षे पोष सुदि गुरौ श्रीमालज्ञातीय प . . हरा श्रेयसे सरवणीभ्या श्रीआदिनाथविंव कारित प्रति० श्रीसूरिभि ॥छ॥

---

८० धनवसही वावू-मन्दिर तलहटी, पालीताणा
८१-८४ वालावसही शत्रुजय पालीताणा
८५ जैन मन्दिर मोतीसुखीया धर्मशाला, पालीताणा

८६

सं० १४-९ वर्षे श्रीमालज्ञातीय श्रे० मणोरसी भा० भि·······श्रेयोर्थं शीतलनाथबिबं कारितं प्र० श्रीसूरीणामुपदेशेन·······।

८७

सं० १४·······विद्यानन्दसूरिभिः

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी

८८

॥सं० १५०० वैशाष सुदि ५ श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० भोलाख्येन भा० चांपू सुत आसधर डाहादि कुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीपद्मप्रभबिबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीवृद्धतपापक्षेश्वर श्रीरत्नसिंहसूरिभिः ॥

८९

सं० १५०१ वर्षे माघ वदि······· (आगे का भाग अस्पष्ट है)

९०

सं० १५०१ व० वै० शु० २ शनौ प्रा० ज्ञा० श्रे० चांपा भा० अहिवदे मुत श्रे० वीरा भार्या वइजलदे सुत धनाकेत भा० वीभू प्र० कुटुंवयुतेन निजश्रेयोर्थं श्रीआदिनाथबिंवं कारितं प्रति० तपा मुनिसुन्दरसूरिभिः ।

९१

सं० १५०१ वर्षे आपाढ़ सुदि ९ सोमे लोढागोत्रे सा० वीजा भा० पद्मी पुत्र सा० तोला सुश्रावकेण पत्र वीरम प्रमुखतुत्रपरिवारयुतेन स्वपुण्यार्थं का० प्र० श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनचन्द्रसूरि पट्टे श्रीजिनसागरसूरिभिः ॥

८६-९१. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

९२

स० १५०१ वर्षे फा० व० ३ (अन्याक्षरो मे सोमे अकित है) म० रत्ना भार्या रत्नादे सुत म० सलपा भार्या वृद्धभार्या वीरणि सुत भ्या श्रीसुमतिबिंब स्वश्रेयसे का०प्र० तपा श्रीसोमसुन्दरसूरि शिष्य श्रीमुनिसुन्दर-सूरिभि ॥

९३

स० १५०१ वर्षे आपाढ वदि ९ ऊकेशवशे परीक्षगोत्रे कर्म्मा भार्या छिक्कू पुत्र महिराज, हरिराज, नगराज स्वपितृपुण्यार्थं श्रीसुमतिबिंब कारित प्रति० खरतरगण (णे) श्रीजिनभद्रसूरिभि ।

९४

स० १५०३ वर्षे उपकेश ज्ञा० ॰सडेरगच्छे श्रीशयदेव-सूरिभि (?)

९५

स० १५०३ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ११ (खण्डित) पुसागोत्रे सा० सुरजण भा० गुणश्री पु० सा० वेराजेन भा० धारणी श्रीशातिनाथबिंब (कारित) श्रीधर्मघोपगच्छे श्रीजयचन्द्रसूरिभि ॥

९६

स० १५०३ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ११ शुक्रवारे श्रीश्रीमालजा (ज्ञा) तीय सापुलागोत्रे सा० पिमधर भा० मोवी सा० वील्हाकेन आत्मश्रेयसे श्रीविमल-नाथबिंब कारित प्रा० श्रीधमघोपगच्छे श्रीविजयचन्द्रसूरिभि ।

९७

स० १५०३ वर्षे ज्ये० सु० १० प्राग्वाट्ज्ञातीय श्रे० आमा भा० सगू सुत परवतेन भार्या भाई कुटुबयुतेन स्वश्रेयोर्थं श्रीश्रेयासनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीजयचन्द्रसूरिभि गणवाडावास्तव्य ।

---

९२ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

९३ मोतीशाह की टूक, शत्रुजय, पालीताणा

९४ ९७ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

९८

सं० १५०३ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १० गुरौ श्रीहारीजगच्छे उसवालज्ञातीय श्रे० देवा भा० देल्हणदे पु० वस्ताकेन..........डूंगरनिमित्त श्रीचन्द्रप्रभबिंबं कारितं प्रति० **श्रीमहेश्वरसूरिभिः** ॥

९९

॥ स० १५०३ वर्षे आसाढ शुदि १० शुक्रे प्राग्वाट्ज्ञातीय श्रे० पींचा भार्या लाषणदे तयोः पुत्रैः श्रे० वीरम धीरा चांपाख्येन मातृपितृश्रेयोर्थं श्रीमुनिसुव्रतस्वामिबिबं कारित प्र० तपागच्छे वृद्धशाखायां **श्रीजिनरत्न-सूरिभिः** ॥ श्री सहूआलावास्तव्य ॥

१००

सं० १५०३ ज्ये० शु० प्राग्वाट् सं० हापा भार्या हांसलदे पुत्र जांभणेन भार्या नागलदे पुत्र तुऊद नारद शातृघन जीवा श्रीधीरादिकुटुंवयुतेन निजपितृमातृश्रेयसे श्रीनमिनाथबिंबं क(ा)० प्रति तपागच्छे ॥ **श्रीजयचन्द्र-सूरिभिः** गुरुभिः ॥ ३०० ॥

(तीन सौ का अंक सम्भवतः इस आचार्य द्वारा सम्पन्न की गई प्रतिष्ठाओं का परिचायक है।)

१०१

॥ सं० १५०४ माह सुदि ६ गुरौ प्रा० ज्ञा० व्य० वसूदा भार्या सहजलदे सुत चांपाकेन भार्या पूरीसहितेन भ्रातजाया रूडी निमित्तं भ्रातृ मलुसीनिमित्तं स्वश्रेयसे श्रीनमिनाथबिबं का. प्र. श्री साधु. पू. **रामचन्द्रसूरि** पट्टे **श्रीपूर्णचन्द्रसूरीणामुपदेशेन** विधिना श्रावकैः।

१०२

सं० १५०५ वर्षे माघ शुदि १० रवौ उपकेशवंशे सा० साईआ भार्या सिरीआदे पुत्र सा० मुहडा भार्या रंगाई सुश्राविकया पुत्र सा० सिरिपति

---

९८. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

९९. जैनमन्दिर वल्लभविहार, पालीताणा

१००. मोतीशाह की टूक, शत्रुंजय, पालीताणा

१०१-१०२. वालावसही शत्रुंजय, पालीताणा,

(उठी हुई अति सुन्दर छत्रधारी पुरुष की आकृति) प्रमुखसमस्तनिजकुटुंब-सहितया श्रीअचलगच्छनायक श्रीजयकेशरिसूरीणामुपदेशेन श्रीकुंथुनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीसघेन । चिर नदतु ॥

१०३

स० १५०५ वर्षे आषाढ सुदि ७ दिने श्रीमालज्ञातीय महतागोत्रे म० झांझण पुत्र वाहड स भाहड स वाहड देहडपदम सुता ""साहमऊ स० धनराजेन पीमराज उदयराज पूजराज देहड मातृपितृपुण्यार्थ श्री आदिनाथ-बिंब कारित प्रतिष्ठित श्री श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरिभि ।

१०४

स० १५०५ वर्षे प्राग्वाट् ज्ञा० सो० माल्हा सुत लाखा भार्या ईल्हाई सुत पामाकेन भ्रातृ मण्डन भगिनी सहजाई पत्नी वील्हा प्रमुखकुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीश्रेयांसबिंब का० प्रति० तपागच्छनायक श्रीजयचन्द्रसूरिभि ॥

१०५

॥ स० १५०५ वर्षे विशाष शु० ७ शु० उसवालज्ञातीय भण्डारीगोत्रे सा० वाहड पु० साल्हा दोहड भा० भापी होहट भार्या देल्हणदे पु० धीना महदेवेन श्रीआदिनाथबिंब कारित धर्मघोषगच्छे श्रीसाधुरत्नसूरिभि ॥छ॥

१०६

॥ स० १५०५ वर्षे माघ सुदि १० रवौ उकेशवशे मीठडीआ सा० साईंआ भार्या सिरीयादे पुत्र सा० चोला सुश्रावकेण भार्या कन्हाई तसु भ्रातृ (छत्रधारी आकृति) सा० महिराज हरराज तया भार्या भ्रातृ छा० सा० सिरिपति प्रमुखसमस्तकुटुंबसहितेन श्रीविधिपक्षगच्छपति श्रीजय-केशरिसूरीणामुपदेशेन स्वश्रेयोर्थं श्रीसुविधनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित च श्रीसघेन ॥ आचद्रार्कं विजयता ॥

---

१०३ वालावसही शत्रुंजय, पालीताणा
१०२ गोडीपार्श्वनाथ मन्दिर, पालीताणा
१०५ मोतीशाहकी टूक, शत्रुंजय पालीताणा
१०६ जैन मन्दिर जसकौरकी धमशाला, पालीताणा

१०७

सं० १५०६ वर्षे चै० व० ४ बुधे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० देपा भा० सूदी तयोः पुत्राः धांगा तयो भोजा जोगा षेताकेन स्वपितृमातृभ्रातृ श्रेयोर्थ श्रीवसुपूज्यबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्री आगमगच्छे **श्रीशीलरत्नसूरिभिः** // सीरोंजवास्तव्य

१०८

सं० १५०६ वर्षे मा० वदि २ रवौ प्रा० ज्ञा० श्रे·······(खण्डित) पु० पासा महिराजभ्यां स्वपितु श्रेयसे श्रीशांतिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं **श्रीसोमसुन्दरसूरि** पट्टे···············

१०९

// सं० १५०६ चै० व०-गु० श्रे० वांभण भा० तिली पु०ठुसा पु० सा० भा···पु० श्रीधरयुक्तेन तीलोनाम्नी आत्मश्रेयसे श्रीसुमति० बिंबं कारापितं प्रति० उके० सिद्धाचा० भ० **श्रीकक्कसूरिभिः** ।

११०

सं० १५०६ वर्षे प्राग्वाट्वंशे ठ० तेजा भा० तूणी पुत्र देवाकेन भा० (खण्डित) युनेन श्रीमिलनाथ (? मल्लिनाथ) बिंव कारितं प्रतिष्ठितं तपागच्छे **श्रीसोमसुन्दरसूरि** पट्टे **श्रीजयचन्द्रसूरिभिः** ।

१११

स० १५०६ वर्षे फागण सुदि ९ श्रीमूलसंघे भट्टारक **श्रीभुवनकीर्त्ति** ·······सुत धरणा श्रीआदिनाथ नित्य प्रणमंति ।

११२

सं० १५०७ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ९···········प्राग्वाट् ज्ञा० ठ० सरवण भार्या धणरारू सुत मेलाकेन भा० मेलादे भ्रा० पूजादिकुटुंबयुतेन श्रेयसे

१०७-८. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१०९. गोडीपार्श्वनाथ मन्दिर, पालीताणा

११०. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१११-११२. मोतीशाहकी टूक, शत्रुंजय, पालीताणा

श्रीसुविधिनाथबिंब कारित तपागच्छे श्रीरत्नशेखरसूरिभि प्रतिष्ठित श्री ॥

११३

॥ स० १५०७ वर्षे माघ सुदि १३ शुक्रे श्रीश्रीमालवंशे व्य० जीदा १ पुत्र व्य० जेताणद २ पु० व्य० आसपाल ३ पुत्र व्य० अभयपाल ४ पु० व्य० वाका ५ पु० व्य० वाउड ६ पु० व्य० अणत ७ पु० व्य० सरजा ८ पु० व्य० धीगा ९ पु० व्य० राजा १० पु० व्य० देपाल ११ पु० व्य० १२ पु० व्य० राम पु० व्य० मीना भार्या माकू पुत्र वसाहर रयणागर सुश्रावकेण भा० गउरी पु० भूभव पौत्र लाडण वरदे मातृ समधरी सायर भ्रातृ व्य० सगरा करणसी सारग वीका प्रमुखसर्वकुटुंबसहितेन श्रीअचलगच्छे श्रीजय-केसरिसूरि (री) णामुपदेशेन स्वश्रेयसे श्रीशातिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीसघेन (शुभ) भवतु ॥

११४

स० १५०७ वर्षे लीवलवासी सा० लछमण भा० लपू पु० श्री साधु भा० भूपतियुतेन श्रीमुनिसुव्रत बिं० का० प्र० तपा श्रीरत्नशेखर सूरिभि ॥

११५

स० १५०७ वर्षे माघ सुदि १३ सूराणागोत्रे सा० वीसल भार्या वाल्हदे पु० समरा स्वपित्रो श्रेयोर्थ श्रचन्द्रप्रभ (स्वामि) बिंब का० प्रतिष्ठित श्रीधर्मघोषगच्छे श्रीपद्मानन्दसूरिभि ॥

११६

स० १५०७ वर्षे हुवड पुत्र हीरू चन्द्रप्रभस्यबिंब का० प्र० तपा श्रीसोमसुन्दरसूरि शिष्य श्रीरत्नशेखरसूरिभि ।

---

११३ वालावसही, शत्रुंजय पालीताणा

११४ बडामन्दिर पालीताणा

११५ वालावसही शत्रुंजय, पालीताणा

११६ मोतीशाह की टूक, शत्रुंजय, पालीताणा

११७

सं० १५०८ वर्षे वैशाख सुद प्राग्वाट्ज्ञातीय सं० नांदू भार्या नयण-सिरि सुत मुकुदेन भार्या चमकू सुत हंसराज भगिनी सुन्दरई प्रमुखकुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीधर्मनाथबिबं कारितं प्र० तपा **श्रीरत्नशेखरसूरिभिः** ॥

११८

स० १५०८ वर्षे वै0 शुदि ३ सोमे श्रीनाणावालगच्छे·······धामला गोष्ठिक अबिकागोत्रे सा० पला भा० देवलदे पु० जेसा भा० जसमादे ·······दो सहितेन जेसाकेन आत्मश्रेयसे श्रीसुव (वि) धिनाथविंवं (का०) प्रतिष्ठित **श्रीशान्तिसूरिभिः** ॥

११९

सं० १५०८ (यहा साम्प्रदायिक वृत्तिका परिचय मिलता है, कारण है कि सवत् को छैनी से काटने का निन्दनीय प्रयास किया है।) वर्षे श्रीश्रीमालज्ञातीय··········वाचा भाई पुत्र ३ वीरा पेता राजू पुत्र भीमाकेन भार्या भीमादे पुत्र···········भार्याध्मादिसहितेन स्वश्रेयोर्थ श्रीपार्श्वनाथविब कारितं श्रीपूर्णिमापक्षे **श्रीविजयतिलकसूरि** पट्टे **श्रीसौभाग्यतिलकसूरीणा-मुपदेशेन** प्रतिष्ठितं। श्रीपत्तनवास्तव्य ॥

१२०

॥ सं. १५०८ वर्षे मार्गशिर वदि २ बुधे श्रीडीडूगोत्र सा० मूणा भार्या मोल्ही एतयोः पुत्रेण सा० नानिग श्रीसभवनाथविंबं का० प्रा० वृहद्-गच्छे **रत्नप्रभसूरि** पट्टे **श्रीमहेन्द्रसूरिभिः** ॥७४॥

१२१

॥ सं. १५०९ वर्षे फागुन वदि २ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय (खडित) सिवदासेन श्रीकुथुनाथवव (विंव) कारित श्रीअंचलगच्छे **श्रीसिद्धान्तसागर-सूरीणामुपदेशेन** प्रतिष्ठितं श्री सघेन ॥ शुभं भवतु ॥

११७-१९. वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

१२०. साकरचन्द प्रेमचन्द की टूक, शत्रंजय, पालीताणा

१२१. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१२२

स १५०६ वर्षे मार्ग सुदि ६ उपकेशगच्छे कर्म्मारगोत्रे सा० घडसीह भार्या फल्लू पु० स० तोला भा० तिपुरादे पुण्यार्थं श्रीवासुपूज्यविंव कारित प्र० श्रीकक्कसूरिभि । ॥

१२३

॥५०॥ स १५१० वर्षे चत्र वदि ५ शनी ऊशवशे वोभगोत्रे सा० जेजा पत्नी चगी पु० झाझू चादा वाल्हाकेन मातृपितृपुण्यार्थं आत्मश्रयसे श्रीमुनिसुव्रत (विंव का०) कृष्णर्षिगच्छे प्रसन्नचन्द्रसूरि

१२४

॥ स० १५१० वर्षे वै० सु० २ सा० माधवकेन पितृव्य सा० पीमा श्रेयसे श्रीआदिनाथविंव कारित प्रतिष्ठिते तपापक्षे श्रीरत्नशेखर-सूरिभि ॥श्री॥

१२५

स० १५१० वर्षे माघ सुदि १० अद्यह श्री मडपदुर्गे श्रीश्रीमा० सा० मोटा भार्या झमकू पु (त्री) श्रीरगरई नाम्न्या श्रीअनतनाथविंव कारित प्र० वृहत्तपागच्छे श्री रत्नसिंहसूरिभि ॥

१२६

स १५१० वर्षे चैत्र वदि १० वीसलनगर डीसावाल श्रे० देवसी भा० साणी सुत श्रे० भा० साकर माला · सहितेन स्वश्रेयसे श्रीमुनि-सुव्रतविंव का० प्रा० श्रीसोमसुन्दरसूरि शिष्यरत्न श्रीरत्नशेखरसूरिभि ॥

१२७

स० १५१० वर्षे फागुण सुदि ४ शुक्रे -उसवाल ज्ञा० श्रेष्ठिगोत्रे महाजनि कर्म्मण भा० कमलादे पु० साल्हा भा० सलपणदे पुत्र सहजयुतेन कुथुनाथविंव कारित प्रतिष्ठित श्रीउपकेगच्छे श्रीकुकुदाचार्य सन्ताने गच्छ नायक श्रीकक्कसूरि उपदेशेन ॥

---

१२२ १२७ वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१२८

सं. १५१० वर्षे ज्येष्ठ सुदि १ दिने श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० माडण भा० लहिकू सु० नागा भा० माजुक करापित श्रीमुनिसुव्रतविंबं श्रीब्रह्माण-गच्छे **श्रीबुद्धिसागरसूरि** पट्टे **श्रीविमलसूरिभिः** प्रतिष्ठित वदिवरा ॥

१२९

॥ सं. १५१० वर्षे चैत्र सुदि पूर्णिमायां श्रीश्रीमालज्ञातीय वहकटी गोत्रे सं० जमणा पुत्र सं० जयमल भा० रत्तू श्राविकया पुत्र जावड़ थाहरादि परिवारयुतया स्वश्रेयोर्थं श्री-सुविधिनाथबिंब का०प्र० खरतरगच्छे **श्रीजिन-भद्रसूरि** पट्टे **श्रीजिनचन्द्रसूरिभिः** ॥

१३०

सं. १५११ वर्षे आषाढ सुदि ६ शुक्रे वाडफतवास्तव्य भावसार मूलू भार्या धनी सुत गोपालेन पु० भा० चांपू सुत धर्मादि भा० अहिवि आदि कुटुंवयुतेन स्वश्रेयसे श्रीमुनिसुव्रतनाथादिपंचतीर्थी श्रीआगमगछि (च्छे) **श्रीदेवरत्नसूरिणामुपदेशेन** कारापितं ।

१३१

॥ सं० १५११ वर्षे ज्येष्ठ वदि ९ रवौ उसवालज्ञातीय मं० पूना भ० मेलादे सुत वीजल भा० डाहीतया श्रेयसे भ्रातृ आसदत्तहीराभ्यां श्रीविमल-नाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं पूर्णिमा भीमपल्लीय भट्टा० **श्रीजयचन्द्रसूरि (री)** णामुपदेशेन प्रतिष्ठितं ॥

१३२

सं. १५११ वर्षे फागुण सुदि ३.......अंचलगच्छे **श्रीजयकीर्त्तिसूरी-णामुपदेशेन** (?).......डूंगर भार्या.......प्रतिष्ठितं श्रीसूरिभिः ।

---

१२८. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१२९. मोतीशाह की टूंक, शत्रुंजय, पालीताणा

१३०-१३२. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१३३

स १५११ वर्षे वै० सु० २ बुधे प्राग्वाट् मा० कूर्रसिंहेन भार्या तारू सुत मेघायुतेन स्वश्रेयसे श्रीअचल (छत्रधारी पुष्प की आकृति) गच्छेश श्रीजयकेसरसूरीणामुपदेशेन श्रीनमिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित च ।

१३३ अ

स० १५११ वर्षे ज्येष्ठ वदि ६ रवौ उसवाल ज्ञा० म० पूना भा० भेलादे सु वीजल भा० टाही तयो श्रेयसे भ्रातृ आसदत्त श्रीविमलनाथबिंब कारित श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीभीमपल्लीय भट्टारक श्रीउदयचन्द्रसूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठित ॥

१३४

स० १५१२ वर्षे वैशाष सुदि ३ प्राग्वाट्ज्ञातीय म० मोपा भार्या गवी सुत मारू नाम्न्या श्रेयसे वासुपूज्यबिंब कारापित वृहत्तपागच्छे भ० श्रीजिनरत्नसूरिभि प्रतिष्ठित ॥

१३५

स० १५१२ वर्ष माघ शु ५ ऊ० मोजिगा वा० (वास्तव्य) श्रे० चागा भा कर्पूरी पुत्र श्रे लाडणन भा० लीलादे पुत्र वीरपाल कुरपाल पु(त्री) हासी भ्रातृ डूगरादियतेन श्रीशातिनाथबिंब का०प्र० तपा श्रीसोमसुन्दरसूरि-शिष्य श्रीरत्नशेखरसूरिभि ।

१३६

स १५१२ वर्षे ज्येष्ठ वदि ५ सोमे द्रोआवास्तव्य श्रीश्रीज्ञा० श्रे० हीरा भा० हीमादे सुत भाभणेन भा० भमकादे भ्रातृ गोराग महजा मेला-युतेन श्रीनमिनाथबिंब का०आगमगच्छ श्रीहेमरत्नसूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठित ॥ श्री ॥

---

१३३ मोतीशाह की टूक, शत्रुंजय पालीताणा

१३३ए १०४ बालावसही शत्रुंजय पालीताणा

१३५ खरतर वसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१३६ मूल दादा की टूक मे वीसविहरमानके मन्दिर, शत्रुंजय,पालीताणा

१३७

सं. १५१२ वर्षे माघ शुदि १३ दिने शुक्रवासरे श्रीमालज्ञातीय सं० अर्जुन भा० हीरू तत्पुत्र सा०······सुश्रावकेण विंबं कारापितं कृष्णर्पिगच्छे भट्टारक **पुष्परत्नसूरिभिः** ॥

१३८

सं० १५१३ वर्षे माह सुदि १० गुरु श्रीमाल ज्ञा० श्रे० मेघा भा० रत्नादे सुत तेजाकेन भा० साह······युतेन स्वश्रेयसे श्रीपार्श्वनाथबिबं का० पूर्णिमा-पक्षे **श्रीजयचन्द्रसूरिगुरुपदेशेन** प्रतिष्ठित विधिना ।

१३९

सं. १५१३ वर्षे वै० व० २ सोमे चन्द्रागोत्रे प्राहतीजवास्तव्य श्रीश्री-मालज्ञातीय वाछा भार्या वीरू पुत्र नाथा सुन्दर परिवारयुतेन स्वकुटुव श्रेयसे श्रीसंभवनाथविंव का० **श्रीरत्नसिंघसूरिभिः** ।

१४०

स० १५१३ ज्येष्ठ० शुदि ३ उ(सवाल) ज्ञा० सा० ववा भार्या फाली पुत्र सा० पाताकेन भार्या कपूरी पुत्र जगमाल जिनदत्तादिकुटुवयुतेन पितृव्य सा० थिरपाल श्रेयसे श्रीशीतलनाथविंव का० प्रतिष्ठित तपागच्छनायक **श्रीरत्नशेखरसूरिभिः** ॥

१४१

सं० १५१३ वर्षे माघ शुदि··········श्रीमाल भासा भार्या झमकू सुत मणगोल भा० फटकू नाम्न्या·······तपापक्षे **श्रीसोमसुन्दरसूरि श्रीजयचन्द्रसूरि श्रीविशालराजसूरि श्रीरत्नशेखरसूरि**········

१४२

सं० १५१३··········सा० भा०···········**श्रीमुणिचंद्रसूरि पट्टे श्रीहेम-हंससूरिभिः** ॥

१३७-१३८. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१३९-१४०. मोतीशाह की ट्रंक, शत्रुंजय, पालीताणा

१४१-१४२. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१४३

स० १५१३ वर्षे ज्येष्ठ शुदि १० गुरौ प्रा० (प्राग्वाट्) ज्ञातीय म० मउलासी भा० राणी सुतकेन भा० रुपिणि प्रमुखकुटुबयुतेन श्रीश्री-शीतलनाथबिंब कारित प्र० तपा श्रीसोमसुदरसूरि पट्टे श्रीजयचद्रसूरि शिप्य श्रीश्रीश्रीउदयनदिसूरिभि ॥

१४४

स १५१५ वर्षे वैशाप शुदि १३ रवौ श्रीब्रह्माणगच्छे श्रीमालज्ञा० (तीय) श्रे० पेता भा० रूपा सुत सेलाकेन भार्या रगी सुत पातासहित स्वमातृपितृ श्रे (यसे) श्रीआदिनाथबिं० (बिंब) का०प्र० विमलसूरिभि झोझरुवास्तव्य ॥

१४५

स १५१५ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय गाधी पासा भा० माजू सु० सदाकेन भा० माजी करमाई जिणदास श्रेयसे श्रीकुथुनाथबिंब कारित पूर्णिमापक्षे भीमपल्लीय भ०श्रीजयचन्द्रसूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठित ॥

१४६

स० १५१५ वर्षे माघ सुदि १ शुक्रे जूआरवास्तव्य श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० लीबा भा० जाजू सु०श्रे० जैसिंग भा० चमकू पु० सोहुल रत्न प० पतिमातृपितृस्वकुटुब श्रेयसे श्रीशातिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीआगमगच्छे श्रीसिहदत्तसूरिभि ॥

१४७

स १५१३ वर्षे ज्येष्ठ सु० ६ दिने प्रा० ज्ञा० सा० जइता भा० जासू पु० चापाकेन चापू पु० लीऊ पोमा भगिनी पई प्रमुखयुतेन स्वश्रेयसे श्रीचन्द्रप्रभबिंब का०प्र० तपा श्रीसोमसुन्दरसूरि शिप्य रत्नशेखरसूरिभि ॥

---

१४३ मोतीशाह की टूक, शत्रुजय, पालीताणा
१४४-१४५ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
१४६ धनवसही, तलहटी पालीताणा
१४७. बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

१४८

सं० १५१६ वर्षे का० सु० १४ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय सा० पंचायण भा० माकू सुत सायर नाम्न्या भार्या सूहवदे प्रमुखकुटुंबयुतेन श्रीसुमतिनाथ-बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं वृद्धतपापक्षे **श्रीरत्नशेखरसूरिभिः**

१४९

सं० १५१६ वर्षे श्रीश्रीमालज्ञातीय सा० लषमषी श्रीराजू.......... शान्तिनाथबिंबं (कारितं) श्रीतपागच्छनायक **श्रीसोमसुन्दरसूरि रत्नशेखर-सूरिभिः** प्रतिष्ठितं ॥

१५०

॥सं० १५१६ महाशुदि ५ शनौ प्राग्वाट् ज्ञा० म/राउल भार्या रामलदे द्वितीय हासलदे सु० मुल्हू भार्या अरषू सु० भोजा हांसा राजा भार्या माकू सु/हीरा माणिक हरदासयुतेन स्वपूर्विज-पितृ श्रेयोर्थ श्रीशान्तिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं आगमगच्छे **श्रीचंद्रप्रभसूरिभिः** सहायलावास्तव्य ॥

१५१

सं० १५१७ वर्षे पोष वदि ५ गुरु श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० जोगा भा० रत्नू सु० गंगा राणा प्रमुखयुतेन स्वपित्रोनिमित्त आत्मश्रेयसे श्रीसुविधिनाथ-बिंबं का० प्र० चैत्रगच्छे धारणपद्रीय भ० **श्रीलक्ष्मीदेवसूरिभिः** बोलीग्रामे ॥

१५२

॥ सं० १५१७ वर्षे फा० शु० ३ शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय म० धरणिगन भा० थेघ सु० कडूआ माणक प्रमुखकुटुंबयुतेन श्रीआदिनाथबिंब कारितं **श्रीसूरिभिः** प्रतिष्ठितं ॥

१४८-१४९. बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१५०. गोडीपार्श्वनाथमंदिर, पालीताणा

१५१. मोतीशाहकी टूंक, शत्रुंजय, पालीताणा,

१५२. प्रतिमाओं का पुराना कोठा, दादाकी मूल टूंक, शत्रुंजय, पालीताणा

१५३

स० १५१७ वर्षे पोष वदि– रवौ श्रीब्रह्माणगच्छे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रेष्ठि जेसिग भार्या जसमादे सुत मूधा वीका आकर तै पित्रो श्रेयोर्थ श्रीवासुपूज्यबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीबुद्धिसागरसूरिपट्टे श्रीविमलसूरिभि। द्रागद्रहा गाम वास्तव्य ॥छ॥

१५४

स० १५१७ वर्षे माह शु० ५ शुक्रे श्रीयशोदेवसूरि सताने ऊ० पालुदासा अरसी पु० लापा भा० काऊ पु० पीमा लोला जिणदास लूण जिणदास भार्या सुमतिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीसडेरगच्छे श्रीईश्वरसूरिभि ॥

१५५

स० १५१७ वर्षे पोष व० प्राग्वाट्ज्ञातीय लघुसतानीय श्रे० तद भा० हरपू पुत्र ३ कवा जेसा परवत भार्या पुत्रपौत्रयुतै आत्मश्रेयसे श्रीशीतलनाथबिंब कारित श्रीद्विवदनीकगच्छे भट्टारक श्रीसिद्धसूरिभि ॥

१५६

स० १५१७ वर्षे माघ सुदि ४ गुरौ स्व (खडित) भार्या झबकू पुत्र श्रेष्ठि समधर श्रेष्ठि शिवा रामधर भा० रशाई सिरीयादे स्वश्रयसे सुमतिनाथबिंब का० प्र० पू० पूर्णिमापक्षे साधुरत्नसूरिभि ॥

१५७

स० १५१७ वर्षे वैशाप सुदि १२ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० महूणसी भार्या सीरीयादे सुत मह०महिपा देपा त्रासण तेजा एतेषामध्ये मह देवा भार्या पूरीकेन श्रीसभवनाथस्वजीवित स्वामिबिंब का० प्रतिष्ठित श्रीआगमगच्छे श्रीआणदप्रभसूरिभि लाकडीउडावास्तव्य ॥

---

१५३ १५७ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

१५८

सं० १५१७..................गच्छे **पूर्णचंद्रसूरि** पट्टे **श्रीहेमहंससूरिभिः** ॥

१५९

सं० १५१८ वर्षे बैशाप सुदि ३ शनौ प्राग्वाट्ज्ञातीय श्रेष्ठि करण सुत रामदेव भा० राऊ सु० पितृ गोपाल मातृ चनू श्रेयोर्थ सु० सिबाकेन श्रीआदिनाथबिंबं कारितं श्रीपूर्णिमापक्षे **श्रीसाधुरत्नसूरि** पट्टे **श्रीसाधुसुन्दरसूरीणामुपदेशेन** प्रतिष्ठितं च सघेन विधिना वीसववलीया ग्राम वास्तव्य ॥

१५९ अ

॥ सं० १५१७ वर्षे वै० सुदि ३ सोमे श्रीश्रीवंशे श्रे० जेसा भा० पांचू पुत्र भोजाकेन भा० अर्ध सिद्धराज हेमराजसहितेन निजश्रेयोर्थ श्रीशीतलनाथबिंबं कारितं प्र० मलधारगच्छे **श्रीगुणसुन्दरसूरिभिः** ॥

१५९ ब

.......श्रीश्रीमालज्ञातीय.......रानादे.......पूरेण सा०........मलधारि **गुणसुन्दरसूरिभिः**

१६०

॥ सं० १५१८ वर्षे वैशाष सुदि १३ सरवारिवासि प्रा० सं० जावड़ भा० वीरू सुत हरदासेन भार्या गोमति भ्रातृ देवा भा० धर्मिणियुतेन श्रेयोर्थ श्रीसुमतिबिंबं का० प्र० तपा **श्रीरत्नशेखरसूरि** पट्टे **श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः** ॥

---

१५८. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१५९. श्रीजिनदत्तसूरिजी-दादावाड़ी, पुरानी पालीताणा

१५९ अ,ब. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१६०. बाबू माधवलाल–धर्मशालास्थ सुमतिजिन प्रासाद, पालीताणा

१६१

स० १५१६ वर्षे माघ सुदि १५ गुरु श्रीश्रीमालज्ञातीय व्यव० गहगा भार्या वाल्ही आत्मश्रेयसे जीवितस्वामि श्रीअजितनाथमुख्यपचतीर्थी कारित श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीमुनितिलकसूरि पट्टे श्रीराजतिलकसूरिमुपदेशेन प्रतिष्ठित // जावूवास्तव्य //

१६२

स० १५१६ वर्षे कार्त्तिक वद ४ गुरु श्रीश्रीमालज्ञातीय म० गोपा भार्या नाऊ सुत जूठाकेन पितृमातृ श्रेयोर्थ श्रीधर्मनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित पूसई स्व श्रेयसे श्रीसभवनाथबिंब तपागच्छे श्रीहेमविमलसूरीणामुपदेशेन काकरत प्र० //

१६३

स० १५१६ वर्षे ज्ये० व० १ गुरौ श्रीश्रीमालज्ञा० वि० पाता भा० पदमलदे सुत जूठा भा० पेवू नाम्न्या सुत देवदास हादा जिनदासादि कुटुवयुतया स्वश्रेयसे श्रीधर्मनाथबिंब आगमगच्छे श्रीदेवरत्नसूरीणामुपदेशन कारित प्रतिष्ठिन च विधिना // श्री //

१६४

// स० १५२० वर्षे आषाढ सुद ६ बुधे श्रीप्राग्वाट्ज्ञातीय व्य० माईया भा० वीलादे सुत माऊकेन भा० तारू सुत कान्हादिसहितेन फई रमकु श्रेयसे श्रीचद्रप्रभबिंब का० प्र० श्रीजिनसुन्दरसूरिभि //

१६५

// स० १५२० वर्षे चैत्र व० ५ बुधे श्रीश्रीमालज्ञा० पितृ सेदा मातृ सिगारदे निमित्त पुत्र पाचा सा० नाले (?) आत्मश्रेयसे श्रीसुमतिनाथबिंब का० प्र० श्रीधर्मशेखरसूरि पट्टे श्रीधर्मसुन्दरसूरिभि //

१६१-१६२ बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा
१६३ मोतीशाह की टूक, शत्रुंजय, पालीताणा
१६४ १६५ बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१६६

सं० १५२० वर्षे आषाढ़ वदि १ वीरवाडावासि व्य० रवीदा भार्या लीबी पुत्र देदाकेल पितृव्य लाषा पुत्र देल्हू प्रमुखकुटुंवयुतेन श्रीविमलबिंब स्वश्रेयसे (का०) प्र० **श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः** ॥

१६७

सं० १५२१ वर्षे फागुण वदि २ बुधे श्रीमांडवगढ़ श्रीश्रीमालज्ञातीय सा० ठाकुरसी भा० रूपिणि सुत थाधर भा० रमाईकेन सुत देराज विद्याधर अमरा प्रमु० (ख) कुटुंबयुतेन आत्मश्रेयसे श्रीसभवनाथबिंबं कारापितं प्रति० श्रीपू० (र्णिमा) प्रथम शा (खा) **गुणसुन्दरसूरीणामुपदेशेन** ॥:॥

१६८

सं० १५२१ वर्षे द्वितीय वैशाष शुदि-बुधे उसवाल ज्ञातीय.......... पीमा भार्या गउरी पुत्र महणाकस्य—स्वश्रेयसे श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारितं ....**श्रीपासचंदसूरि श्रीजयचंदसूरि** उपदेशेन प्रतिष्ठितं असाउलि-वास्तव्य ॥

१६९

सं० १५२१ माघ शु० १३ प्राग्वाट् सं० सारंग भा० वीरू सुत कर्मसिंहेन भा० मटकू प्रमुखकुटुंवयुतेन मातृ श्रेयोर्थं श्रीअभिनन्दनबिंबं कारितं तपागच्छे **श्रीसोमसुदरसूरि** संताने **श्रीरत्नशेखरसूरि** (उ) पदेशेन **श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः** । अहमदावादवास्तव्य ॥

१७०

सं० १५२१ वर्षे पोस सुदि १ गुरौ श्रीऊकेशवंशे दो० वरसिंग दो० राघव वरसिंग सुत हांसा हरपति भा० गुराई नाम्न्या स्वपुण्यार्थं श्रीसुमति-नाथबिंबं कारि० प्रतिष्ठितं **श्रीश्रीसूविहितसूरिभिः** ।

---

१६६. मोतीशाहकी टूक, शत्रुंजय, पालीताणा

१६७. अमीझरा पार्श्वनाथमदिर, विमलवसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१६८-१७०. बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१७१

// स० १५२१ वर्षे फागुण शुदि १२ प्राग्वाट्ज्ञातीय सा० लोला भार्या मेलादे सुत वलाकेन भार्या कर्म्मिणि सुत लीलादिकुटवयुतेन स्वश्रेयसे श्रीसभवनाथबिंब का० प्र० तपागच्छे रत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मासागर-सूरिभि मोहरसीग्रामवासी ।

१७२

// स० १५२२ वर्षे मा० शु० १३ अमलाहवासि श्रीमालज्ञातीय सा० वीसल भा० सुन्दरि सुत सा० वीजा भा० भाऊ सुत सा० स० धनावेन भार्या माणिकि भ्रातृ जागा सुतारामा कूदा पेऊ प्र० (मुख) कुटुवयुतेन पितु श्रेयसे श्रीशीतलनाथबिंब कारित प्र० तपा श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभि· / श्रीरस्तु /

१७३

स० १५२३ वर्षे पौष वदि ८ गुरु श्रीहारीजगच्छे उपकेशज्ञातीय श्रे० आसा भा० अहिवदे पुत्र सखाकेन भ्रातृ देधर निमित्त श्रीकुथुनाथबिंबं कारित प्रतिष्ठित श्रीमहेश्वरसूरिभि । वाघलिवास्तव्य //

१७४

सं० १५२३ वर्षे मार्ग शुदि २ सोमे उपकेशज्ञातीय व्यवगोत्रे सा० मूणा भा० कुसली पु० सा० हेमा भा० सलपू पु० हसंसा (छत्रधारी पुरुष की आकृति) स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित अचल-गच्छे भ० श्रीजयकेसरसूरिभि· । शिणोश स्थाने ।

१७५

स० १५२३ वर्षे वैश्रं वं० ४ गुरौ श्रीआणद वायडज्ञात श्रे० गोवल भार्या कुतिगदे नाम्न्या पुत्र श्रे० देवदास हरदास महिराज सागा पुत्री पगी-युतेन स्वश्रेयसे श्रीधर्म (नाथ) बिंब का० प्र० वृ० श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभि· सुपानदसूरिभि' रत्नम ' नसूरिभिः प्रतिष्ठित ।

---

१७१ १७५ वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१७६

सं० १५२३ वर्षे वैशाष सुदि ३ प्राग्वाट्ज्ञातीय व्य० सपमा भा० टबकू पुत्र मालाकेन व्य० देवाईत भा० जाणी पुत्र जूंठा भा० गागी भगिनी श्रेयोथ श्रीसुमतिनार्थबिंवं का० प्र० तपा **श्रीरत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः** । ऊंवरठवास्तव्य // शुभं भवतु //

१७७

सं० १५२३ वर्षे वैशाष सुदि ३ गु० श्रोश्रीमालीवंशे फो० खीमसी पु० हीरा भा० आल्ही सु० थिरीया भा० रत्नू पुत्र गांगाकेन भा० चांदू पुत्र माणिक फोफ० गोईया समस्तयुतेन पितृमातृ श्रेयोर्थं श्रीसुमतिनाथविवं कारापितं / प्र० श्रीवृद्धतपापक्षे भ० **श्रीजिनरत्नसूरिभिः** गुरु **श्रीधनेश्वरसूरिभिः** //

१७८

सं० १५२३ वर्षे माघ वदि ९ शनौ प्रा० सा० भीमा भा० भाई पुत्र गोविंदेन भा० लहकन पुत्र स्वकुटुंवयुतेन श्रेयांसनाथविवं का० प्र० तपागच्छे **श्रीसौभाग्यसूरि संताने श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः** //

१७९

सं० १५२४ वर्षे ज्येष्ठ शुदि ५ ऊकेशज्ञातीय मं० सालिग भा० जीविणि पु० महं हांसाकेन भा० लपमाई वृद्धबंधु म० गजा भा० पद्माई पु० श्रीवच्छ श्रीदत्तप्रमुखकुटुंवयुतेन सालिगादिपूर्वज श्रेयसे श्रीशीतलनाथविवं कारितं प्रति० संडेरगच्छे **श्रीसूरिभिः** //

१८०

सं० १५२४ वर्षे..........**श्रीसूरिभिः** (पूरा लेख अस्पष्ट है)

१७६-१७९. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१८०. जैनमंदिर मोतीमुखीया-धर्मशाला, पालीताणा

१८१

॥ स० १५२४ वर्षे वैशाप सुदि ३ सोमे उपकेशज्ञा० सुचतीगोत्र म० लोला तिहुणा जाल्हण पु० म० मेघाकेन भा० भावल पु ६ वादिग नरीग्रा मोपा सहजायुतेन तिहुणा न (नि) मित्त श्रीसुमतिनार्थबिंव का०प्र० श्रीउपकेशगच्छे कुकुदाचार्यसताने भट्टारक श्रीकक्कसूरिभि ॥

१८२

॥ स० १५२४ वर्षे वै० शुदि ३ सोमे राजपुरवास्तव्य श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० वणसी भा० वई सुत २ राजा भ्रातृ श्रे० धूघस भा० अमकू नाम्न्या २ श्रे० वीरपाल भा० वीरा दे श्रे० कूंरपाल भा० कूंयरी सु० मालादियुतया स्वश्रेयसे श्रीकुंथुनाथबिंव कारित प्रतिष्ठित बृहत्तपापक्षे भट्टारक श्रीज्ञानसागरसूरिभि ॥छ॥

१८३

॥ ५० ॥ स० १५२५ वर्षे वैशाप सुदि ७ दिने श्रीमालज्ञातौ घेउरीयागोत्रे सा० रामा पुत्र सा० राजाकेन पुत्र पेता वील्हा कान्हायुतेन वृहत्पुत्र छाडा पुण्यार्थं श्रीसुविधिबिंव (बिंब) कारित प्रतिष्ठित श्रीजिनसुंदरसूरिभि खरतर ।

१८४

॥ स० १५२५ वर्षे फाल्गुन शुदि १ श्रीमूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्रीपद्मनंदिदेवा तत्पट्टे श्रीसकलकीर्त्तिदेवा तत्पट्टे भ० श्रीविमलकीर्त्तिगुरुपदेशात् श्रीशान्तिनाथ हुबडज्ञातीय सा० नाढू भार्या कुभल सु० सा० कान्हा भा० रामति सु० लपराज भा० अजी भ्रातृ जेसग भा० जसमादे भ्र० गोपाल भा० पदमायी सु० श्रीराज स च वीर नित्य प्रणमति ।

---

१८१ मोतीशाहकी टूक, शत्रुंजय, पालीताणा
१८२ पुण्डरीकजीकी टूक, शत्रुंजय, पालीताणा
१८३ वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा
१८४ गणधर देव कुलिका भ्रामणी, मूलटूक, शत्रुंजय, पालीताणा

(कला की दृष्टि से यह प्रतिमा महत्वपूर्ण है, ग्रहाकृति के स्थान में पूर्ण प्रतिमाएं हैं ।)

१८५

// सं० १५२५ वर्षे फा० शु० ६ सोमे ऊकेशज्ञातीय श्रे० नरसी भार्या नयणादे पु० देपालकेन भार्या डाहीयुतेन स्वश्रेयसे विमलनाथ बिंबं का० प्र० श्रीऊकेशगच्छे **श्रीसिद्धाचार्यसंताने श्रीसिद्धसूरिभिः** //

१८५

मं० १५२५ वर्षे ज्येष्ठ शु० ६ गुरौ आणंदग्रामवासि वायडज्ञा० श्रे० सादा भा० सूहवदे चु० श्रे० सहसाकेन भार्या साधू पु० सावंत घोघ संसाली ....युतेन श्रेयसे श्रीआदिनाथबिंबं कारितं **श्रीसोमसुन्दरसूरि** श्री........//

१८७

स० १५२५ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ बुधे श्रीपल्लीवालज्ञातीय भा० वीरा भार्या रमाई सुत बाना भार्या वरकूकेन स्वश्रेयसे श्रीधर्मनाथविबं कारापितं श्रीचैत्रगच्छे भ० **श्रीगुणदेवसूरिसंताने श्रीजिनदेवसूरि**......../

१८८

सं० १५२६ माघ शुदि...........**लक्ष्मीसागरसूरिभिः** ।

१८९

सं० १५२६ वर्षे वै० शु० ५ प्राग्वाट्ज्ञातीय व्य० सीहा भार्या पूरी पुत्र व्य० महिणपालेण भा० भोली पुत्र ठाकुरसी तोला पांचा लाडादि-कुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीसुमतिनाथविव का० प्र० तपा **श्रीलक्ष्मीसागर-सूरिभिः** // सांवली

---

१८५. जैनमदिर जसकोर–धर्मशाला, पालीताणा

१८६. मूलवसही की भ्रामणी स्थित देवकुलिका, शत्रुंजय, पालीताणा

१८७-१८९. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१९०

॥ स० १५२७ वर्षे ज्येष्ठ शुदि १० बुधे श्रीमालज्ञातीय श्रे० जेसिग • पुत्र धर्मकेन भा० काऊ सुत मुजनसीहादिकुटुबयुतेन स्वभार्या (श्रेयसे) जीवितस्वामि श्रीशीतलनाथबिंब श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीपुण्यरत्नसूरीणामुपदेशेन का० प्र० विधिना वधूकाग्रामे ।

१९१

॥ स० १५२७ वर्षे वैशाष वदि ११ श्रीकोरंटगच्छे श्रीनन्नाचार्यसताने श्रीऊकेशवशे सा० कडूआ सु० सा० कामा भा० हर्षू पुत्र हरदासेन भा० वगू पु० स० यवसी वलिराजयुतेन मातृपित्रो श्रेयोर्थ श्रीआदिनाथबिंब का० प्र० श्रीकक्कसूरिपट्टे श्रीसावदेवसूरिभि ॥

१९२

॥ ५० ॥ स० १५२८ वर्षे ज्येष्ठ सुदि पचमी शुक्रे श्रीमालज्ञातीय उवागोत्रे प० गागा भ्रा० निर्वारि पु० मोकलेन स्वश्रेयसे श्रीवासुपूज्यबिंब का० प्र० श्रीपलिकीयगच्छे श्रीजनसूरिभि ।

१९३

स० १५२८ वैशाष सुदि ३ शनौ श्रीमालज्ञा० श्रे० हीरा भा० हीरादे पुत्र वयराकेन भार्या स्वश्रेयार्थं श्रीसभवनाथबिंब कारित प्र० तपागच्छेश श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभि । कलुलिवास्तव्य ।

१९४

स० १५२८ वर्ष वैशाष वदि ११ रवौउपकेशवशे सा० वाचा भार्या मापरि सुत राजाकेन भार्याकिस वरजूसहितेन श्रीसुविधिनाथबिंब कारापित प्रतिष्ठित श्रीजिनहर्षसूरिभि ॥

---

१९० नानावसही, शत्रुंजय, पालीताणा
१९१ खरटवज श्रीसघ-मन्दिर, शत्रुंजय, पालीताणा
१९२-१९४ नानावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

१९५

सं० १५२८ वर्षे माघ सुदि १३ प्राग्वाट् श्रेष्ठि जेसिंग भा० मांकू सु० श्रे० पासाकेन भा० संपूरी सुत कुरा सहजा भ्रातृ समधर भा० जाणी प्रमुखकुटुबयुतेन श्रीसंभवनाथबिबं का० प्र० तपा **रत्नशेखरसूरिपट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः**। सिद्धपुरी //

१९६

// सं० १५२८ वर्षे ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदश्यांतिथौ शुक्रे श्रीमालवंशीय चहचहियागोत्रे सा० देवा भा० हाली पु० रूडा भा० मंदोअरि पु० देवण वाला भा० थारू पु० टेका गिरराज वालाकेन स्वपुण्यार्थ श्रीशांतिनाथविवं का० प्र० श्रीबृहद्धगच्छे **श्रीमाणिक्यसुदरसूरिभिः** //

१९७

सं० १५२८ वर्षे ज्ये० सु० ८ कायथ/व० सिउ स० सा० देल्हा भा० डाही पुत्र सा० नपा भा० रुषमणि प्रमुखकुटुवयुतेन स्वश्रेयसे श्रीश्रेयांसनाथ-बिब कारितं प्रतिष्ठितं तपागच्छे **श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभिः** ।

१९८

सं० १५२९ वर्षे फा० व० ३ सोमे महीसानकवास्तव्य सं० वाछा भा० राजू सं० धमाकेन भा० रोहणी पुत्र गुणेश भा० पदमाई कूंणपाला-दियुतेन स्वश्रेयसे श्रीशांतिनाथविंवं का० प्र० तपागच्छे **श्रीरत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरिराजपादैः** । श्रीर्भवतु /

१९९

सं० १५२९ वर्पे वै० व० ४ शुक्रे उसवश० वाल्हू भा० नाल्ही भा० धाकू सुत व० भापरेन भा० भरमादे प्रमुखकुटुवयुतेन कारितं श्रीमुनिमुव्रत-विबं प्र० तपा **श्रीहेमसमुद्रसूरिभिः** । धारू श्रेयार्थ

---

१९५. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा
१९६. शांतिनाथमंदिर, शत्रुंजय, पालीताणा
१९७. मूर्त्तियों का पुराना कोठा, शत्रुंजय, पालीताणा
१९८. गोडीपार्श्वनाथ मंदिर, पालीताणा
१९९. वालावसही शत्रुंजय, पालीताणा

२००

॥ स० १५२९ वर्षे माघ सुदि ५ रवौ श्रीसूराणागोत्रे म० पोमू भा० पातहृणदे पुत्र स० देवा भार्या देवलदे पुण्यार्थं श्रीवासुपूज्यबिंब का० प्र० श्रीधर्मघोषगच्छे श्रीपद्मशेखरसूरि प०पद्मानन्दसूरिभि । ॥

२०१

स० १५३० वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ शनौ सा० साध भार्या सोमी पुत्र पाल्हा नापा सहितेन नाम्न्या श्राविकया बिंब कारित वृहद्धगच्छे श्रीअमरचन्द्रसूरिभि (प्र०) ।

२०२

॥ स० १५३० वप माघस वदि १ दिने प्राग्वाट्ज्ञा० वामण भा० वऊलदे पुत्र सा० हरिचद भार्या हीरू सुत नलाकेन उदादियुतेन स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंब का० प्र० तपागच्छे श्रीसोमसुदरसूरि शिष्य श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभि ॥

२०३

स० १५३० वर्षे महा शुदि १० शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० लाहा भा० लापणदे सुत पेता भार्यया राऊनाम्न्या सु० साजणसहसादिकुटुंबयुतया स्वश्रेयसे श्रीजीवितस्वामि श्रीसुमतिनाथबिंब श्रीपूर्णिमापक्षे श्रीगुणधीरसूरीणामु० का० प्र० विधिना कवोईयाला ।

२०४

स० १५३० वर्षे माघ शुदि १३ रवौ श्रीश्रीवशे श्रे० देवा भा० पाचू पु०श्रे० हापा भा० पहवी श्रे० महिराज (छत्रधारी पुरुष की आकृति) सुश्रावकेण भा० मातर सहितेन पितृश्रेयसे श्रीअचलगच्छेश श्रीजयकेशरिसूरीणामुपदेशेन सुमतिनाथबिंब कारित प्र० श्रीसेन ॥

---

२०० मोतीशाह की टूक, शत्रुजय, पालीताणा
२०१ २०३ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
२०४ गोडीपार्श्वनाथमन्दिर, पालीताणा

२०५

// सं० १५३० वर्षे वैशाष शुदि १० सोमे श्रीगंधारवास्तव्य श्रीश्रीमालज्ञातीय व्य० महीराज भा० हांछू सुत हंसा भा० वाल्ही वि० सालिगता भा० आसी श्रीराज भार्या हंसाई व्य० सहिसा सुत धनहल भा० हर्षाई श्रेयोर्थ श्रीआदिनाथबिबं कारितं प्रतिष्टि (ष्ठि) तं श्रीबृहत्तपापक्षे **श्रीविजयरत्नसूरिभिः** //

२०६

// सं० १५३० वर्षे फा० व० २ दिने ऊकेशज्ञातीय सा० काल्ह भा० कमसी भा० त्रनाथकेन भा० लाषू पुत्र सांडा भा० चांपू प्रमुखकुटुंव-युतेन स्वश्रेयसे श्रीश्रेयांस (नाथ) बिंब का० प्र० श्रीब्रह्माणीयगच्छे **श्रीउदयप्रभसूरिभिः** //

२०७

// सं० १५३१ वर्षे वैशाष वदि ६ सोमे श्रीऊएसवंशे मं० कडूआ भा० कीलहणदे पुत्र मं० नाथा भा० (छत्रधारी आकृति) लाडिकि श्राविकया पत्युः पुण्यार्थ श्रीशांतिनाथबिंवं कारितं / प्रति० श्रीअचलगच्छेश **श्रीजयकेसरिसूरिभिः** //श्री//

२०८

सं० १५३१ वर्षे वैशाष सुदि १३ सोमे श्रीश्रीमा० श्रे० वाघा सु० श्रे० जगनामित भा० मानू सुत लटकणेन पितृ श्रेयोर्थ श्रीसंभवनाथबिंवं का० प्रतिष्ठितं श्रीपिप्फलगच्छे **सालिभद्रसूरि** । गोरीआदकवास्तव्य ।

२०९

सं० १५३१ वर्षे श्रीअंचलगच्छेश **श्रीजयकेसरिसूरीणामुपदेशेन** श्रीश्रीमालज्ञातीय दो० मोटा भा० रत्तू वीरा भा० वानू पु० लपा सुश्रावकेण

---

२०५. जैनमंदिर, नरशी नाथा धर्मशाला, पालीताणा

२०६-२०८. गोडीपार्श्वनाथ मन्दिर, पालीताणा

२०९. वड़ामंदिर, पालीताणा

२१८

स० १५३६ वर्षे आषाढ सुदि ६ शुक्रे ऊकेशज्ञातीय रे श्रे० नागा भार्या नागलदे सुत सूराकेन भार्या सोनाई सुत शाणा निजमातृ सिवस साजणादिकुटुंबयुतेन श्रीआदिनाथबिंब का० प्र० श्रीपल्लीवालग० श्रीग्रजूण-सूरिभि // महिसाणानगरे //

२१९

स० १५३६ वर्षे माघ सुदि ९ सोमे प्रा० ज्ञाति० सा० दलसा भार्या राभ्र सुत स० चद्रा भार्या पामी भ्रातृ स० मीहा भार्या सहीकु सुत नाथा कुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीकुंथुनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीसूरिभि //

२२०

स० १५३६ वर्षे आषाढ सुदि २ रवौ श्रीश्रीमाल ज्ञा० नागा भा० गली सुत वीमल सिवा नेजा वीसलेन भा० माणिकि स्वपितृमातृश्रेयोर्थं श्रीश्रेयांसनाथबिंब कारित प्र० श्रीनागेंद्रगच्छे श्रीहेमरत्नसूरिभि //

२२१

// स० १५३६ वर्षे वैशाष वदि ११ शुक्रे श्रीस्तंभतीर्थवास्तव्य श्रीश्रीमालज्ञातीय सा० देवसी भा० देवलदे पु० रत्ना भा० रत्नादे सु० सा० परवतकेन स्वपितु श्रेयोऽर्थं श्रीसंभवनाथचतुर्विंशतिपट्ट कारित श्रीवृद्धतपापक्षे श्रीज्ञानसागरसूरि पट्टे श्रीउदयसागरसूरिभि //

२२२

// स० १५३६ माघ वदि ६ सोमे श्रीउसवंशे सुधीगोत्रे भ० मोखसी जूठा भा० मामलदे पुत्राभ्या जिणीआ रत्नापालाभ्या भ्रातृ सहजा पुण्यार्थ श्रीआदिनाथबिंब कारित श्रीकोरटगच्छे श्रीकक्कसूरि पट्टे श्रीसावदेव-सूरिभि प्रतिष्ठित // श्रीस्तंभतीर्थे //

२१८-२१९ बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२२०-२२१ मोतीशाहकी टूंक, शत्रुंजय, पालीताणा

२२२ शांतिनाथ मन्दिर, विमलवसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२२३

// सं० १५३७ वर्षे पोष शुदि ६ रवौ श्रीश्रीमालज्ञातीय सा० भोजा सुता मणकाई सा० महनाया कलत्रयुतया स्वश्रेयोर्थं श्रीशांतिनाथबिंबं कारितं प्र० श्रीआगमगच्छे **श्रीसिंहदत्तसूरि** पट्टे **श्रीसोमदेवसूरिभिः** //

२२४

// सं० १५३६ वर्षे वैशाष १० गुरौ // श्रीश्रीवंशे // श्रे० गुणीया भार्या तिजू पुत्र अमरा सुश्रावकेण (यहां छत्रधारी आकृति का भव्य अंकन है) भार्या अमरादे भ्रातृ रत्नासहिनेन पितुः पुण्यार्थं श्रीअंचलगच्छेश **श्रीजयकेशरिसूरीणामुपदेशेन** वासुपूज्यबिंबं का० प्रतिष्ठितं //श्री//

२२५

सं० १५४० वर्षे वै० शु० ७..................नामा ज्ञाति० व्यव हरिया भा० धारू सुत व्य० सालाकेन भा० जइता सु० महिसा वीसल समधर लषमादिकुटुंबयुतेन स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंबं का० तपा **श्रीलक्ष्मीसागर-सूरिभिः** प्रति०..................//

२२६

// सं० १५४० वर्षे........ ....प्राग्वाट्ज्ञातीय वा० लूणसिंह पवदा ....अंचलगच्छे.................,..................सूरिउपदेशेन प्रतिष्ठितं **श्रीसूरिभिः** ।

(अंचलगच्छ के आचार्य का नाम किसी ने मिटा दिया है)

२२७

---

२२३ वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२२४. गोडीपार्श्वनाथ मन्दिर, पालीताणा

२२५-२२७. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२२८

स० १५४१ वर्षे वशाप वदि ५ गुरौ श्रीप्राग्वाट्वशे म० हेमराज भार्या वाबी द्वितीय भार्या झमकू पुत्र म० माणिक सुश्रावकेण भार्या लापी वृद्धभ्रातृ देवदास लघुभ्रातृ शातिदासयुतेन • • श्रीजयशेखरसूरीणामुपदेशेन श्रीसुमतिनाथबिंब कारित प्र० श्रीसघेन /

२२९

स० १५४१ वर्षे सा० मेला भा० (परिकर का शेषाश खण्डित है) मातृपितृ श्रेयोर्थं पार्श्वनाथबिंब कारित प्र० श्रीभावचंद्रसूरीणामुपदेशेन ॥

२३०

स० १५४२ वर्षे माघ वदि १ दिने श्रीऊकेशवशे गोष्ठिकगोत्रे श्रे० सो भा० नयणा पु० श्रे० मडलिक भा० श्रीहर्षाई श्रीअजितनाथबिंब कारित स्वपुण्यार्थं प्रतिष्ठित श्रीजिनहर्षसूरिभि श्रीमडपे ॥

२३१

॥ स० १५४२ वर्षे वैशाप सुदि १० गुरौ श्रीऊकेशवशे कर्मदीयागोत्रे सा० मेहा भा० धारू पुत्र सा० कर्म्मसिंहेन तद्भार्याकर्म्मादि तत्पुत्र सा० पीमा देवा सिवा महिमादियुतेन स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनहर्षसूरिभि ॥ श्रीरस्तु ॥

२३२

स० १५४३ वर्षे वैशाप वदि १० शुक्रे हुबडज्ञातीय सा० हीरू भा० रिंनू तत्पुत्रा स० सदा स० साडा स० सदा भा० २ सोलपाई सोपाई स० साही भार्या सुपूरी तेन स्वमातृपितृस्वशुरपक्ष श्रेयार्थं श्रीसभ्भवनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीवृहत्तपागच्छे भ० श्रीधर्मरत्नसूरिभि । श्रीगधारवास्तव्य ॥

२२८-२३२ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

२३३

// सं० १५४३ वर्षे वैशाष बदि १० शुक्रे गूर्जैरज्ञातीय म० गोपाल भा० हीरूनाम्न्या सं० वइग भा० वलाबाई सुत सारंग भा० खनाई सु० लक्ष्मोदास प्रमुखकुटुम्बयुतया श्रीआदिनाथबिंबंकारितं आगमगच्छे **श्रीजिनचन्द्रसूरिभिः ।**

२३४

// सं० १५४४ वर्षे वैशाप सुदि ३ दिने श्रीऊकेशवंशे साकरीयागोत्रे सा० सेल्हा भार्या बाई श्राविकया पुत्र सा० परबतसहितया स्वश्रेयोर्थ श्रीकुंथुनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे **श्रीजिनचन्द्रसूरिपट्टे श्रीजिनसमुद्रसूरिभिः ।** //

२३४ अ

// स० १५४४ वर्षे वैशाष शुदि ६ गुरौ श्रीअणहिलपत्तनवास्तव्य श्रीश्रीमालज्ञातीय सं० गीला भार्या दूबी सुत....शा० रवाईयुतया स्वकुटुम्ब श्रेयसे श्रीश्रेयांसनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं भ० **श्री धर्मरत्नसूरिभिः** श्रीबृहत्तपापक्षे // श्रीरस्तु //

२३४ ब

// सं० १५४५ वर्षे पो० ५ सोमे श्रीश्रीवंशे सुगन्धी पंचायण भार्या मूला सुश्राविकया पुत्र समडलिकेन........वरि सहितया श्रेयसे श्रीपार्श्वनाथ-बिंबं कारितं प्रतिष्ठितं पिप्पलगच्छे **पद्मानन्दसूरिणां** श्रीअहमदा-वादवास्तव्य //

२३५

// सं० १५४६ वष माघ मुदि १० रवौ श्रीश्रीमालज्ञा० व्यव० गांगा भा० सुत भोजा भा० आल्हणदे सु० व्यव० हर्षा सलपा जुग शाणा समग्रं

२३३-२३४. बालाव्रसही शत्रुंजय, पालीताणा

२३४ अ नटोदादा की टूंक, शत्रुंजय, पालीताणा

२३४ ब वालावसही, शत्रुंजय. पालीताणा

२३५ बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

सूदास लपा भार्या पुहवी स्वभर्तृ श्रेयसे श्रीआदिनाथबिंब का० प्र० श्रीआगमगच्छे भ० श्रीमुनिरत्नसूरिभि अठियाणावास्तव्य ॥

२३६

इसी आचार्य का एक और लेख बालावसही की खण्डित प्रतिमा पर विना स० का इस प्रकार प्राप्त है—

• जेसा मेधा मागा भा० रगी सहितेन श्रीपद्मप्रभबिं० का० प्र० श्रीआगमगच्छे श्रीमुनिरत्नसूरिभि दोणाडवास्तव्य ॥

२३७

॥ स० १५४७ वर्षे वैशाप सुदि ३ सोमे उसवालज्ञातीय श्रे० देवा० भा० देवलदे सुत कावाकेन भार्या गागीसहितेन स्वश्रेयोर्थ श्रीनमिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित द्विवदनीकगच्छे श्रीसिद्धसूरिभि /वृद्धशापाया/वरिजा-ग्रामे ॥

२३८

॥ स० १५४७ वर्षे वैशाप सुदि ३ सोमे उसवालज्ञातीय म० देवदास भार्या रगी पुत्र लषमणि-त्रेणाभ्या स्वपितृ श्रेयोर्थं श्रीशांतिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित श्रीसूरिभि ॥ द्विवदनीकगच्छे श्री सिद्धसूरिणामुपदेशेन /

२३९

सवत् १५४७ वर्षे माघ शुदि १३ रवौ गाधारवास्तव्य श्रीमाली ज्ञा० भा० हीरा भा० राजू कुसी भोजाकेन भा० भरमादे भ्रातृ हासा पासवीर प्र० कुटुम्बयुतेन निजश्रेयसे श्रीपार्श्वनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित तपागच्छे ॥

२३६-२३८ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
२३९ गोडीपार्श्वनाथमंदिर, पालीताणा

२४०

संवत् १५४७ वर्षे माघ सुदि १३ रवौ ऊकेशवंशे संखवालेचीगोत्रे सा० षीमा भा० वाहालू पुत्र सा० पेथा भ्रातृ सा० कुदाकेन भा० कपूराई प्रमु० कुटुंबयुतेन पूर्वज श्रेयसे श्रीवासुपूज्यबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं श्रीसंडेरगच्छे **श्रीसुमतिसूरिभिः** // कल्याणमस्तु //

२४१

सं० १५४८ वर्षे कात्तिक सुदि ११ गुरौ श्रीश्रीमालज्ञातीय धामी गोवल भा० आपू सु० वावा भा० गणपति भूपति स्वश्रेयसे श्रीचन्द्रप्रभ-स्वामि वि (बिंबं) का० प्र० चैत्रगच्छे **श्रीसोमदेवसूरिभिः** प्रतिष्ठितं //

२४२

सं० १५४८ वर्षे वैशा(ख),.........पट्टे **मल्लीभूषण** श्रे० मणोर भा० राणी सुता कुअरि पं० जोगा सुत देवदासेन परिणिता कुँअरि.........
(परिकर खण्डित है)

२४३

सं० १५४८ वर्षे कात्तिक सुदि ११ गुरौ श्रीश्री ज्ञा० श्रेष्टि पाता भा० मरगदी सुत गोना षोना भा० लपी स्वजीवनस्वामि श्रीधर्मनाथ बिं० का० चैत्रगच्छे (छैनी से नाम काट दिया है) भ० **सोमदेवसूरिभिः** / कुमड़ावास्तव्यः //

२४४

// सं० १५४८ वर्षे वैशाप सुदि १० सोमे वटपद्रनगरे भावसार वांगा भार्या हर्षू पुत्र गोवल भा० रनाई (छत्रधारी आकृति) सुश्राविकया

---

२४०. मोतीशाह की टूक, शत्रुंजय, पालीताणा
२४१. बड़ामन्दिर, पालीताणा
२४२, जैनमंदिर नरशी नाथा–जैन धर्मशाला, पालीताणा
२४३. जैनमंदिर पंजाबी जैन धर्मशाला, पालीताणा
२४४. मोतीशाह की टूंक, शत्रुंजय, पालीताणा

स्वपुत्र पुण्यार्थं श्रीअचलगच्छेश श्रीसिद्धान्तसागरसूरीणामुपदेशेन श्रीसभवनाथबिब कारित प्रतिष्ठित श्रीसघेन ॥ ॥

२४५

॥ स० १५४८ वर्षे वैशाष सुदि ३ रवौ श्रीश्रीमालज्ञातीय म० देवसी भा० देल्हणदे पुत्र साहिजाकेन भार्या धनी पुत्र गगदास लहू हासा भ्रातृ कीपा प्रमुखकुटुवयुतेन पितृनिमित्त स्वश्रेयसे च / श्रीकुथुनाथबिब श्रीपूर्णिमापक्षे श्री सौभाग्यरत्नसूरीणामुपदेशेन का० पृ० (? प्र) विधिना लिवासीग्रामे ॥

२४६

स० १५४६ वर्षे वै० सु० १० शु० श्रीउ० (वैशाष सुदि दशमी शुक्रवासरे ऊकेश) ज्ञा० (तीय) पीहरेवागोत्रे साह भावड भा० भरमादे आत्मश्रेयोर्थं श्रीजीवित स्वामी श्रीसुविधिनाथबिब कारापित प्रतिष्ठित श्रीउसवालगच्छे श्रीकक्कसूरि पट्टे श्रीदेवगुप्तसूरिभि ॥

२४७

स० १५४६ वर्षे येष्ठ (ज्येष्ठ) सुदि सातमि बुध वीसलनगरवास्तव्य प्राग्वाट्ज्ञातीय व्य० दोईयाकेन भा० जसोमतियुतेन पुत्रपुत्री श्रेयोर्थं श्रीपार्श्वनाथबिब कारित प्रतिष्ठित श्रीउदयसागरसूरिभि ॥ श्रीरस्तु ॥

२४८

॥ स० १५५१ वर्षे वै० शु० १३ गुरौ प्राग्वाट् ज्ञा० श्रे० सिवा भा० जीविणि पुत्र श्रे० रहीआ भा० धनी भ्रातृ सोमाकेन भा० धर्मिणि पुत्र मेघादियुतेन स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिब का० प्र० तपागच्छे श्रीसुमतिसाधुसूरि पट्टे श्रीहेमविमलसूरिभि । महिसाणावास्तव्य /

---

२४५ सुमतिनाथमदिर, बाबू माधवलाल की धर्मशाला, पालीताणा
२४६-२४८ वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

कुटुंबयुतेन श्रीशीतलनाथबिंबं का० प्र० पल्लीवाल **नन्नसूरि** पट्टे **श्रीउज्जोयणसूरिभिः** ॥

२५९

॥ सं० १५६४ वर्षे ज्येष्ठ सुदि २ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय व्य० पूना भार्या झमकू सुत व्यव० हावा भार्या मरगादि सुत व्यव० षेताकेन भार्या हीरू सुत थावर प्रमुख कुटुबयुतेन पितृमातृ श्रेयसे श्रीकुथुनाथचतुर्विंशतिपट्टः पूर्णिमापक्षे **श्रीगुणधीरसूरि** पट्टे **श्रीसौभाग्यरत्नसूरीणामुपदेशेन** कारितं विधिना प्रतिष्ठितं च रामपल्लीग्रामे ॥ श्रीरस्तु ॥

२६०

सं० १५६४ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ११ शनो प्राग्वाट् ज्ञा० सा० गोइंद भा० माणिकि पु० शिवदास भा० गंगाई पुत्र सा० धनजी सा० हंसजी सा० भीमजी प्रमुखयुतया स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं तपागच्छनायक **श्रीहेमविमलसूरिभिः** ॥छ॥ श्रीकोरंटगच्छे **श्रीनन्नसूरिभिः** ॥

२६१

सं० १५६५ वर्षे पोष सुदि १२ बुधे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० डाहा (खण्डित)·········पुत्र पोचा मेला भा० वगू सुत माणिक पोचाकेन भ्रातृनिमित्तं श्रीसुविधिनाथबिंबं पू० (पूर्णिमा) पक्षे भ० **श्रीलक्ष्मीप्रभसूरि** पट्टे **श्रीसुमतिप्रभसूरि** उपदेशेन प्रतिष्ठितं । पीपरलाग्रामे ॥

२६२

॥ सं० १५६५ वर्षे माह वदि ९ दिने रधालियावासि प्रज्ञ० सा० जेसा भा० देमी सा० जइताकेन भा० पूरी वृद्धभ्रातृ सा० सोमा भा० सोल्ही सु० मंगा हणज भीला··············हासादि कु (टुंब) युतेन लघु भ्रा० (ता) हाला श्रेयोर्थ श्रीधर्मनाथबिंबं का० प्र० गच्छनायक **श्रीहेमविमलसूरिभिः** ।

---

२५९. बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२६०. गोडीपार्श्वनाथमंदिर, पालीताणा

२६१-२६२. बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२५४

॥ स० १५५४ वर्षे माघ वदि २ गुरौ उसवालज्ञातीय सा० अदा भा० अणपमदे सु० सा० भोजा भा० भीमिणि सु० सा० वनवीरकेन भा० वगू प्र० कुटुंवयुतेन श्रीस्तम्भतीर्थे श्रीआदिनाथबिंब का० प्रतिष्ठितं श्रीवृद्धतपापक्षे श्रीउदयसागरसूरिभि ॥ श्री ॥

२५५

स० १५५४ वर्षे आषाढ सुदि २ दिने वद्धनगरवासि नागरज्ञाति श्रे० माला भा० देमी पु० श्रे० राजा भोजा महिराज भभड मालाकेन भार्यापुत्रयुतै श्रीसुमतिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित तपागच्छनायक श्रीहेम-विमलसूरिभि । नलीवरे ।

२५६

स० १५५६ वर्षे ज्येष्ठ वदि १२ उसवालज्ञातीय ' ' भा० आल्ही श्रेयसे श्री चतुर्विंशति पट्ट का० प्र० श्रीरुद्रपल्लीयगच्छे श्रीहर्षसुंदर-सूरिभि ॥।

(इस लेख मे मणिचद्रसूरि का नाम भी पढा जाता है)

२५७

स० १५५८ वर्षे फागुण सुदि १२ शुक्रे ऊकेशवशे गाधीगोत्रे अंबिकाभक्त सा० छाजू सुत सेधा पु० सूरा भा० मेथाई सुत साउया भा० मकूनाम्न्या स्वश्रेयोर्थं श्रीसुमतिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित मलधारगच्छे श्रीलक्ष्मीसागरसूरिभि ।

२५८

॥ स० १५५८ वर्षे चैत्र वदि १३ सोमे उपकेशज्ञा० वर्द्धनगोत्रे श्रे० वना भार्या वनादे सुत श्रे० जिणदासकेन भा० जालणदे पुत्र राजा साडादि-

---

२५४-२५६, बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
२५७ जैनमदिर, मोतीसुखीया की धर्मशाला, पालीताणा
२५८ श्रीजिनदत्तसूरीश्वरजी की दादावाडी, पालीताणा

कुटुंबयुतेन श्रीशीतलनाथबिंबं का० प्र० पल्लीवाल **नन्नसूरि** पट्टे **श्रीउज्जोयणसूरिभिः** ॥

२५९

॥ सं० १५६४ वर्षे ज्येष्ठ सुदि २ सोमे श्रीश्रीमालज्ञातीय व्य० पूना भार्या झमकू सुत व्यव० हावा भार्या मरगादि सुत व्यव० षेताकेन भार्या हीरू सुत थावर प्रमुख कुटुबयुतेन पितृमातृ श्रेयसे श्रीकुंथुनाथचतुर्विंशतिपट्टः पूर्णिमापक्षे **श्रीगुणधीरसूरि** पट्टे **श्रीसौभाग्यरत्नसूरीणामुपदेशेन** कारितं विधिना प्रतिष्ठितं च रामपल्लीग्रामे ॥ श्रीरस्तु ॥

२६०

सं० १५६४ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ११ शनो प्राग्वाट् ज्ञा० सा० गोइंद भा० माणिकि पु० शिवदास भा० गंगाई पुत्र सा० धनजी सा० हंसजी सा० भीमजी प्रमुखयुतया स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं तपागच्छनायक **श्रीहेमविमलसूरिभिः** ॥छ॥ श्रीकोरंटगच्छे **श्रीनन्नसूरिभिः** ॥

२६१

सं० १५६५ वर्षे पोष सुदि १२ बुधे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० डाहा (खण्डित)······· ··· ····पुत्र पोचा मेला भा० वगू सुत माणिक पोचाकेन भ्रातृनिमित्तं श्रीसुविधिनाथबिंबं पू० (पूर्णिमा) पक्षे भ० **श्रीलक्ष्मीप्रभसूरि** पट्टे **श्रीसुमतिप्रभसूरि** उपदेशेन प्रतिष्ठितं। पीपरलाग्रामे ॥

२६२

॥ सं० १५६५ वर्षे माह वदि ९ दिने रधालियावासि प्रज्ञ० सा० जेसा भा० देमी सा० जइताकेन भा० पूरी वृद्धभ्रातृ सा० सोमा भा० सोल्ही सु० मंगा हणज भीला················हासादि कु (टुंब) युतेन लघु भ्रा० (ता) हाला श्रेयोर्थ श्रीधर्मनाथबिंबं का० प्र० गच्छनायक **श्रीहेमविमलसूरिभिः** ।

---

२५९. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२६०. गोडीपार्श्वनाथमंदिर, पालीताणा

२६१-२६२. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२६३

// स० १५६६ वर्षे माह वदि ६ दिने प्राग्वाट्ज्ञातीय पारधि लाईआ भा० हेमाई मुत देवदास भा० देवलदेसहितेन श्रीचन्द्रप्रभस्वामिबिंव कारित प्रतिष्ठित द्विवदनीकगच्छे भ० **श्रीसिद्धसूरिणा** पट्टे **श्रीकक्कसूरिभि** । कालूपुरग्रामे //

२६४

// स० १५६६ वर्षे ज्येष्ठ शुदि ५ सोमे श्रीमाल , श्रावाकेन शीतलनार्थबिंव का० प्र० **श्रीसूरिभि** /

२६५

स० १५६७ वर्षे वैशाप सुदि १० भीनमाल वास्तव्य श्रीश्रीमाल-ज्ञातीय श्रे० भोजा भार्या जीवादे सुत श्रे० पाल्हा भा० माणिकि सुत श्रे० ठाकर पीधा श्रे० सिघा समसो कुटुंव श्रियार्थ श्रीश्रीआदिनार्थबिंव कारित प्रतिष्ठित **श्रीसूरिभि** // श्री //

२६६

स० १५६८ व० शुक्र कावडगोत्रे उसवाल दो० लापा भा० रगाई पु० दो० सहसाकेन भा० चादू द्वि० रागवादे प० भीमसी देवराजादि कूटुंवयुतेन स्वश्रेयसे श्रीआदिनार्थबिंव कारित सडेरगच्छे **श्रीसूरिभि** प्रतिष्ठित । तीजाउग्नगरे

२६७

स० १५६६ वर्षे वैशाप सुदि १३ बुधे श्रीस्तंभतीथ उएसवंशे मीठडीयागोत्रे सा० सहसधीर (छत्रधारी पुरुप की भव्याकृति अंकित है) पुत्र जयचद्र भार्या पनाई पु० अमीचद भार्या अमरादे सु० सोमचद भार्या लाभू जयचद्रपुण्यार्थ श्रीअचलगच्छे **श्रीभावसागरसूरीणामुपदेशेन** बिंब कारित श्रीसघेन प्रतिष्ठित ।

२६३-२६४ बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा
२६५ मोतीशाह की टूक, शत्रुंजय, पालीताणा
२६६-२६७ बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२६८

// सं० १५७० वर्षे आषाढ़ सुदि २ रवौ श्रीमालान्वये डउगोत्रेश्रीचंद पुत्र सा० चैताह्वेण अजयराज रायमल्ल आसधीर अजा भार्या कुलि पुत्र सा० योगा ईल्हा राकत नगा सा० नरपाल सा० योगा पुत्र महिपाल ठा ईल्हा भार्या ईल्हणद पुत्र सहसमल्ल सोहमल्ल साह आसधीर भार्या हासी सिगारदे पुत्र रायशी साह सहसमल्ल पुत्र..........कीर्त्तिसिंह.......... कृत बंभा शकता देव पुत्र षेता जइतामाल । षेता पुत्र भैरोदासा साह जइतमालेन राया शकतेन पुण्यार्थ श्रीशांतिनाथ चउवीसटो कारितः प्र० श्रीधर्मघोषगच्छे भ० **श्रीसाधुरत्नसूरि** पट्टे **श्रीकमलप्रभसूरि** पट्टे **उदयप्रभसूरिभिः** /

(ऊपर के भाग में • साह रायमल्ल पुत्र हेमा पुत्र जगपति ठाकुरसी • अंकित है)

२६९

सं० १५७२ वर्षे वैशाष व० सोमे श्रीश्रीप्राग्वाट्ज्ञातीय दोसी सहिजा सुत दो० भरणा भार्या कूंयरी सुत दोसी बहु भार्या वल्हादे तेन आत्मपितृमातृणां श्रेयसे श्रीसंभवनाथस्यचतुर्विंशतिपट्टो कारापितः नागेंद्रगच्छे भ० **श्रीगुणरत्नसूरि** पट्टे आचार्य **श्रीगुणवर्द्धनसूरिभिः** प्रतिष्ठितं श्रीजीर्णदूर्गवास्तव्य //

२७०

सं० १५७३ वर्षे फागुण सुदि २ रवौ श्रीवीरवंशे सं० महिराज भार्या नागिणि पुत्र सा० सोमा भा० नाथी पुत्र संगपालेन भा० (छत्रधारी आकृति) क्षमी भ्रातृ स० धारणेन देवासहितेन स्वश्रेयसे श्रीअंचलगच्छे **श्रीभावसागरसूरीणामुपदेशेन** श्रीकुथुनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठतं श्रीसंघेन / पत्तने // श्री //

---

२६८. धनवसही, तलहटी, पालीताणा

२६९-२७०. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२७१

||स० १५७३ वर्षे माघ सुदि १३ शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० काला भार्या फड सुत ४ नाम श्रेयार्थ भ्रातृ हर्षा भार्या मनोरी श्रीशातिनाथबिंब कारित आगमगच्छे श्रीहेमरत्नसूरिगुरुपदेशेन कारापित ||

२७२

|| स० १५७३ वर्ष चैत्र वदि अष्टमी रवौ उसवासज्ञातीय बलाही साह अमीपाल भार्या करमाई पुत्र साह धरणर मातृनिमित्त श्रशातिनाथ-बिंब कारापित परतरगच्छे श्रीजिनहससूरि प्रतिष्ठित । श्रीपत्तन-वास्तव्य ||

२७३

स० १५७६ वर्षे वैशाष शुदि ५ गुरौ श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० वारुण भा० सपी सुत वाहादि वाघा रगा वहूदे सुत वछाय तेन आत्मश्रेयसे पितृमातृनिमित्त श्रीधमनाथबिंब का० प्र० श्रीब्रह्माणगच्छे श्रीविमलसूरिभि || मीहरवास्तव्य || ७४।

२७४

स० १५७७ वर्षे ज्येष्ठ शुदि ५ शनौ प्राग्वाट्ज्ञातीय दो० वाच्छा भार्या रामेति पुत्र श्रे० सीपा श्रीराज श्रीरग शाणा सिवा प्रमुखकुटुवयुतेन स्वश्रेयोर्थ श्रीअनतनाथबिंब कारित तपागच्छे श्रीहेमविमलसूरिभि प्रतिष्ठित श्रीरस्तु ||

२७५

स० १५७७ वर्षे येष्ट (ज्येष्ठ) सुदि ५ शनौ श्रीचपकपुरवास्तव्य उपकेशज्ञातीय साह देवराज भा० रमाई सु० माणिक भा० माल्हणदे सु०

---

२७१ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
२७२ बपटवज श्रीसघ-मदिर, शत्रुजय, पालीताणा
२७३-२७४ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
२७५ मोतीशाह की टूक, शत्रुजय, पालीताणा

साह थावर समस्तकुटुंबेन सा० माणिक भ्रातृ दो० वत्सराजनिमित्तं श्रीसुमतिनाथबिंबं कारितं श्रीवृद्धतपापक्षे भट्टारक **श्रीधनरत्नसूरिभिः** प्रतिष्ठितं। धारकस्य मोक्षं कुरु कुरु ॥

२७६

सं० १५७८ वर्षे माह वदि ८ रवौ महिसाण (क) वासि प्राग्वाट्-ज्ञातीय लघुशाखायां श्रीचंद भा० सूहवदे पुत्र सा० लटकण नाम्ना भार्याभ्रातृपुत्रपोत्रादिपरिवारयुतेन श्रीवासुपूज्यबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं तपागच्छे **श्रीहेमविमलसूरिभिः** ॥ श्रीरस्तु ॥ श्री ॥

२७७

सं० १५७९ श्रीप्राग्वाट्ज्ञा० हेमा भार्या भावलदे पुत्र सोमाकेन प्रबा विजाहर भा०............दि निज श्रेयसे श्रीअजितनाथचतुर्विंशतिपट्टः कारितः प्रति० **श्रीसूरिभिः** । श्री श्री श्री ।

२७८

सं० १५८३ वर्षे वैशाष सुदि ३ दिने उसवालज्ञातीय मं० वानर रही पु० मं० नाकर मं० भाजा मं० मा भार्या हर्षादि पु० पेथड़ भोजा भार्या भावलदे प्रमुखकुटुंवसहितेन श्रेयसे श्रीसुविधानाथबिंबं कारितं प्रति० बिवंदणिकगच्छे **श्रीदेवगुप्तसूरिभिः** । भारयग्रामे ।

२७९

॥ सं० १५८४ वर्षे चैत्र वदि ५ गुरौ प्राग्वाट्ज्ञातीय वीसलनगर-वास्तव्य सं० रत्नाकेन भा० पूतलि पुत्र सं० कान्हा पुत्रा रमाई प्रमुख-युतेन श्रेयोर्थ श्रीकुंथुनाथबिंबं कारितं तपागच्छे **श्रीहेमविमलसूरि** पट्टे **श्रीसौभाग्यहर्षसूरिभिः** ॥

२७६-२७८. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा
२७९. मोतीशाह की टूक, शत्रुंजय, पालीताणा

२८०

स० १५८४ वर्षे माघ सुदि ६ गुरौ प्राग्वाट्ज्ञातीय दो० आसधर भा० माणिकि पुत्र हरपा भार्या हरपादे पुत्री रूपाई आत्मश्रेयसे श्रीचद्र-प्रभस्वामिबिंव कारित प्रतिष्ठित तपागच्छे श्रीसौभाग्यहरषसूरिभि । वसतपुरवास्तव्य /

२८१

स० १५८७ वर्षे वैशाप श्रीश्रीवशे भार्या · · · · पुत्र कीका भार्या पुत्र तेजपाल सुश्रावकेण स्वश्रेयोर्थं श्रीपार्श्वनाथबिंव कारित प्रतिष्ठित श्रीधर्मरत्नसूरिभि वटपद्रवास्तव्य //

२८२

स० १५८७ वर्षे कार्तिक वदि ५ गुरौ श्रीमालज्ञातीय पिता अर्जुन सु० वयरा भा० मूलदे सुत वजेसीधनाकेन पितृश्रेयोर्थं श्रीचद्रप्रभबिंव कारित पूर्णिमापक्षे श्रीसाधुरत्नसूरीणामुपदेशेन प्रतिष्ठित विधिना जीवतस्वामि //

२८३

स० १५६० वर्षे वैशाप सुदि रवौ मोढज्ञातीय हसराज भार्या पुत्र व० लपमाई भार्या धन्नी भ्रातृज गणीस-युतेन स्वश्रेयसे स्वभगिनी रगाई पुण्यार्थं श्रीशातिनाथबिंव कारित प्रतिष्ठित श्रीआणदविमलसूरिभि /

२८४

स० १५९१ वर्षे पोप व० ११ गुरौ श्रीपत्तने उसवाललघुशापाया दो० टाउआ भा० लिंगी पु० सका भा० गुराई नाम्न्या स्वश्रेयोर्थं (यहा छत्रधर

२८०-२८१ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
२८२ मोतीशाहकी टूक, शत्रुजय, पालीताणा
२८३-२८४ बालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

पुरुष के स्थान पर ऐसा भाव प्रदर्शित है मानों हनुमान पर्वत उठाकर भाग रहे हों।) पुत्र वीरपाल, अमीपाल श्रीग्रंचलगच्छे **श्रीगुणनिधानसूरीणामुपदेशेन** प्रतिष्ठितं श्रीसंघेन।

(ऊपर का लेख केवल प्रतिमा पर ही है। परिकर लेख शून्य है।)

२८५

// सं० १५६१ वर्षे वैशाष वदि ६ शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय संघवी बाहा सं० वीका भार्या कर्णू सु० सं० वरलांगेन भार्या २ विजलदे द्विरमाई सु० अदा श्रीपाल देपालसहितेन आत्मश्रेयसे श्रीश्रेयांसनाथबिंबं कारितं चैत्रगच्छे **श्रीविजयदेवसूरिभिः** प्रतिष्ठितं // पूर्वकरणपद्रवास्तव्य // (पोकरण ?)

सत्रहवीं शताब्दी

२८६

सं० १६०२ श्रीविमलनाथ......—.....दानसूरि............

२८७

सं० १६०३ वर्षे चैत्र वदि १३ रवौ उ०............गोत्रे सा० नरपाल भा० रंगाई पुत्र महिराज, सोहराज, धनराज। महिराज भार्या धनादे पुत्र धनासुतेन स्वपुण्यार्थं श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारापितं प्रतितिष्ठितं श्रीसंडेरगच्छे भ० **यशोभद्रसूरिसंताने श्रीशांतिसूरिभिः** //

---

२८५. कपड़वंज का मंदिर, शत्रुंजय, पालीताणा

२८६. गोडीपार्श्वनाथमन्दिर, पालीताणा

२८७. बड़ामंदिर, पालीताणा

२८८

स० १६१४ वर्षे वैशाष शुदि २ वुधो प्राग्वाट्ज्ञातीय दोसी देवा भार्या देमति सु० दो वना भार्या वनादे सुत दो० वधुजी नाम्ना पितु श्रेयसे श्रीपार्श्वनाथविंव कारापित तपागच्छाधिराज भट्टारक श्रीविजयदानसूरिशिष्य प० धर्मविमलगणिना प्रतिष्टि (ष्ठि) तमिद मगल भूयात् ॥

२८९

स० १६१८ वर्षे फागुण वदि २ शुक्रे श्रीश्रीमालज्ञातीय साहु देवराज भा० लपमादे सुत श्रीचद भा० श्रीयादे सुत सवुर भा० सिंगारदे पुत्र सारण भा० श्रीधरमनाथपचतीरथी प्रतिमा कराव्यत (करापित) श्रीतपागच्छनायक श्रीवरु दानसूरिभि प्रति० श्रीस्तभतीर्थवास्तव्य ।

२९०

१६२२ पोप वदि दिने अहमदावादे उसवशीय सा० गणपति भा० सरूपदे सुत जसुकेन भा० मूलीसहितेन स्वश्रेयोर्थ श्रीनमिनाथविंव कारित प्रतिष्ठित श्रीतपागच्छे हीरविजयसूरिभि ॥

२९१

स० १६२४ वर्षे फाल्गुण शु० ३ रवौ लघुशापाय श्रीमालज्ञातीय दो० कीका भार्या वाई मनाई सुत देवा हरचदसुयुतेन प्रतिष्ठापित च श्री श्रीनमिनाथविंव । श्रीहीरविजयसूरिभि प्रतिष्ठित स्वश्रेयोर्थं ॥

२९२

॥ स० १५२७ वर्षे वैशाख शुदि शुक्रे सा० साहू सपा गादहीयाणागोत्रे उकेशवशे सा० कर्मसी भार्या हसादे पुत्र सा० तिहूअण भार्या देवलदे

---

२८८ जेनमदिर, केशवजी नाटा की धर्मशाला, पालीताणा

२८९ वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

२९० मोतीशाह की टूक, शत्रुजय, पालीताणा

२९१ वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

२९२ श्राविकाश्रम, पालीताणा

पुत्र हरिचंद भार्या हीरादे लघु सा० डाही..............श्राविका डाडिमदे पु० रायसिंह पुत्र सहसकिरण उदयसिंह ठाकुरसीप्रमुखपरिवारयुतैः देवलदे-पुण्यार्थ श्रीविमलनाथबिबं कारितं श्रीबृहत्खरतरगच्छे श्रीपूज्य **श्रीजिनसिंह-सूरिभिः** प्रतिष्ठितं // पत्तनवास्तव्य //

२९३

सं० १६२८ वर्षे शाके १४९४ प्र (प्रवर्त्तमाने) प्र० (थम) वैशाष सुदि बुधे उ० (उत्तरा) फा० (फाल्गुनी) नक्षत्रे उसवंशे...... .... वासुपूज्यबिंबं कारितं प्रति० **श्रीहीरविजयसूरि** तया..........

२९४

सं० १६३० वर्षे पोष वदि ४ सोम बुरानपुरवास्तव्य.............. श्रीसुमतिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं **श्रीहीरविजयसूरिभिः** //

२९५

सं० १६४८ वर्षे माघसित ६ दिने श्रीवहीरपुरवास्तव्य श्रीमाली-ज्ञातीय वीरजी भार्या वाल्ह वाई नाम्न्या श्रेयसे श्रीसंभवनाथबिंबं का० प्र० च श्रीतपागच्छे **हीरविजयसूरि** पट्टालंकर **श्रीविजयसेनसूरिभिः** श्रीजैनागमवृत्तिविधायक कुमतिध्वांत..........महोपाध्याय **श्रीधर्मसागर-गणिशिष्य** श्री..........//

२९६

सं० १६५१ वर्षे मार्गशीर्ष वदि ४ गुरौ दो० वधराजकेन निजश्रेयसे श्रीशांतिनाथबिंब कारितं प्रतिष्ठितं च तपागच्छे **श्री हीरविजयसूरीश्वरैः** // भार्या मोतादे सुत धनजी प्रमुखकुटुंबयुतेन श्रीदीवबंदिरवास्तव्येन // श्रीरस्तु //

२९०--२९५. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

२९६. सुमतिनाथ-मंदिर, बाबू माधवलालजी धर्मशाला, पालीताणा

२९७

स० १६५५ वर्षे माघ वदि ४ ऊकेश देवजी मादा , रवाई नाम्न्या श्रीआदिनाथबिंब कारित प्रनिष्ठित उपाध्याय श्रीशातिचद्रगणि प्रमुखे विजयसेनसूरिभि । श्रीतपागच्छे ॥

२९८

सं० १६५८ अचलगच्छे श्रीधर्ममूर्त्तिसूरि उपदे स० गोपाल भा० गगादेकया सुपार्श्वबिंब प्रतिष्ठिन ।

२९९

स० १६६३ वैशाप शुदि १२ सोमे श्रीमाली मा० जीवाकेन श्रीसुमतिनाथबिंब का० अचलगच्छे धर्ममूर्त्तिसूरय प्रति० श्रीसघेन ॥

२९९ अ

१६६९ वर्षे ज्येष्ट पदमल पुत्र वीका आदिनाथबिंब प्रतिष्ठित श्रीगुणसुदरसूरिशिष्य धर्मदेवसूरिभि ॥

३००

म० १६८३ वर्षे आपाढ वद ४ गुरौ जालऊरवास्तव्य उकेशाम्नाये कर्मचद भा० कपूरदे नाम्न्या श्रीनमिनाथबिं० का० प्रति० तपागच्छे भ० श्रीविजयदेवसूरिभि । गाडागोत्रे ।

३०१

स० १६९३ वर्षे वडशाप गिरौ (गुरौ) वास्तव्यश्रीपत्तननगरे उसवालज्ञातीय वृद्धशापाया सोनी तेजपाल सुत सोनी विद्याधर सुत सोनी

---

९७ धनवसही, तलहटी, पालीताणा
२९८ गोडीपार्श्वनाथ मदिर, पालीताणा
२९९-३०० वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
३०१ जैन मन्दिर जसकौरकी धर्मशाला, पालीताणा

रामजी भार्या बाई अजाई सुत सोनी वमलदास (विमलदास ?) तां सेती धर्मदास सोनी रूपचंद पुत्री बाई शांति एतेन श्रीपार्श्वनाथबिंबं कारायितं श्रीतपागच्छधिराज श्रीविजयदेवसूरि राज्ये प्रतिष्ठितं श्रीआचार्य श्रीविजयसिंहसूरिभिः //

३०२

// सं० १६९४ वर्षे माघ सुदि ३ गुरु देवकुलपाटकवासि.................. राजपाल भा० पूराई प्रमुखकुटुंबयुतेन श्रीसुमतिनाथबिंबं कारितं तपागच्छे श्रीविजयदेवसूरिभिः। (प्रतिष्ठितं)

३०३

सं० १६९५ वर्षे..............श्रीदेवपत्तनवास्तव्य उकेशज्ञातीय वृद्धिशाखायां सोनी राजपाल तद्भार्या बाई पूराई सुत सो० वीरपाल नाम्न्या श्रीशांतिनाथबिंबं का० प्र० श्रीविजयदेवसूरिभिः।

३०४

सं० १६९७ वर्षे माह शुदि बीज रावेरा उसवशज्ञातीय सा० संचीया सुत सा० पासवीर श्रीआदिनाथबिंबं करापितं //

अठारहवीं शताब्दी

३०५

सं० १७०२ वर्षे मागशिर शुदि ६ शुक्रे श्रीअंचलगच्छधिराज पूज्य भट्टारक श्रीकल्याणसागरसूरीणामुपदेशेन श्रीदीवबंदरवास्तव्य प्राग्वाट्ज्ञातीय नागगोत्रे मंत्री विमलसंताने मं० कमलसी पुत्र मं० जीवण पुत्र

३०२-३०४. बालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

३०५. सुमतिनाथ-मंदिर, बाबू माधवलालकी धर्मशाला, पालीताणा

म० मालजीकेन पुत्र म० आणदजी म० प्रेमजी म० गागजी पुत्र म० प्रागजी म० आणदजी पुत्रकेन केशवजी प्रमुखपरिकरयुतेन स्वपितृ म० जीवण श्रेयोर्थ श्रीआदिनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित चतुर्विध श्रीसघेन ॥

३०६

स० ॥ १७०६ वर्षे ज्येष्ठ वदि १० स्तभतीर्थवास्तव्य प्राग्वाट्-ज्ञातीय वृद्धशाखा सो / मनजी / भा / वा / वछाई / सु० सो / पासवीरकेन श्रीपार्सबिंब (कारिता) प्रतिष्ठिता विजयाणदसूरि राज्ये आचार्य विजयराजसूरिभि ॥

३०६ अ

स० १७१० वर्षे ज्येष्ठ सुदि ६ गुरौ श्रीस्तभतीर्थ वास्तव्य श्रीमाल-ज्ञातीय वृद्धशाखाया दो० रामजीकेन श्रीविमलनाथबिंब कारित प्रतिष्ठित तपागच्छे आ० विजयराजसूरिभि

३०७

स० १७५१ वर्षे वैशाप वदि ६ गुरौ श्रीपोरवाट्ज्ञातीय वृद्धशाखाया स ॥ नप्रत तत्पुत्र सोलजी भार्या रामबाई प्रमुखपरिवारयुतेन छपणतीर्थी (? पचतीर्थी) पीतलमय श्रीशातिनाथबिंब कारापित प्रतिथित (प्रतिष्ठित) श्रीतपागच्छे भ० विजयसिंहसूरि त / (तत्पट्टे) श्रीविजय-प्रभसूरि पट्टे सविज्ञपक्षे भ० श्रीज्ञानविमलसूरिभि इति श्रेय /

३०८

स० १७९९ व० वै० शु १० स० उसवालज्ञातीय सा० माणिक भा० माणिकदे स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथबिंब का० प्र० श्रीसूरिभि ।

---

३०६ गोडीपार्श्वनाथ मदिर, पालीताणा

३०६ अ वालावसही, शत्रुजय पालीताणा

३०७-३०८ गोडीपाश्वनाथ मदिर, पालीताणा

उन्नीसवीं शताब्दी

३०९

// संवत् १८९३ ना शाके १७५८ प्रवर्त्तमाने माघमासे शुक्लपक्षे तिथौ दशम्यां बुधवारे श्रीअह्मदावादवास्तव्य उसवालज्ञातीय वृद्धशाषाया सीसादीयावंशे कुकुमलोलगोत्रे सेठ शांतिदास तत्पुत्र सेठ लष्मीचंद तत्पु/से/ षुसालचंद तत्पु/से वषतचंद तद्भार्या जडावबाई तत्पु/से/हिमाभाई स्वश्रेयोथ पार्श्वनाथबिंबं कारापितं प्रतिष्ठापि..................(लिपि चूनेके पलस्तर से दब गई है।) श्रीशांतिसागरसूरिभिः प्रतिष्ठित, मुनिचंद्रविजय ..../

३१०

// सं० १८९३ वर्षे मा/सुदि १० बुधे लीबडीनगरवास्तव्य वृद्धशाषीय भाईचंद तत्पुत्र वीरचंद श्रीअजितनाथबिंवं भरापितं तपागच्छांबर दनिमणि (दिनमणि) भ/श्री श्री वी (वि) जयदेवि (वे) द्रसूरिभिः प्रतिष्ठितं ।

३११

// सं० १८९३ ना माघ शुक्ल १० बुधे राजनगरे उसवाल वि (वी) सा सा० निहालचंद तत्पुत्र षुसालचंद तत्पुत्र सा/केसरिसिंघ तत्पुत्र सा० हठिसिंघ तेन स्वश्रेयोर्थ श्रीअजितनाथबिंब करापितं प्रतिष्ठितं सागरगच्छे भ/श्रीशांतिसागरसूरिभिः ल मु/चंद्रविजे (मुनि चंद्रविजय, इनकी अन्य प्रशस्तियें भी प्रतिलिपित प्राप्त है।)

३१२

सं० १८९३ वर्षे शाके १७५८ प्र (प्रवर्त्तमाने) मूमाहि (वम्वई) बिंदरवास्तव्य उसवंशे लघुशापायां सा० प्रेमचंद ता भा० वाई ईच्छा त/पु/

---

३०९. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

३१०-३१२. मोतीशाह की टूंक, शत्रुंजय, पालीताणा

३१८

जीवितसामोविव कारित प्रतिष्ठित श्रीनागेंद्रगच्छे श्रीउदयधर (? उदयदेवसूरि) प्रतिष्ठितं श्रीगुणसागरसूरिभि ॥

३१९

· मा डोलणयुताभ्या पितृमातृ पुण्यार्थे श्रीपद्म (प्रभ) विव कारित प्र० वृहद्गच्छे श्रीप्रभाकरसूरिपट्टे श्रीमेरुप्रभसूरिभि ॥

३२०

श्रीश्रीवशे सुगधो सा० सालिग भार्या सहजलदे पुत्र गोविंद सुश्रावकेन भार्या (छत्रधारी आकृति) पुत्री कुताईसहितेन श्रेयोर्थं कुथुनाथविव का० प्र० विधिपक्षे श्रीसूरिभि / मडलीतग्रामे ।

३२० अ

स्वमातृ चाई पुण्यार्थ श्रीकुथुनाथविव कारित प्रति० श्रीखरतरगच्छे श्रीविवेकरत्नसूरिभि ।

३२१

" · श्रीश्रयासनाथविव कारापित श्रीधर्मघोपगच्छे श्रीपास-मूत्तिसूरिपट्टे श्रीजिनरत्नसूरिभि प्रतिष्ठित ॥

३२२

॥ ५० ॥ माह शुदि ११ उकेशवशे गादहियागोत्रे स० राजल भार्या — " दे निमित्त स० सागा साजण भा० मातृनिमित्त श्रीपार्श्वनाथ-विव का० प्रति० खरतरगच्छे श्रीजिनराजसूरिपट्टे श्रीजिनचद्रसूरिभि ॥

३१८-३१९ वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा
३२० सुमतिनाथ जैनमदिर वाबू माधवलाल-जैनधर्मशाला, पालीताणा
३२१-३२२ वालावसही, शत्रुजय, पालीताणा

३२३

सं० १६-६ प्राग्वाट्ज्ञातीय सा० हाला भार्या हानु सुत सा० छींगरेण श्रीआदिनाथबिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं तपागच्छे **श्रीदेवसुदरसूरिभिः** ॥

३२४

सं० १६-८ (६१) वर्षे वैशाष सुदि ११ बुधे श्रीमालज्ञातीय महं षेता भा० हांसी सुत मूलजी भा० आह …………वासुपूज्यबिं (बं) कारापितं तपा **श्रीहीरविजयसूरिभिः** । शुभं भवतु ।

३२५

सं० १७-२ वर्षे पोष वद ५ गुरौ श्रीबाहादरपुरेवास्तव्य श्रीश्रीमालज्ञातीय वृद्धशाषायां सा० जगर भार्या चांदा सुत समगजकेन श्रीवासुपूज्यबिंबं कारितं प्रतिष्ठापित तपा भ० **श्रीविजयदेवसूरिरुपदेशात्** उपाध्याय **विनयविजयगणिना** ।

३२३-३२५. वालावसही, शत्रुंजय, पालीताणा

परिशिष्ट–१

गच्छ-परिचय

अंचलगच्छ :

विधिपक्ष और अचलगच्छ नाम से भी इसकी ख्याति रही है। कहा जाता है कि गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह ने पुत्रकामेष्टि यज्ञ प्रारंभ किया था। सर्पदंश के कारण यज्ञमण्डप में एक गौ के प्राण-पखेरू उड़ गये। यज्ञ के आचार्य ने निर्णय दिया कि गौर जीवित होकर यज्ञ स्थान से बाहर जाने पर ही यज्ञ सफल हो सकता है। यह एक विकट समस्या थी, जिसके समाधान के बिना राजा की इच्छा आकार नहीं ले सकती थी। आर्यरक्षितसूरि से राजा ने प्रार्थना की और परकायप्रवेशिनी विद्या के द्वारा गौ सजीवन होकर यज्ञमण्डप से बाहर हो गई। आचार्य के स्ववचन पर अचल रहने के कारण सिद्धराज ने सूरिवर को अचल बिरुद से अभिहित किया। तभी से अचलगच्छ प्रसिद्ध हुआ। नहीं कहा जा सकता इस कहानी में कितना तथ्य है। बिरुद प्राप्तिकाल सं० ११८५–६५ बताया जाता है[1]।

दूसरी कथा इस प्रकार बताई जाती है कि महाराजा कुमारपाल ने आर्यरक्षितसूरि का यश सुन कर अपने पाटनगर में आमंत्रित किया। राजसभा में विराजित आर्यरक्षितसूरि कुडी व्यवहारी ने उत्तरासंग के एकांश से भूमिप्रमार्जन कर वंदन किया। कुमारपाल ने अपने गुरु हेमचन्द्राचार्य से निवेदन किया कि यह वंदन-विधि शास्त्रोक्त है? आचार्य श्री के स्वीकारात्मक उत्तर से कुमारपाल ने विधिपक्ष-अंचलगच्छ नाम प्रदान किया। इस घटना का ठीक-ठीक समय तो ज्ञात नहीं, पर

---

१. भण्डारकर रिपोर्ट में (१८८३–४ पृष्ठ ४४२) में बताया गया है कि सं० ११६९ मे विधि पक्ष की स्थापना हुई।

इस सग्रह मे देवगुप्तसूरि, कक्कसूरि (दोनो), सिद्धसूरि, देवगुप्तसूरि के लेख सग्रहीत है।

कृष्णर्षिगच्छ

कृष्णर्षि नामक महापुरुष से इस गच्छ का सम्बन्ध बताया जाता है। नवी शती के यह महा प्रभावक आचार्य थे। इनकी और इनकी विद्वत्परम्परा का इतिहास प० श्री लालचन्द्रभाई गाधी ने श्री जैनसत्य-प्रकाश (वर्ष ७ अक १–३) मे दिया है, तथा शाखा सूचक इस गच्छ का लेख नाहर सग्रह मे (१२७४) है।

प्रसन्नचन्द्रसूरि (आगे और आचार्य का नाम मिट गया है) और पुण्यरत्नसूरि के लेख इस सग्रह मे दिये गये हैं, सभव है प्रथम लेख भी पुण्यरत्नसूरि का ही हो।

कोरटगच्छ

राजस्थान प्रदेशान्तर्गत ऐरनपुरा स्टेशन से पश्चिम मे १२वें मील पर अवस्थित कोरटा ग्राम से इसका सम्बन्ध ज्ञात होता है। वस्तुत इसे उपकेशगच्छ की शाखा ही समझा जाना चाहिए। स्वतत्र प्रतिष्ठालेख इस सग्रह मे केवल सावदेवसूरि का ही है। दूसरा नन्नसूरि का लेख हेमविमलसूरि के लेख के साथ मे नाम भर दिया है। जो सौजन्य का ही परिचायक है।

खरतरगच्छ

चैत्यवासियो के सम्मुख इस परम्परा ने शताब्दियो तक सघर्ष कर जैन सस्कृति के मौलिक स्वरूप को सुरक्षित बनाये रखा। इस गच्छ का प्रादुर्भाव गुजरेश्वर दुर्लभराज चौलुक्य की राजसभा मे आचार्य जिनेश्वर-सूरि द्वारा हुआ था। शुद्ध सयम मार्ग का प्रतिपादन कर चैत्यवासियो को शास्त्रार्थ मे परास्त कर खरा विरुद दुर्लभराज द्वारा स० १०७८ लगभग प्राप्त किया था। इन्ही की शिष्य सतति खरतरगच्छ सज्ञा से विख्यात हुई। तपागच्छ के अनन्तर सभी दृष्टि मे यही एक मात्र गच्छ

प्रभावशाली हुआ है। मधुकर, रुद्रपल्लीय लघुखरतर, गगड, पिप्पलक, आद्यपक्षीय, भावहर्षीया, जिनरंगसूरि, श्रीसारीय और मण्डोवरा इस गच्छ की शाखाएं है। अद्यतन युग में इस परम्परा का सफल प्रतिनिधित्व कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा के मुनिवार कर रहे है। इस संग्रह में जिनसागरसूरि, जिनभद्रसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसमुद्रसूरि, जिनहंससूरि, जिनसिंहसूरि और जिनमहेन्द्रसूरि के लेख संग्रहीत हैं।

चन्द्रगच्छ :

चंद्रकुल ही आगे चलकर गच्छ की संज्ञा से अभिहित हुआ जान पड़ता है। तपागच्छ और खरतरगच्छ की पट्टावलियों में दोनों ही अपने को चन्द्रगच्छीय ही सूचित करते है। इस संग्रह में पण्डगसुरि, पद्मप्रभसूरिशिष्य गुणसागरसूरि के लेख प्रकाशित है।

चैत्र-चत्रवालगच्छ :

चैत्रपुर ग्राम से इस गच्छ का नामकरण हुआ जैसा कि बृहत्कल्प-वृत्ति और मुनिसुदरसूरि रचित गुर्वावली से प्रकट है। इसकी परम्परा तपागच्छ से मिलाई है। धारणप्रदीय, चान्द्रसमीय (चाणस्मा), सलखण-पुरा और सर्दूल ये चार इसकी शाखाएं है। लक्ष्मीदेवसूरि, जिनदेवसूरि, लक्ष्मीसागरसूरि, सोमदेवसूरि और विजयदेवसूरि के लेख इस संग्रह मे है।

तपागच्छ :

सं० १२८५ में आघाटपुर/आयड़ में भगवान् महावीर के ४४वे पट्टधर वडगच्छीय आचार्य जगत्चन्द्रसूरि को उग्र तपश्चरण के कारण मेवाड़ के महाराजा जैत्रसिंह ने तपा विरुद से अभिहित किया। चित्रवालगच्छीय देवभद्र के समीप उपसंपदा ग्रहण की। विगत श्रमण-परम्परा का इतिहास इस बात का साक्षी है कि शताब्दियों से तपागच्छ का, विशेषकर पश्चिमीय प्रदेश में, सर्वाधिक प्रभाव रहा है। वृद्धपौशालिक, लघु-पौशालिक, विजयाणदसूरि, विमल, सागर, रत्न, कमलकलश, कुतुवपुरा, भूकटिया-निगम और रत्नाकरगच्छ ये तपागच्छ की विभिन्न शाखाएं है।

इस सग्रह मे हेमहसमूरि, रत्नसिंहसूरि, मुनिसुदरसूरि, जयचन्द्रसूरि, रत्नशेखरसूरि, लक्ष्मीसागरसूरि, हेमविमलसूरि, जिनरत्नसूरि, धनेश्वर-सूरि, हेमसमुद्रसूरि, उदयसागरसूरि, सौभाग्यहर्षसूरि, धर्मविमल, विजयदानसूरि, विजयहीरसूरि, विजयसेनसूरि, विजयदेवसूरि, विजयसिंह-सूरि, विजयराजसूरि, ज्ञानविमलसूरि, शान्तिसागरसूरि, विजयदेवेन्द्रसूरि, धनेश्वरसूरि, रूपविजय के लेख सकलित है।

द्विवदनीक

यह स्वतन्त्र गच्छ न होकर उपकेशगच्छ की शाखा है। इसका सूत्रपात स० १२६६ मे सिद्धसूरि द्वारा आचरण भेद के कारण हुआ था।

रस-रस-दिनकर १२६६ वर्षे मासे मधुमाधवे व मज्ञायाम्
जाता द्विवदनीका श्रीमत्सिद्धसूरिवरा

—विविधगच्छीय पट्टावली मग्रह, पृष्ठ ८

धर्मघोपगच्छ

राजगच्छीय शीलगुणसूरि के शिष्य धर्मघोपसूरि ने स० ११५६ मे सूरिमन्त्र प्राप्त किया। यह नरेशत्रय के प्रतिवोधक और वादी गुणचन्द्र के विजेता थे। इनकी शिष्य परम्परा धर्मघोपगच्छीय रूप मे यशजित हुई। धर्मघोपसूरि की प्रशसा मे अनेक काव्य लिखे गये। सपादलक्ष मे इनका विशेप प्रभाव था।

इस गच्छ का परिचय प्राप्त करने के लिए राजगच्छ पट्टावली का निरीक्षण आवश्यक है। मेरे सग्रह मे भी सस्कृत भापा मे निवद्ध एक प्रशसात्मक पट्टावली है।

रत्नशेखरसूरि (पद्मशेखरसूरि ?), ज्ञानचन्द्रसूरि, विजयचन्द्रसूरि, साधुरत्नसूरि, पदमानन्दसूरि, पुण्यवर्द्धन, उदयप्रभसूरि और जिनरत्नसूरि के लेख इस सग्रह मे दिये हैं।

नागहृदगच्छ :

यह नगर उदयपुर नाथद्वारा जाने वाले मार्ग पर बारहवें मील पर आज भी अतीत गौरव की भव्य प्रतीति करा रहा है। जैन इतिहास की दृष्टि से बड़ा महत्व इस स्थान ने अर्जित किया था, पर समुद्रसूरि की घटना के अतिरिक्त कहीं भी अन्यत्र इसकी चर्चा अद्यतन जैन समीक्षात्मक इतिहासों में नहीं मिलती। पुरातत्व की यहां प्रभूत सामग्री है। इसके अतिरिक्त विध्वस्त जैनमंदिर और लेख भी प्राप्त है। आचार्य परिचय रेखान्तर्गत जिनसागरसूरि के प्रसंग में इसके सांस्कृतिक गौरव का उल्लेख किया है।

प्रस्तुत संग्रह में प्रकाशित नागहृदीय उल्लेख वाला लेख सं० १२६२ का है। इससे इतना तो सिद्ध है कि इतः पूर्व गच्छ ख्याति प्राप्त कर चुका था। कुछ संशोधकों ने नागेन्द्रकुल या गच्छ को ही नागहृदगच्छ मानने की कल्पना की है। पर वह सही नही है।

नागदा के जैन पुरातत्व पर इन पंक्तियों के लेखक ने एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी तैयार किया है और भारत सरकार के पुरातत्व विभाग के तात्कालिक डिप्टी डाइरेक्टर जनरल श्री कृष्णदेवजी का ध्यान आकृष्ट कर आवश्यक सभी जैन पुरातनावशेषो की फोटोग्राफी करवा ली है।

नागेन्द्रगच्छ :

नागेन्द्रकुल ही कालान्तर में नागेन्द्रगच्छ हो गया जान पड़ता है। नवी से सोलहवीं शती तक इस गच्छ के लेख मिलते है। इस संग्रह में गुणाकरसूरि, रत्नप्रभसूरि, सिंहसूरि, हेमरत्नसूरि, गुणवर्द्धनसूरि और गुणाकरसूरि के लेख प्रकाशित हैं।

नाणावालगच्छ :

नाणावालगच्छ—नाणगच्छ या ज्ञानकीयगच्छ एक ही समुदाय का वाचक शब्द है। इसकी उत्पत्ति नाणाग्राम से संबद्ध जान पड़ती है। इस गच्छ के आचार्य शांतिसूरि का एक लेख प्रकाशित है।

निवृत्तिगच्छ

निवृत्तिकुल ही गच्छ के रूप मे परिणित हुआ जान पडता है। समरासाह रास के प्रणेता अंवदेवसूरि इसी गच्छ के रत्न थे, याम्रदेव-आम्रदेवसूरि का लेख प्रकाशित है।

पल्लिकीय-पल्लीवाल-पालीवाल-पाडीवालगच्छ

एक ही गच्छ के ये नाम हैं, इसका उत्पत्तिस्थान पाली (राजस्थान) है। प्रद्योतन सूरि के शिष्य इन्द्रदेवसूरि से इस गच्छ का आरम्भ बारहवी शती मे हुआ। पल्लीवाल जाति इस गच्छ की उपासिका थी। आज सवाई माधोपुर, भरतपुर, आगरा और जयपुर मण्डलो मे पाई जाती है। भारत का विख्यात तीर्थ महावीरजी इसी जाति के दीवान जोधराज की कृति है। त्रिपुटी महाराज ने जैन परम्परा के इतिहास भाग २ पृष्ठ ५८ पर नाकोडा तीर्थ का सम्बन्ध भी पल्लीवाल से जोडा है वह स्पष्टत उनका भ्रम है। नाकोडाजी की स्थापना का यश कीर्त्तिरत्नसूरि को मिलना चाहिए, वही तीर्थ स्थापक थे।

इस सग्रह मे अजूणसूरि—उद्योतनसूरि का लेख प्रकाशित है।

पिप्पलगच्छ

प्रस्तुत गच्छ वडगच्छ की शाखा है। पृथ्वीचन्द्रचरित्र के प्रणेता (प्रणयन काल ११३१) आचार्य शातिसूरि पिप्पलगच्छ के सस्थापक थे। यह वादी वैताल शान्तिसूरि से भिन्न थे। स्व० मोहनलालभाई ने अपने जैन साहित्य के इतिहास (पुष्ठ २०६) मे पिप्पलगच्छ का सस्थापक वादी वैताल को वताया है, परन्तु वे तो स० १०९६ मे ही स्वर्गवासी हो चुके थे। अत दोनो समान नामधारी आचाय भिन्न व्यक्ति थे। पीपल के वृक्ष से गच्छ का नामकरण हुआ प्रतीत होता है। त्रिभविया और तालध्वजी इस गच्छ की शाखाए है। शालिभद्रसूरि, शान्तिसूरि, श्रीजनसूरि और पद्मानन्दसूरि के लेख प्रकाश मे आ रहे हैं। इस गच्छ की पट्टावली विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ मे प्रकाशित है।

पूर्णिमागच्छ :

इसके मूल संस्थापक थे आचार्य चन्द्रप्रभसूरि। पाक्षिक पर्व की आराधना चतुर्दशी को की या पूर्णिमा को? आचार्यश्री ने पूर्णिमा का ही समर्थन किया, जिससे इस गच्छ की स्थापना सं० ११४९ में हुई। ढढेरिया, साधुपूर्णिमा, भीमपल्लीय, वटपद्रीय, बोरसिद्धिय, भृगुगच्छीय, छापरिया, काछोलीवाल आदि इस गच्छ की शाखाएं हैं।

ब्रह्माणगच्छ :

यह भी बृहद्गच्छ का शाखा गच्छ है। सीरोहीमंडलान्तर्गत वरमाण से इसका सम्बन्ध रहा है, सं० ११२४ से १६ वीं शती तक के लेख प्राप्त है। उदयप्रभसूरि, विमलसूरि, मुनिचन्द्रसूरि के लेख प्रकाशित हैं।

इस गच्छ में भी कुछ आचार्यो के नाम पुनः आते है, जिसका उल्लेख यथा प्रसंग किया जा चुका है।

बृहद्गच्छ :

उद्योतनसूरि के शिष्य सर्वदेवसूरि ने आठ अन्तेवासियों को सूरि पद से अलकृत किया था। यही इस गच्छ के आद्याचार्य थे। इनका अस्तित्वकाल विक्रमीय दशम शती है। इस परम्परा की पट्टावली विविध-गच्छीय पट्टावली संग्रह में प्रकाशित है। इस गच्छ के महेन्द्रसूरि का लेख इस सग्रह में दिया जा रहा है।

ब्रह्मर्षिगच्छ :

परिचय अज्ञात है।

भावड़ारगच्छ :

इस गच्छ की पट्टावली अनुपलब्ध है। मूलतः यह खंडिलगच्छीय कालिकाचार्य संतानीय भावदेवसूरि से ग्यारहवी शती में उद्भवित हुआ। स्मरणीय है कि पंजाव में ओसवाल महाजन को भावड़ा ही कहते हैं। इस गच्छ के जिनदेव का लेख प्रकाशित किया जा रहा है।

वडीपोशालगच्छ

यह तपागच्छ की शाखा मात्र है। तपागच्छ प्रवर्त्तक जगत्चन्दसूरि के गुरुभाई विजयचन्द्रसूरि इसके सस्थापक थे। मुनि जिनविजयजी ने इस परम्परा की पट्टावली प्रकाशित की है।

मलधारगच्छ

इस गच्छ के आदि शास्ता परमतपस्वी और निस्पृही अभयदेवसूरि थे। गुर्जरेश्वर कर्ण राजा ने (स० ११२०-५०) मलधार विरुद से अभिषिक्त किया था। मूलत यह आचाय हर्षपरीय गच्छानुयायी थे। मुनिसागरसूरि, गुणसुदरसूरि, लक्ष्मीसागरसूरि के लेख प्रकाशित हैं।

रुद्रपल्लीयगच्छ

वह गच्छ भी खरतरगच्छ की शाखा है। यह स० १२०४ मे जिनेश्वरसूरि से विख्यात हुई, इस परम्परा के हर्षसुदरसूरि का लेख प्रकाशित है।

विजयाणदसूरिगच्छ

यह तपागच्छ का शाखागच्छ है। इसका सूत्रपात स० १६८१ मे विजयाणदसूरि द्वारा हुआ है, धनेश्वरसूरि का लेख प्रकाशित है।

वृद्धतपागच्छ-रत्नाकरगच्छ

यह भी तपागच्छ का शाखा गच्छ है। रत्नाकरसूरि द्वारा चौदहवी शताब्दी मे इसका आविर्भाव हुआ। इस परम्परा का वाग्जड/वागड प्रदेश मे विशेप प्रभाव था और उन्नीसवी शती तक बना रहा। रत्नसिंहसूरि, जिनरत्नसूरि, धनेश्वरसूरि, माणिक्यसुदरसूरि, विजयरत्नसूरि, उदयसागरसूरि, धर्मरत्नसूरि, धनरत्नसूरि और देवसुरसूरि इस परम्परा के ऐसे रत्न थे जिनने जिनशासन की महती प्रभावना की। इनके प्रतिमा लेख इस सग्रह मे प्रकाशित हैं। इस गच्छ की भृगुकच्छीय शाखा थी।

शंडेरगच्छ :

राजस्थान प्रदेशान्तर्गत नाणाग्राम के समीप सांडेराव नामक ऐतिहासिक नगर है। इसी से इस गच्छ का सम्बन्ध है। इसकी उत्पत्ति दशम शती के अनन्तर हुई। हस्थुडीगच्छ इसका शाखागच्छ है, शंडेरगच्छ में सालिसूरि, शांतिसूरि और ईश्वरसूरि के नाम पुनः-पुनः आते रहे है। इस संग्रह में शांतिसूरि. उदयदेवसूरि, यशोदेवसूरि, ईश्वरसूरि, सालिसूरि, सूमतिसूरि. शान्तिसूरि के लेख प्रकाशित है। शंडेरगच्छ की यति परम्परा ने मेवाड़ के सांस्कृतिक विकास मे उल्लेखनीय योग दिया है। प्राप्त प्रतियों की लेखन पुष्पिकाओं से प्रतीत होता है कि उन्नीसवीं शती तक इस परम्परा का प्रभाव रहा।

सरस्वती गच्छ -

दिगम्बर सम्प्रदाय का गच्छ है। मूलसंघ के साथ सर्वत्र सरस्वती-गच्छ का उल्लेख आता है।

सागरगच्छ :

सं० १६८१ में सेठ शान्तिदास के सहयोग से आचार्य राजसागरसूरि ने तपागच्छ की इस शाखा का सूत्रपात किया। इस शाखा के शान्तिसागर-सूरि के लेख प्रकाशित किये है।

साधुपूर्णिमा :

सं० १२३६ में पूर्णिमागच्छ की शाखा फटी।

हारीजगच्छ :

शखेश्वर और पाटन के मध्य हारीज ग्राम से इस गच्छ का सम्वन्ध है। उत्पत्ति समय ज्ञात नही। प्रतिमालेख चौदहवी शती से सोलहवीं शतो तक के मिले है। महेश्वरसूरि का लेख इस संग्रह में प्रकाशित है।

□

परिशिष्ट–२

गच्छ-सूची

गच्छ का नाम		लेखाक
१	अचल गच्छ	२१, २५, ६१, ६७, ७२, ७५, १०२, १०६, ११३, १२१, १३२, १३३, १७४, २०४, २०७, २०६, २१२, २२४, २२६, २२८, २४४, २६७, २७०, २८४, २६८, २६६, ३०५, ३२० ।
२	आगमगच्छ	४, १०७, १३०, १३६, १४६, १५०, १५७, १६३, २११, २२३, २३३, २३५, २३६, २७१ ।
३	उपकेशगच्छ (उसवालगच्छ)	६०, ७७, ८२, १०६, १२२, १२७, १८१, १८५, २४६ ।
४	कृष्णर्षिगच्छ	१२३, १३७ ।
५	कोरटगच्छ	१६१, २२२, २६० ।
६	खरतरगच्छ	७६, ६१, ६३, १०३, १२६, १८३, २१५, २३१, २३४, २७२, ३२० अ, ३२२ ।
७	चन्द्रकुल	३ ।
८	चन्द्रगच्छ	६, २२ ।
६	चैत्रगच्छ	१५१, १८७, २१६, २४१, २४३, २८५ ।
१०	जाल्यधरगच्छ	१२ ।

	गच्छ का नाम	लेखाक
२४	ब्रह्माणगच्छ	१४४।
२५	वडीपोमालगच्छ	३१५।
२६	भावडगच्छ	४२।
२७	मलधारगच्छ	४६, ८३, ८४, १५६ अ, १५६ ब, २५७।
२८	रुद्रपल्लीयगच्छ	२५६।
२९	विजयाणदसूरिगच्छ	३१२।
३०	वृद्धतपागच्छ	७१, ८८, ६६, १२५, १३४, १४८, १६७, १८२, १६६, २०१, २०५, २१३, २२१, २३२ २३४ अ, २५२, २५४, २७५, ३१६।
३१	षाडेर/सडेरगच्छ	४७, ५३, ६८, १५४, १७६, २१४, २४०, २६६, २८७।
३२	सरस्वतीगच्छ	१८४।
३३	सागरगच्छ	३११।
३४	साधुपूर्णिमापक्ष	५०, १०१।
३५	हारीजगच्छ	६८, १७३।

□

जाति-सूची

	जाति	लेखांक
१.	उकेश/उपकेश/उएस/उसवाल/ओसवाल	३९, ६८, ७२, ७५, ७६, ७७, ८२, ९३, ९८, १०२, १०५, १०६, १२२, १२३, १२७, १३०, १३१, १३३ अ, १३४, १३५, १४०, १६८, १७०, १७३, १७४, १७९. १८१, १८५, १९१, १९४, १९८, १९९, २०६, २०७, २१२, २१५, २१८, २२२, २३०, २३१, २३४, २३७, २३८, २४०, २४६, २४९, २५१, २५४, २५६, २५७, २५८, २६६, २६७, २७२, २७५, २७८, २८४, २८७, २९०, २९२, २९७, ३००, ३०१, ३०३, ३०४, ३०८, ३०९, ३११, ३१२, ३२२ ।
२.	कायथ	१९७ ।
३.	गुर्जर	२३३ ।
४.	नागर	६४, २५५ ।
५.	पल्लीवाल	३३, १८७ ।
६,	प्राग्वाट/पोरवाल	५०, ५२, ५४, ५६, ७१, ७८, ९०, ९७, ९९, १००, १०१, १०४, १०८, ११०, ११२, ११७, १३३, १३४, १४३, १४७, १५०, १५४, १५५, १५९, १६४, १६९, १७१, १७६, १७८, १८९ अ, १९५, २०२, २१०, २१७, २१९, २२६, २२७, २२८, २४७, २४८, २५२, २५३, २६०, २६२, २६३, २६९, २७४, २७६, २७७, २७९, २८०, २८८, ३०५, ३०६, ३०७, ३२३ ।

	जाति	लेखाक
७	भर्तृपुर/भटेवर	४७ ।
८	भावसार	२४४ ।
९	मोढ	२८३ ।
१०	लालवाडा	३१ ।
११	वायड	३४, १७५, १८६ ।
१२	वीरवण	२७० ।
१३	श्रीमाल/श्रीमाली	१७, २४, ३०, ३७, ४२, ४६, ६१, ६५, ७०, ८१, ८३, ८५, ८६, १०३, ११३, १३७, १३८, १४१, १४४, १७२, १८३, १८८, १८९, १९०, १९१, १९३, १९६, २११, २६४, २६८, २९३, २९९, ३१४, ३२४ ।
१४	श्रीश्रीमाल	१२, २८, ३१, ३५, ४०, ४८, ५१, ५३, ५५, ५७, ५९, ६२, ६७, ६९, ७३, ७४, ८०, ८४, ८८, ९६, १०७, ११९, १२१, १२४, १२८, १२९, १३६, १४५, १४६, १४८, १४९, १५१, १५२, १५३, १५६, १५७, १५९ अ, १६०, १६१, १६२, १६३, १६५, १६७, १७७, १८२, २०३, २०४, २०५, २०८, २०९ २१३, २१६, २२०, २२१, २२३, २२४, २३४ अ, २३४ ब, २३५ २३९, २४०, २४३, २४५, २५९, २६१, २६५, २७१, २७३, २८१, २८९, २९१, ३०६ अ, ३२०, ३२५ ।
१५	हुवड	४४, ११६, १८४, २३२ ।

गोत्र-सूची

	गोत्र	लेखांक		गोत्र	लेखांक
१.	अंबिका	११८	२५.	नाहर	६६
२.	कनघगला	४७	२६.	नाहटा	३१२
३.	कर्म्मदीया	२३१	२७.	परीक्ष	९३
४.	कम्मार	१२२	२८.	पुसा	९५
५.	कावड	२६६	२९.	वांस	१२[illegible]
६.	कुंकुमलोल	३०९	३०.	बोहड	७६
७.	गांडा	३००	३१.	भंडारी	१०५
८.	गाँधी	१४५, २[illegible]७	३२.	मीठडीया	१०६, २६७
९.	गादहीयाणा	[illegible]९२	३३.	मेडतवाल	४९
१०.	गादहीया	३[illegible]२	३४.	महता	१०३
११.	गोरजा अंबिका	२१६	३५.	लोढा	९१
१२.	गोष्ठिक	११८, २३०	३६.	व्यव० गो०	१७४
१३.	घेउरिया	१८३	३७.	वर्द्धन	२५८
१४.	चंद्रा	१३९	३८.	वहकरीया	१२९
१५.	चहचहीया	१९६	३९.	श्रेष्ठि	१२७
१६.	डंबा	१९२	४०.	संखवालेची	२४०
१७.	डउ	२६८	४१.	साकरिया	२३४
१८.	डोडू	१२०	४२.	सांखला	९६
१९.	डीसावाल	१२६	४३.	सुगंधी	२३४ अ
२०.	तहाया	२१४	४४.	सुचंती	१८१
२१.	दोसी	२७४, २८८, १९६	४५.	सुधी	२२२
२२.	धामला	११८	४६.	सुराणा	११५, २००
२३.	धामी	२४१	४७.	क्षत्रि	१३
२४.	नाग	३०५			

परिशिष्ट–५

नगर-सूची

परिशिष्ट–६

अन्य लेख-संग्रह

इस सकलन मे उल्लिखित अन्य प्रकाशित लेख-सग्रहो की सूची निम्न प्रकार है—

१ बीकानेर जैन लेख सग्रह

सग्राहक अगरचन्द नाहटा तथा भवरलाल नाहटा
प्रकाशक नाहटा ब्रदर्स, कलकत्ता

२ धातु प्रतिमा-लेख, भाग–१

सग्राहक मुनि कान्तिसागर
प्रकाशक श्रीजिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत

३ श्री अर्बुद-प्राचीन-जैन-लेख सदोह, भाग–२

सग्राहक मुनि श्री जयन्तविजय जी म०
प्रकाशक विजयधर्मसूरि जैन ग्रन्थमाला, उज्जैन

४ अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख सदोह

सग्राहक मुनि श्री जयन्तविजय जी म०
प्रकाशक यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर

५ प्राचीन जैन लेख सग्रह, भाग–२

सग्राहक मुनि जिनविजय
प्रकाशक श्री आत्मानन्द सभा, भावनगर

६. **अंचलगच्छीय लेख संग्रह, खण्ड–१, २**

संग्राहक : भाई श्री पार्श्व
प्रकाशक : अनन्तनाथ जी महाराज का जैन देहरासर, बम्बई

७. **जैन लेख संग्रह, भाग–१, २, ३**

संग्राहक तथा प्रकाशक : बाबू पूर्णचन्द्र नाहर

८. **जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह, भाग–१, २**

संग्राहक : श्री बुद्धिसागरसूरि जी म०
प्रकाशक : श्री आध्यात्म ज्ञान प्रसारक मण्डल, बम्बई

९. **फार्बस गुजराती सभा त्रैमासिक वर्ष–४ अंक–४ में प्रकाशित जैन प्रतिमा लेख**

संग्राहक : डॉ० भोगीलाल जयचन्द्र साँडेसरा

१०. **श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह**

संग्राहक : मुनि श्री यतीन्द्र विजय जी
सम्पादक : दौलतसिंह लोढा
प्रकाशक : यतीन्द्र-साहित्य-सदन, धामणिया

११. **प्राचीन लेख संग्रह, भाग–१**

संग्राहक : आचार्य विजयधर्मसूरि जी म०
सम्पादक : मुनि श्री विद्याविजय जी
प्रकाशक : यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर

१२. **प्रतिमा लेख संग्रह**
संग्राहक : म० विनय सागर
प्रकाशक : सुमति सदन, कोटा

१३. **श्री राघनपुर प्रतिमा लेख संदोह**
संग्राहक : मुनि श्री विशाल विजय जी
प्रकाशक : यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर

कुशल संस्थान

(पजीकृत 30/जयपुर/1990–91)

3966, रास्ता मोतीसिह भोमिया, जयपुर

समाज मे गिरते नैतिक मूल्यो की पुनर्स्थापना तथा धार्मिक भावना के ह्रास को रोकने के उद्देश्य से कुशल-सस्थान के सगठन की योजना 1989 के आरम्भ मे राजेन्द्र कुमार श्रीमाल, गुलावचन्द झाडचूड तथा सुरेन्द्र बोथरा ने वनाई। इस योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम सुरुचिपूर्ण साहित्य प्रकाशन का कार्य हाथ मे लिया गया। समान विचार वाले अनेक बन्धुओ से प्रोत्साहन तथा सहयोग मिला और प्रथम प्रकाशन नाकोडा तीर्थ के इतिहास के रूप मे आया। दो अन्य पुस्तकें भेट स्वरूप प्रदान करने के लिए प्रकाशित की गईं —नवपदादि तपोविधि तथा वीर-निर्वाणोत्सव विधि।

सस्थान का नियमित पजीकरण जून—1990 मे हुआ तथा साथ ही प्रथम कार्यकारिणी समिति का गठन भी सम्पन्न हुआ। कार्यकारिणी के सदस्य हैं

श्री बुलीचन्द टाक	अध्यक्ष
श्री शिखर चन्द पुगलिया	उपाध्यक्ष
श्री राजेन्द्र कुमार श्रीमाल	सचिव
श्री गुलाबचन्द झाडचूड	कोषाध्यक्ष
श्री सुरेन्द्र कुमार बोथरा	प्रकाशन सचिव
श्री विनयचन्द धाधिया	सयुक्त सचिव
श्री कनक श्रीमाल	सदस्य
श्री ज्योति कुमार कोठारी	सदस्य
श्री ओम प्रकाश धाधिया	सदस्य
श्री कमल कोठारी	सदस्य
श्री पुष्पेन्द्र सुराणा	सदस्य
श्री विक्रम गोलेछा	सदस्य

आगामी प्रकाशन

1. भगवन् करूणासिन्धो (पं० हरगोविन्ददास विरचित महावीर प्रार्थना शतकम् अनुवाद व विवेचना सहित)—अनुवाद व विवेचना : सुरेन्द्र बोथरा-पुस्तक मुद्रण हेतु तैयार है तथा भूमिका जर्मनीवासी प्रोफेसर बन्सीधर भट्ट द्वारा लिखी जा रही है।

2. जैनिज्म इन राजस्थान—ले० रामवल्लभ सोमानी—इस पुस्तक के प्रकाशन की योजना विचाराधीन है।

3. वसुदेव हिन्डी (हिन्दी अनुवाद) अ० गणेश ललवानी—इस पुस्तक के प्रकाशन की योजना विचाराधीन है।

4. जंगयुगमप्रधान भट्टारक दादा श्री जिनदत्त सूरि चरित्र (हिन्दी तथा अंग्रेजी में)—ले० राजेन्द्र कुमार श्रीमाल-सम्पादन तथा अनुवाद कार्य चल रहा है।

अन्य गतिविधियाँ

1. **छात्रवृत्ति योजना**—इस योजना के अन्तर्गत अल्प-आय वर्ग के तथा मेधावी छात्रों को शिक्षण हेतु छात्रवृत्ति तथा अन्य सहयोग प्रदान किये जाते है। इस वर्ष 25 अल्प-आय वर्ग के छात्रों को फीस तथा पुस्तकों के लिए अनुदान दिया जा चुका है। योजना के संचालक है श्री पुष्पेन्द्र सुराणा।

2. **सीखो कमाओ योजना**—इस योजना के अन्तर्गत जरूरतमन्द लोगों को विभिन्न कार्यों का प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध किया जाता है तथा उसके बाद आय के साधन जुटाने में सहायता की जाता है। इस वर्ष एक जरूरतमन्द महिला को कशीदे की मशीन दिलवाई गई। वीर बालिका विद्यालय में बिधाई के प्रशिक्षण की योजना विचाराधीन है। योजना के संचालक है श्री ज्योति कुमार कोठारी।

3 शिक्षा-ऋण योजना—इस योजना के अन्तर्गत उच्च तथा विशिष्ट शिक्षा हेतु योग्य छात्रो को शिक्षा-ऋण तथा अन्य सहयोग उपलब्ध कराने का विचार है। योजना का प्रारूप तैयार किया जा रहा है। योजना के सचालक श्री कमल कोठारी हैं।

4 जैन एम्प्लायमेन्ट ब्यूरो—इस योजना के अन्तर्गत जैन बेरोजगारो के विषय मे सूचना एकत्र कर एक सूचना कोष बनाया जा रहा है। यह समस्त सूचना नियमित रूप से विभिन्न उद्योगो तथा व्यवसायो को उपलब्ध कराई जाएगी जिससे शिक्षित बेरोजगारो को उचित नौकरी मिल सके। इस योजना के सचालक श्री विनय चन्द घाघिया हैं।

